AKASH KITNA ANANT HAI

(A Novel of Shailesh Matiani)

शैलेश मटियानी

संस्करण

१५.००

मूल्य □ तीस रुपये

प्रथम संस्करण □ १९७[illegible]

आवरण □ शि० गो० पा०

●

प्रकाशक □ विभा प्रकाशन,
५०, चाहचंद,
इलाहाबाद–२११००३

मुद्रक □ सुलभ मुद्रणालय,
७७८, मुट्ठीगंज,
इलाहाबाद

आकाश कितना अनन्त है

१
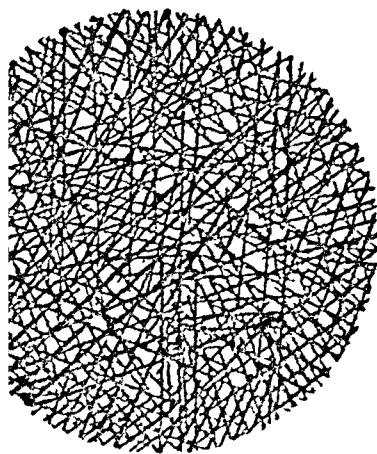
हत्या, आत्महत्या अथवा किसी लड़की या औरत के अपने प्रेमी के साथ भाग जाने की सनसनीखेज खबर हमेशा ही, इस शहर में अंधड़ की सी तेजी से फैलती रही है। सामान्यतया खूबसूरत किन्तु, काफी संक्षिप्त यह शहर कहीं कुछ रोमांचक घटित होते ही तरह-तरह की चर्चा और अफवाहों से तेज वारिश में भरने वाले छोटे पोखरों की तरह डबाडब हो आता है। अभी कुछ दिन पहले, 'ऑटम' की उत्सवों की सी रौनक जरूर थी, किन्तु 'ऑटम' के बीतने के साथ सर्दी बढ़नी शुरू हुई और, सैलानियों की वापसी के समाप्त होने के साथ-साथ शहर की अधिकांश दुकानों के दरवाजों पर ताले पड़ चुके। धीरे-धीरे स्थायी निवासियों में से भी छँटने आरम्भ हो गये थे और मुख्य-मुख्य सरकारी दफ़्तरों के शीतकालीन प्रत्यावर्तनों की कागजी शुरुआत भी हो चुकी थी। कुल मिलाकर, इन दिनों, यह शहर काफी रिक्त और ठण्डा हो चला था।

इन दिनों तो यों भी यह शहर, 'सीजन' की चहल-पहल के बाद, उत्सव बीत चुकने के सन्नाटे में डूबने लगता है और इसके चारो किनारों से ऊब का वातावरण कोहरे की तरह ऊपर उठने लगता है। कँपा देने वाली ठण्ड इस शहर को अजगर की तरह जकड़ना शुरू कर देती है और यह लगभग सुनसान पड़ता हुआ शहर सिगड़ियों की तरफ हाथ तानते हुए लोगों के आलस्य से भरने लगता है।

अन्य पहाड़ी इलाकों की तरह, यहाँ के रहने वाले भी आत्मभीरु प्रकृति के है और परिणामतः लड़ाई-झगड़े भी कुटीर उद्योगों के पैमाने पर

होते हैं, जिनकी चिमनियाँ बहुत ऊँचे आकाश में धुआँ नहीं छ
इसीलिए अखबारों की सुर्खियों से यह शहर प्रायः छूट जाता
इस तरह का कुछ घटित होते ही इस शहर के निवासियों को
चेहरों पर गीले कपड़े से पोंछे गये संगमरमर के फर्श की सी
ताजगी आ जाती है।

इस शहर में पुश्तैनी जीवन-पद्धति के फालतू समय से प्र
लैस रहने वाले लोगों की संख्या काफी है और इस तरह के
जीभ में से भाषा रेशम के कीड़ों के पिछले हिस्से से बाह
हुए गीले तंतुओं की तरह रिसती रहती है। कहीं भी, शहर
कोने में, कोई भी घटना घटित होते ही किस्से में बदलना
देती है। 'सीजन' के दिनों इस शहर के अस्तित्व पर सै
हावी रहते हैं, लेकिन सर्दियों का सन्नाटा ज्यों-ज्यों बढ़ता जात
पुश्तैनी बाशिंदे अपनी री पकड़ने लगते हैं।

जिस दिन यह घटना हुई थी—शेखर ठाकुर के द्वारा प्रोफेस
पर हमला कर देने की—अफवाह यहाँ तक बढ़ गई थी कि '
में ठाकुर ने रिवाल्वर की नली प्रोफेसर तिवारी की कनपटी प
और धाँय'....या कि 'लोग तमाशबीनों की तरह देखते ही रह
छुरा घोंपकर, पेट को कमर तक चीर दिया और अँतड़ियाँ..
वह चीख मारकर वहीं बेहोश हो गई....' या कि 'वह शेखर
देखते ही जान बचाकर भाग गयी और बेचारे तिवारी....च्....च्

सामान्यतया अपने घरों में स्त्रियों के मुँहजोर होने को
निशानी मानने वाले कई लोग यह बताते हुए आंतरिक प्रसन्न
हुए दिखाई देते थे कि 'अरे साहब, उस लड़की ने बड़ी हिम्मत

प्रोफेसर तिवारी के सीने से पीठ टिकाकर खड़ी हो गई....और सुना है, ऐन इसी वक्त उस कातिल ने उनके पेट में छुरा भोंक दिया।'

हालाँकि इन चार-पाँच दिनों में अफवाहों की गर्द काफी बैठ चुकी थी, किन्तु जहाँ-तहाँ वक्त-वेवक्त चर्चा का मुख्य विषय यही था कि उसके गुस्से की हालत यही रही तो सचमुच पागल हो जाएगा। खून जब दिमाग में इकट्ठा हो जाता है, तो आसानी से उतरता नहीं। खूनखरावी का अन्देशा अभी टला नहीं है।

ये लोग उस वक्त त्रिपुरा देवी के मन्दिर की सीढ़ियाँ उतर रही थीं, कि श्रीमती शर्मा ने गीता के कंधे को जोर से दवाते हुए कहा—"मिस पाल, वो देखिये—नीचे सडक पर। 'वह' जा रहा है....' श्रीमती शर्मा की आवाज में तिलस्म देखने की सी रोमांचकता थी और सीढ़ियाँ उतरने में साँस फूल जाने से एक विचित्र किस्म का असंतुलन भी—'देखिये.... वही है। मफलर लपेटे हुए....'

इन लोगों में से कई ने अभी तक सिर्फ अफवाहें सुनी थीं और चर्चाओं से ही उसके रूप-रंग, कद-काठी के बारे में अनुमान लगाती रही थीं। गीता काफी तेजी से सीढ़ियाँ उतर गई। साथ-साथ तीनों अन्य अध्यापिकाएँ भी; लेकिन जब तक ये लोग सड़क पर पहुँचे, वह मोड़ काटकर आगे निकल चुका था।

"धत्तेरे की, सरवा निकरि गवा!" श्रीमती सक्सेना ने ठेठ पूर्वी लहजे में कहा और हँसने लगीं—"इस मर्दुवे को तो हम-जैसी औरतों से अपनी मुँह-दिखाई वसूल करनी थी....।"

"मिस पाल भी, शायद, ठीक से देख नहीं पाई।" सड़क तक पहुँचती हुई श्रीमती शर्मा ने हाँफते हुए कहा।

"हाय, मिसेज शर्मा! आपको भी लगातार यही चिन्ता है कि मिस पाल ने उसका चेहरा नहीं देखा। क्यों न हो, साहब, आशिक का चेहरा तो सबसे पहले माशूक के ही देखने की चीज है।"

"आप, मिसेज सक्सेना, हमेशा और हर जगह सिनेमाई भाषा इस्ते-

माल करती हूँ। और आपकी जानकारी के लिए मैं यह भी बता दूँ कि उसका चेहरा मेरा सैकड़ों बार का देखा हुआ है। आप लोगों को तो इस शहर में बने हुए अभी ज्यादा वक्त हुआ नहीं है, मैं यहीं पैदा हुई थी। कुछ साल बाहर बिताने के बाद फिर लगभग सात-आठ वर्षों से यहाँ हूँ। किसी जमाने मे यह यहीं, सी० बी० मे पढ़ता था। मीना तब मिसेज तिवारी नही थी, सिर्फ मीना दुबे थी और ये दोनो एक-दूसरे के रोमांस में डूबे हुए घूमते थे....इसी शहर मे...."

"तो आप लगातार यह रट क्यों लगाये थी कि उसे देखना है? जब वारदात हुई थी, तब से हर दिन आपका यही कहना था, कालेज आते-जाते या शहर घूमते हुए, कि 'कही दिख जाए, तो मुझे जरूर बताना....' आपकी जड़ें वास्तव मे जमीन से काफी नीचे तक है, मिस पाल!"

"अरे, तो आप किस हवा में है, मिसेज सक्सेना! हमारी मिस पाल काफी पुरानी 'रिकार्ड-होल्डर' है। इस मजनू को तो सिर मुड़ाए जुमा-जुमा आठ रोज हुए है। मिस पाल के सामने तो वह बच्चा है, बच्चा...."

मजाक करने की उत्तेजना में श्रीमती शर्मा का गला और भी बैठ गया और वो खँखारने लगी।

"मिसेज शर्मा जब जोर-जोर से खाँसती है, तो लगता है, कोई मीनार हिल रही है...."—अब तक चुप चली आ रही प्रभा जायसवाल ने व्यंग्य किया।

"मीनार नही, खँडहर कहिए, खँडहर!....प्रभा जी, कभी यह खंडहर भी जरूर-जरूर आबाद रहा होगा...."—मौका देखकर गीता पाल ने रद्दा कसना शुरू ही किया था कि प्रभा जायसवाल ने जोड़ दिया—"सो तो अब भी है...."

"अरे नही, मैं आधे दर्जन बच्चों से नहीं, शुद्ध रोमांस से आबाद होने की बात कह रही थी।"—गीता पाल ने अब खुलकर ठहाका लगाया!

"सब आपकी तरह 'एडवेंचरस' नही होतीं, मिस पाल! मरा मुर्दा

ढोना सब के वस का नहीं होता।''—श्रीमती शर्मा की आवाज अभी भी पूरी तरह संतुलित नहीं हुई थी, लेकिन अपने कहे हुए की प्रतिक्रिया गीता-पाल के चेहरे पर देखने के लिये, अपनी आँखों को उन्होंने मछियारे पक्षी की चोंच की तरह एकाग्र कर लिया था।

उन सभी के वीच में से गीता पाल का अतीत झपट्टा मारता हुआ-सा उड़ गया और सभी ने अनुभव किया कि हवा का काँपना अभी तक गीता के चेहरे की त्वचा पर ज्यों-का-त्यों वना हुआ है।

मिसेज सक्सेना ने स्थिति को सँभालने की कोशिश करते हुए कहा—''आइए, 'कवाना' में एक-एक प्याली काफी हो जाए। भई, इस वात को मानना पड़ेगा कि मिस पाल हमारे वीच की रौनक हैं। मै अभी पिछले ही दिनों किसी फ्रेंच राइटर का एक 'नॉवेल' पढ़ रही थी। नाम याद नहीं आ रहा है इस वक्त। उसकी नायिका हमारी मिस पाल की तरह है। वह भी ऐसी जवर्दस्त 'ट्रेजेडी' से गुजरती है कि सामान्य तौर पर औरत को उसमें टूट जाना चाहिए, लेकिन उसका चरित्र, साहव, और ज्यादा निखर आता है। मुझे याद आ रहा है एक प्रसंग कि जव उसका नया प्रेमी कहता है कि तुम सैंतीस की उम्र में भी वेहद खूवसूरत लगती हो।' तो वह सामान्य औरतों की तरह खुश होकर या झेंपकर चुप रह जाने की जगह, अपने नये, सिर्फ उन्नीस वर्ष के नवयुवक प्रेमी के गालों पर हाथ फिरा देती है और कहती है, 'प्यारे लड़के, अव जो खूवसूरती तुम देख रहे हो, यह जवानी की नहीं, वल्कि अपनी जवानी के नतीजों को वर्दाश्त करने की खूवसूरती है और यह अगर किसी औरत में आ जाए, तो फिर कभी खत्म नहीं होती है।'....ये लेखक लोग भी, साहव, मानना पड़ेगा कि अद्भुत होते है। औरतों के वारे के जितनी 'जैनुइन' और रहस्यमय वातें ये लोग जानते हैं, शायद, खुद हम औरतें नहीं जानतीं....''

सभी ने पाया कि श्रीमती सक्सेना की वातें सुनते-सुनते, 'कवाना' तक आ पहुँचे हैं। सिर्फ यही एक कॉफी हाउस है, जो सर्दियों के मौसम

में भी बचा रह जाता है और छोटे शहर के मायावी वातावरण में मुर्गों की भाँति मँडराते हुए नायकों के अलावा, बुद्धिजीवी किस्म के उन लोगों को भी अपने भीतर समेटता है, जो प्रेम-प्रसंगों, गप्पों, राजनैतिक मुद्दों, हड़ताल-आन्दोलनों और महँगाई पर समान रूप से बहसें कर सकते हैं।

कॉफी-हाउस का इस ओर का बारामदा सड़क से लगा हुआ है, सिर्फ एक चौड़ा तख्ता पार करना पड़ता है। कुर्सियाँ-मेजें वगैरह पिछले, पश्चिम की ओर वाले बारामदे में पड़ी रहती हैं। वहाँ से शहर का निचला और घना बसा हुआ हिस्सा पूरा दिखाई देता है।

शहर के इस घने हिस्से और इस कॉफी-हाउस के बीच लगभग फर्लांग-भर की खूबसूरत ढलान है। सीधे पार नजर देखने पर, झील के पार का पश्चिमी ओर का घना अरण्य भी दूर-दूर तक दिखाई देता है। पहाड़ की चोटियों पर देवदारु के ऊँचे वृक्षों की जड़ों में होता हुआ-सा सूर्यास्त भी। शहर के इसी पश्चिमी पार्श्व में शहर के अधिकांश स्कूल-कालेज हैं और चोटी पर सलीब में ठुके हुए ईसा के कारण आध्यात्मिक और ऐतिहासिक दिखता हुआ संत पाल चर्च भी।

बेयरा इस वक्त सीजन वाली 'यूनीफार्म' में नहीं था और बरामदे में बैठा ऊँघ रहा था। पटरे पर पाँवों के पड़ते ही, वह अपनी अभ्यस्तता में लौट आया और उसके चेहरे पर देर तक प्रतीक्षा करने के बाद दिखाई देने वाले ग्राहकों के आने के बाद की चमक फैल गई।

"क्यों, हरीसिंह, कुछ काफी-वाफी का जुगाड़ है, या नहीं?"

"होगा, जरूर होगा, मेम साहब! बढ़िया काफी पिलाऊँगा। आइए-आइए।" कहते हुए, हरी सिंह पिछले बरामदे की तरफ निकल गया और जब तक ये चारों कमरा पार करके पहुँचे, मेज-कुर्सी पर कपड़ा फेर दिया। गर्द मक्खियों की तरह उड़कर, धीरे-धीरे बैठ गई।

"क्यों, अकेले हो? बाकी साथी और मालिक नहीं हैं क्या?"

'कवाना' के सूनेपन को घूरते रहने के बाद, श्रीमती शर्मा बोलीं—"गंगाराम भी नहीं दिखता..."

अब तक कुछ गम्भीर दिखती हुई-सी गीता पाल ने धीमे से, शरारत पूर्वक कहा—"तो, मिसेज शर्मा, यहाँ तक आने की आपकी दौड़ धूप बेकार चली गई—च-चच....हरीसिंह से काम नहीं चलेगा ?"

इस बार श्रीमती सक्सेना और प्रभा जायसवाल ने भी खुल कर ठहाका लगाया, तो श्रीमती शर्मा कुछ क्रुद्ध गईं—"भई, आफ्टर ऑल, हम सब लेक्चरर्स हैं। इस तरह की 'लूज टाक्स' करते हुए...."

गला फँस जाने से श्रीमती शर्मा यह कहते-कहते रुक गयी थीं—'हम लोगों को जरा वक्त और जगह का भी ध्यान रखना चाहिए' कि तभी प्रभा जायसवाल ने लम्बी उसाँस भरते हुए, बड़े नाटकीय ढंग के कहा—"आफकोर्स, डियर, आफ्टर ऑल...."

तीनों के सम्मिलित ठहाके ने श्रीमती शर्मा के स्थूल शरीर को भी हिला दिया, लेकिन उनका ठहाका लगाने की मुद्रा में ऊपर उठा हुआ चेहरा खाँसी से दबकर, नीचे झुक गया।

बेयरा चुपचाप खड़ा था, असम्पृक्त दिखता हुआ-सा, लेकिन उसकी आँखें बोल रही थीं।

"हरीसिंह, चार प्याली बढ़िया, गर्मागर्म काफी पिलाओ...." प्रभा जायसवाल ने काफी खनकती-सी आवाज में कहा और हरीसिंह के मुड़ते ही, खिल-खिलाकर हँसती चली गई।

"हाय, यह पटाखा अब किस बात पर फूटा ?"—श्रीमती सक्सेना प्रभा के कन्धे को झकझोरती हुई-सी बोली, "तुम क्या आज मिस पाल का कोटा पूरा करने में लगी हुई हो ?"

"आज ये मूड मे आ गयी है। आप लोग जानती ही है, जब बछिया रस्सी तुड़ाती है, तो बहुत दौडती है...."

"कितने साल की वछिया ?" श्रीमती सक्सेना ने बच्चों की शरारत के साथ पूछ लिया—"प्रभा, तुम्हारी उम्र उस वक्त क्या होगी ?"

इस बार फिर चारों की हँसी फूटी और श्रीमती शर्मा फिर खाँसते-खाँसते परेशान हो गईं। इस बार उनके चेहरे पर थकान-सी उभर आई।

"अच्छा, अब 'जोक्स' बन्द।" गीता पाल ने गम्भीर बनने का नाटक करते हुए कहा "हाँ भई, जायसवाल, आप क्यों बिला वजह हँस पड़ी थी ?"

"अरे भई, सब आप लोगों की सोहबत का असर है। आप लोगों को टोकने की आदत ऐसी पड़ गई है कि बेचारी मिसेज शर्मा हरीसिंह से गर्म-गर्म काफी पिलाओ, डियर !' कहते-कहते रह गईं।"

"हाय, ऐसा हो क्यों नहीं गया। वेचारा धन्य हो जाता।"

फिर ठहाके लगते कि हरीसिंह की आवाज सुनाई दे गई—"मेमसाव, चीनी-दूध अलग से ले आऊँ, या तैयार काफी...."

"भई, वहीं से वनाकर ले आओ। सर्दी काफी है। चीनी-दूध लेकर वनाते-वनाते वेमजा हो जायेगी।" प्रभा जायसवाल ने ही जवाव दिया और उसके ओझल होते ही, धीमे स्वर मे वोली—'यह हरीसिंह दिखने में जितना वुद्धू है, उतना ही शरारती। सुना है, लड़कों और मर्दों को यह वहुत रस ले-लेकर किस्से सुनाया करता है—लड़कियों और औरतों के वारे में। खास तौर से अनमेरिड लेडीज के वारे में।"

"अरे चलिये। वेचारा किसी तरह अपना वुढ़ापा तो काटता है...." इस वार श्रीमती शर्मा ने मजाक किया ही था कि गीता पाल ने चुटकी लेते हुए कहा—"देखा, श्रीमती सक्सेना आपने ! 'क्लास-सिम्पेथी' इसी को कहते है।"

"मिस पाल, कम-से-कम आप अब वुढ़ापे का मजाक उड़ाना छोड़ दें। सीग तुड़ाने से गैया को वछिया वनते कहीं नहीं देखा गया। हम सादगी से रहते है, तो पैतालिस में पचास के दिखते है। आप 'मेक-अप' से पैंतीस को पचीस में वदले रखना चाहती है...."

"आप तो, श्रीमती शर्मा, 'सीरियस' होने लगीं।" गीता पाल ने श्रीमती शर्मा के किंचित सख्त पड़ते हुए चेहरे को बच्चों की सी शरारत के साथ सहला दिया, तो श्रीमती शर्मा फिर हँस पड़ने और खाँसने को लाचार हो गईं।

"मैं तो समझती हूँ, अभी आप छब्बीस-सत्ताईस से आगे नहीं होंगी। यों एक खास तरह की गम्भीरता आपकी आँखों में जरूर आती जा रही है, मिस पाल!"

"अरे, मिस जायसवाल! आप भी किस फेर में पड़ गईं!" श्रीमती सक्सेना बोलीं—"किसी शायर ने जो कहा है कि 'किसी औरत की उम्र पर न जाइए' यों ही नहीं कहा है। रह गई मिस पाल की आँखों में गम्भीरता के आ जाने की बात। जिस फ्रेंच लेखक के उपन्यास का जिक्र मैं आप लोगों से कर रही थी, उसमें लेखक मिसेज मार्था (नायिका) की मनोदशा के बारे में कहता है कि प्रेम में विफल होने के बाद इस तरह की रहस्यमय गम्भीरता औरतों को अपने से कम उम्र के लोगों की ओर आकर्षित करती है। ऐसे में वह कद्दावर पौरुष की जगह ऐसी कोमलता को पसन्द करने लगती हैं, जिसे वे संरक्षण दे सकें।....आगे वह लिखता है...."

"यानी माँ बनना चाहती हैं?" श्रीमती शर्मा ने बात साफ की।

"जी नहीं, बल्कि ऐसे प्रेमी की तलाश में रहती है, जिसे वह माँ की तरह प्यार कर सके। मैंने आप लोगों को बताया नहीं था कि उस उपन्यास की सैंतीस साला नायिका का अंतिम प्रेम एक उन्नीस वर्ष के अनुभवहीन लेखक से हो जाता है और कमाल यह देखिए अगले साल ही वह माँ बन जाती है और कुछ ही अरसे के बाद दोनों में तलाक भी हो जाता है।"

"यहाँ इस तरह की घटनायें होने लगें, तो हल्ला मच जाये....लेकिन उसकी उम्र तो उन्नीस नहीं, कुछ ज्यादा लगती है।"

"यहाँ के पुरुष-समाज से भी ज्यादा रूढ़िवादी औरतों की जमात है। अरे, हम लोगों के कालेजों के ही वातावरण को देख लीजिये। मुझे याद

है, जिस साल गीता पाल के साथ 'ट्रेजेडी' हुई थी, उसके बारे में ज्यादा इर्रेलिवेंट और मन्द बातें इसको 'क्लासिक' ही किया करती थी...."

"हम तो, खैर तभी से आपके ज्यादा मुरीद हुए हैं," प्रभा जायसवाल ने गीता पाल के गले में हाथ डालते हुए कहा, "जबसे आपके स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य इतिहास को जाना है।"

"लगता है, आप गहरी चोट खा चुकी हैं, लेकिन इतिहास बनते-बनते रह गया।"

प्रभा कुछ उत्तर देती कि हरीसिंह को आते देख, चुप रह गई।

हरीसिंह काफी लगा रखता मेज पर, तो गीता ने यों ही पूछ लिया, "आजकल तो बिक्री ठण्डी ही रहती होगी? मौसम की तरह।"

"जी मेमसाहब, बिल्कुल ठण्डी रहती है। मालिक भी इसीलिए बरेली चले गये हैं। अकेला मैं रह गया हूँ। मालिक कह गये हैं, होटल का पहरा करना और अपना खर्चा खुद निकाल लेना। आज तो सुबह से अभी तक मे सिर्फ एक पैसेंजर आया....खैर, वो तो रोज का आने वाला पैसेंजर है।"

"अच्छा, रोज आता है? इस उजाड़ मौसम में भी? कौन है भला, शहर का है या कोई सैलानी?"

"अरे, मेमसाहब, उस आदमी को क्या शहरी कहिये और क्या सैलानी। कई साल पहले यह बड़े स्कूल में पढ़ता था। आजकल तो सिर्फ हुड़दंग मचाने आया हुआ है। आप लोग तो जानती ही होंगी उसे। प्रोफेसर तिवारी बेचारे को तो उसने जान से ही मार डालने की कोशिश की थी...कुल चार-पाँच दिन पहले की तो बात...."

"कौन, शेखर ठाकुर?"—कौतूहल के सन्नाटे को तोड़ती हुई-सी, गीतापाल बोल पड़ी।

"जी मेमसाहब!"

हरीसिंह अब काफी इतमीनान से खड़ा था और ज्यादा विस्तार से बताने की उत्सुकता में उसकी आँखे काफी पैनी हो आयी थी। प्रभा जायसवाल ने गीता पाल की हथेली को दबाते हुए, धीमे कहा—"लीव दिस

टापिक' फिर उसकी ओर मुड़ते हुए, बोली—"अच्छा-अच्छा, ठीक है। यह खबर तो यहाँ के लोकल पेपर्स में भी आ गई थी। शहर के सभी लोग पढ़ चुके है और हरीसिह हम लोगों को इस वक्त अब और कुछ नहीं लेना है। तुम जाओ, आराम करो। हम लोग थोड़ी देर बैठकर चली जाएँगी।"

हरीसिह मेमसाहब के इस आकस्मिक परिवर्तन से कुछ खिसियाया हुआ-सा वापस, बाहर वाले बरामदे की ओर निकल गया, तो प्रभा बोली —"इसे आप लोग ठीक से नहीं जानती है। बहुत गप्पी और बातूनी है। कल ही हम लोगों का नाम भी जोड़ देगा कि हम लोग इस केस में बहुत दिलचस्पी ले रही थी। आप तो, मिसेज शर्मा, पहली बार इस पहाड़ी शहर मे आई है, और यह आपकी पहली सर्दी है, इसीलिए ठंड आप पर इतना ज्यादा असर भी कर रही है कि खाँसते-खाँसते आप परेशान हो जाती है। गीता जी तो, खैर, इसी शहर की 'प्रोडक्ट' हैं, लेकिन ज्ञानवती जी को और मुझे अब यहाँ तीन-तीन साल होने को आये हैं। जैसे झील में पत्थर फेंकिये, तो आर-पार तक पानी हिलता है, इस शहर में भी यही होता है। 'प्लेन्स' मे, साहब, बड़ी-बड़ी वारदातें होती हैं—आई-गई हो जाती हैं। यहाँ तो कोई एक 'स्कैंडल' हो गया, तो एक लम्बे अरसे तक लोग उसे हड्डी की तरह मुँह में लिये बैठे रहते है...."

"मिस जायसवाल ठीक कह रही है। अभी पिछले साल इनका नाम भी तो प्रोफेसर सिह के साथ जोड़ना शुरू कर दिया था लोगों ने। वह तो उनका तभी तबादला भी हो गया....वैसे यह पूछने के लिए माफ कीजिएगा, मिस जायसवाल....उस बात मे कुछ सच्चाई भी थी, या कोरी र्‍यूमर...."

"अरे, छोड़िये ज्ञानवती जी! इस बारे मे तो कई बार बता चुकी हूँ कि कुछ नही था। प्रोफेसर सिह कवितायें बहुत अच्छी लिखते थे और कुछ थोड़ा-सा शौक मुझे भी था....जैसा कि हमारी गीता जी को है....खैर मैं तो यह कह रही थी कि इन छोटे शहरों का खास किस्म का 'नेचर' होता है। एक छोर पर शरारती छोकरों का सा और दूसरे छोर पर 'रिटायर्ड' बूढ़ों का जैसा।"

"वाह, मिस जायसवाल, उपमायें खोजने में तो आप कमाल कर देती हैं। इस शहर के चरित्र की इतनी खूबसूरत परिभाषा आज तक किसी ने न दी होगी।...जनाब, कोफ्त तो होती है यह कि ज़रा-सी भी कोई बात हुई नहीं कि इस शहर के लोगों की नज़रें मक्खियों की तरह आपके चेहरे पर बैठना शुरू कर देती हैं...लेकिन इसका दूसरा पहलू भी है। यह सब न हो, तो सर्दियों और बरसात के दिनों में तो इस शहर में रहना मुश्किल हो जाय। छोटी-सी घटनाओं को सनसनीखेज बना देने की कला को इस शहर के लोगों ने अपनी 'बोरियत' को तोड़ने का नुस्खा बना लिया है। अफवाहों को 'बुमरंग' की तरह नचाने का आर्ट—इटिज रियल एचीवमेंट!"

गीतापाल ने अपनी बात समाप्त की ही थी, प्रभा जायसवाल ने उसे फर्श पर पड़े हुए तागे की तरह उठा लिया—"देखिये न, आखिर में बात सिर्फ इतनी-सी निकली कि दो-चार थप्पड़-घूंसे रसा दिये थे, बस! हाँ, सुना है, मार डालने की धमकियाँ जरूर दी थीं, लेकिन सारे शहर में हल्ला हो गया कि 'कत्ल कर दिया, हलाल कर दिया, रिवाल्वर से उड़ा दिया।' ....उस बेचारे की ऐसी तस्वीर खींच दी, जैसे शहर में डाकू मानसिंह आ गया हो। मेरी तो मिसेज मैठाणी से राह चलते थोड़ी बातचीत हुई थी। वह बता रही थी कि लोगों ने उसका हौआ खड़ा कर रखा है। हालांकि वो भी इतना जरूर कह रही थी कि लड़का चूंकि अपने प्रेम में 'सिंसियर' रहा है और भावुक ज्यादा है—ऐसे में डर जरूर लगता है कि उत्तेजना में कुछ ज्यादा गलत भी कर बैठे। ....चलिए, एक दिन मिसेज मैठाणी से मिल आया जाय। उन्हीं की 'ओकवुड' कॉटेज में तो वह रह रहा है। हालाँकि बुढ़िया को सख्त होते भी देर नहीं लगती।"

"ओहो, तो उस 'हीरो' में आपकी दिलचस्पी भी मिस पाल से कम नहीं है?'

"नहीं, बाबा! इन सब किस्सेबाजियों में पड़ना ठीक नहीं है। मिसेज मैठाणी के यहाँ आते-जाते लोग देखेंगे, तो फुसफुसायेंगे जरूर। वैसे मीना के कालेज में क्या 'रिएक्शन' हुआ है?"

"वहाँ की हवा भी मिसेज मैठाणी ही ज्यादा सही बतला सकती हैं...."

"अरे, हाँ, वो मीना के कालेज में ही हैं।....खैर, वो तो हमारे ही वर्ग की है। कभी एकाध दिन गणेश चट्टान की तरफ घूमते-घामते जाया जा सकता है। यों कालेज आते-जाते में दिखती तो हैं, लेकिन सड़क पर तो इस तरह की बातों का जिक्र छेड़ना अच्छा नहीं। आप सभी लोग शायद जानती न हों, मिसेज मैठाणी ने एक जमाने में एक दाढ़ीवाला बकरा पाल रखा था। खैर, वह काफी लम्बा किस्सा है। बाद में कभी मिसेज मैठाणी के मुँह से ही सुना जाएगा। सुना है, उस दाढ़ीजार बकरे के बारे में बोलते वक्त बुढ़िया बहुत भावुक हो जाती है। तो, मिसेज शर्मा, कभी चला जाए? अगले इतवार...."

"नहीं, भई! आप लोगों को ही मुबारक हो। उतनी चढ़ाई मेरे बस की नहीं। चलिए, अब उठा जाए। हमें घर जरा जल्दी पहुँचना है।"
—श्रीमती शर्मा उठी ही थीं कि उनकी कोहनी से टकराकर काँच का गिलास नीचे गिर गया और उसके टूटने की खनखनाहट के पूरी तरह समाप्त होने से पहले ही हरीसिंह की आवाज आई—"क्या हुआ, मेमसाहब?"

गीता पाल धीरे से बोलीं—"कुछ नहीं, श्रीमती शर्मा तुम्हारे लिये अपनी निशानी छोड़ती जा रही हैं।"

अपने सम्मिलित ठहाकों में लिपटी हुई-सी ही, तीनों सड़क पर आ पहुँचीं। श्रीमती शर्मा पैसे देने के लिये पीछे रुक गई थीं। लौटीं तो गम्भीरतापूर्वक बोलीं—"अठन्नी मैंने गिलास की भी 'पे' कर दी। हालांकि 'कोई बात नहीं, मेमसाहब, गिलास तो यहाँ टूटते ही रहते हैं' कह रहा था, लेकिन अहसान-सा जता रहा था....।"

"ओह, यह सब बताने की जरूरत ही क्या थी, श्रीमती शर्मा! लगता है, भीतर-ही-भीतर कहीं 'गिल्टी कांशेंस' आप में आ गई है?"—गीतापाल ने फिर मजाक किया, तो श्रीमती शर्मा खिसिया गईं। बोलीं—'भई, आप लोगों के बातूनीपन से पार पाना मेरे बस का नहीं। किसी दार्शनिक ने

ठीक कहा है कि औरत जब तक प्रेम में रहती है, तभी तक वह अपनी भाषा में भी रहती है। बाद में तो वह सिर्फ दूसरों की भाषा और दूसरों के लिए बोलती है। प्रभा जी और मिस पाल अभी भी प्रेम की तलाश में है और इसीलिए इन लोगों की भाषा भी इन्हीं की है....।"

"जान तो, मिसेज शर्मा, लगता है, अब 'रमाम' मेरे भी मुंह में आ गई है। अच्छा, आप तो यहीं से रास्ता बदल लेंगी, अब फिर कब भेंट होगी ?"

"अगले इतवार को" कहती हुई श्रीमती शर्मा नमस्कार की मुद्रा में बायीं ओर को जाती हुई पतली सड़क पर मुड़ गई, "मुझे कोई खास दिलचस्पी नहीं, लेकिन आप लोग तय कर लेंगी, तो चली चलूंगी।"

शहर के निचले, अपेक्षाकृत घने हिस्से की ओर बढ़ते हुए—तीनों अब कुछ चुप थीं।

पत मार्केट वाले चौराहे तक पहुँचने पर उन लोगों ने एकाएक देखा कि वह सामने से आया और एक उड़ती हुई-सी नजर तीनों पर डालता हुआ, तेजी से, 'ओकवुड काटेज' की ओर जाती हुई सड़क पर आगे बढ़ गया।

तीनों ने धीमे से मुस्कराते हुए, एक साथ लम्बी साँसें लीं।

गीता पाल ही बोली—"मैं पहले भी देख चुकी हूँ, लेकिन आप लोग जो पूछ रही थी कि इतनी उत्सुकता मैं क्यों दिखा रही थी, तो इसकी वजह सिर्फ यह है कि मैं इसको अब देखना चाहती थी। देखना चाहती थी कि एक हताश और 'रिवेच' मे बौखलाये हुए प्रेमी का चेहरा कैसा दिखता है !"

"तो देखा...."

"अरे, नही। वह तो किसी झपट्टा मारकर उड़ती हुई चील की तरह निकल गया...."

"देख लीजिये, मिस पाल, कहीं आपका कुछ उठा न ले गया हो....? सुना है, बहुत दिलफेंक है...."—प्रभा ने श्रीमती सक्सेना के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, तो पहली बार गीता पाल कुछ गहरी उदासी में डूबती-सी दिखाई दी। बोली—"प्रेम में मिलने वाला विश्वासघात कितना तोड़ देने वाला होता है, आप लोग अंदाजा नही लगा सकती।"

"वैसे यह सब कितना विचित्र है—आपका मर्दो के प्रति दुखी और उदास होना।" —प्रभा जायसवाल ने लम्बी साँस लेत हुए, व्यंग्यपूर्वक कहा, तो गीता पाल ने एक क्षण उसे घूरा, लेकिन फिर तुरन्त हँस पड़ी—"इस टॉपिक पर फिर कभी बातें करेंगे, मिस जायसवाल ! इस वक्त मैं चलूँ। घर आ गया। नमस्कार। नमस्कार मिसेज सक्सेना !"

तीनों अलग-अलग हुई, तब तक दोपहर ढलने को हो आई थी। अकेले-अकेले चलते हुए, शहर में फैले झीने कोहरे को उन लोगों ने ज्यादा गहराई से अनुभव किया।

● ●

२

ओकवुड कॉटेज काफ़ी ऊँचाई और एकान्त में है। देवदारु, चीड़, बाँज और पाकर के वृक्षों से घिरा हुआ। श्रीमती मैठाणी ने नारंगी, सेब, आलूबुखारा और खुबानी आदि फलों के कुछ पेड़ भी लगा रखे हैं, जिनके बीच ओकवुड कॉटेज, अपने पुरानेपन और फीके पड़ चुके टीनों की छत के बावजूद आकर्षक लगता है।

दक्षिणी छोर पर ऊबड़-खाबड़ सँकरी घाटियों के ऊपर से सिर्फ़ मोटर की सड़क किसी तरह निकल गयी है। कहीं छिटपुट घर सड़क के किनारे सटे हुए बचे हैं। घनी आबादी और दूकानों-होटलों वाली मुख्य बस्ती, उत्तर-पूर्व और पश्चिम में पालदार नावों की तरह फैली हुई पहाड़ियों के बीच के चौरस इलाके में है। बिखरी हुई आबादी और दफ़्तरों की दुनिया तीनों ओर की खूबसूरत पहाड़ियों पर ही बसी हुई है। घरों के बीच में अच्छा-खासा अन्तराल है और पहाड़ियों पर की पतली-सँकरी सड़कें, मुख्य शहर की ओर पतली जलधाराओं की तरह बहती हुई-सी निकल गयी हैं।

आज भी काफ़ी देर के बाद आँख लगी थी। वह उठा, सवा आठ बज चुके थे। खिड़की खोलने पर उसने पाया, बाहर का सब-कुछ घने कुहरे में डूबा हुआ है। खिड़की के समीप के पौधों और वृक्षों के पास का पूरा परिवेश आसमान में बदल चुका-सा लग रहा था। उसे चाय पीने की इच्छा हुई। उठने के साथ ही अपने सारे अस्तित्व में कोहरे की तरह भरी हुई नींद विलीन हो जाती है और रिक्तता हावी होने लगती है। अपने एकान्त और मौन में अपने-आप को सहना—इन दिनों इससे कठिन कुछ

नही रह गया है। वह श्रीमती मैठाणी की प्रतीक्षा करना चाहता था। सुबह-सुबह उनके मद्धिम-मद्धिम मुस्कुराहट से भरे चेहरे को देखना और चाय पीना—कुछ क्षणों के लिए एक राहत अनुभव होती है।

कुछ देर खिड़की की ठंडी छड़ों पर उँगलियाँ फिराते रहने के वाद, उसे लगा, आज श्रीमती मैठाणी अभी विस्तर पर से उठी नही हैं। कमरे से वाहर निकल कर, एक वार उसने ऊपर एक कोने में वने छोटे-से रसोईघर की ओर देखा और मफ़लर लपेटता हुआ आगे निकल गया। एक क्षण को उसे लगा कि पीठ-पीछे के शून्य मे से कोई आवाज़ पक्षी की तरह उड़ती हुई-सी, किसी पेड़ पर वैठ गयी है। यह सचमुच कितना विचित्र है कि वह अपने आस-पास के परिवेश को देखने की जगह, सिर्फ़ अनुभव करता है। कल रात फिर वह कल्पना करता रहा था कि पिछली घटना के वाद प्रोफ़ेसर तिवारी और मीना मे कलह वढ़ता जाता है और इस कलह का अन्त सम्वन्ध-विच्छेद में होता है। किसी साँझ के झुटपुटे में, हताशा और भविष्यहीनता के अँधेरे को टटोलती हुई-सी मीना फिर उससे टकरा जाती है, अपने निर्णय की करुण और हास्यास्पद परिणति में लिथड़ी हुई। पश्चात्ताप और आत्मग्लानि से विवर्ण। निरुपाय और दीन। किसी अदृश्य शक्ति के सामने प्रार्थना में घुटने टेकती हुई-सी।

अपनी इस तरह की कारुणिकता में वह उसे किस तरह देखेगी? किंचित् भूरी और कंजी आँखों में क्षम्यता का तिरोभाव शायद उसे किसी शापग्रस्त अप्सरा की-सी स्थिति में डाल देगा…और तव…तव वह अपने आप में एक दिव्यता अनुभव करेगा। दिव्यता, जो अपराधी को क्षमा कर सकने की उदारता में से आती है।

मीना को क्षमा कर चुकने के वाद, उसे आलिंगनवद्ध कर लेने की कल्पना में वह विह्वल ही नही, उत्तेजित भी हो गया था और उसके साथ विताये हुए प्रेम-प्रसंगों को स्मरण करते हुए नितान्त मायावी किस्म के सुख में वह लगभग कौतुकपूर्ण होने लगा। लेकिन जैसा कि पिछले दिनों होता रहा है, एकाएक ही अपने वर्तमान मे लौट आने की विक्षुब्धता में वह

लौट आया और बिस्तर पर से उठ खड़ा हुआ। देर तक कमरे के अँधेरे में टहलते हुए, वह लगातार बेचैनी अनुभव करता रहा। उसने तय करने की कोशिश की कि सुबह अपनी 'डायरी' को कमरे में इस तरह खुली छोड़ जायेगा कि श्रीमती सेठाणी उसे देखें और पढ़ें। विफलता और हास्यास्पदता के इस अस्तित्वग्रासी अँधेरे में इस महिला की करुणा के अतिरिक्त और कुछ भी ऐसा नहीं रह गया है, जिसमें आलोक की गुंजाइश हो।

सहसा उसे याद आया कि वह ओकवुड कॉटेज में नहीं, होटल के सामने है और उसने अपने चेहरे पर मफ़लर को थोड़ा-सा और कस लिया। आईने में अपने प्रतिबिम्ब को देख कर, उसे हताशा घेर लेती है। कोहरे में से गुजरते हुए अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को अनुभव करने की-सी तरलता बनी रहती है। ओकवुड रेंज की ओर से शहर की दिशा की ओर हाथों से सँवारी गयी-सी इस ढलान को पार करने में उसे परिश्रम नहीं करना पड़ा है। शहर के इस अपेक्षाकृत समतल हिस्से तक वह नदी मे बहता हुआ-सा आ पहुँचा है। ओकवुड कॉटेज वापस पहुँचने पर, अपनी 'डायरी' मे वह अपने इस अनुभव को कविता के रूप मे लिखने की कोशिश करेगा।

होटल के बाहर पड़ी बेंच पर बैठते हुए, उड़ती हुई-सी दृष्टि उसने अपने चारों ओर डाली। वह पंडित को चाय के लिये आवाज देना चाहता था, लेकिन उसे लगा, यहाँ तक आते हुए जितने कोहरे को उसने पार किया है, उसकी आवाज उसमें विलीन हो गयी होगी। वह अभी भी अपने-आप मे डूबा-सा ही रह जाता कि उसे कामरेड सूरज की खुरदुरी और तेज आवाज सुनाई दे गयी—"कामरेड ठाकुर, बाहर सर्दी में कहाँ बैठे हो यार, भीतर चले आओ। पंडित, ठाकुर साहब के लिये एक गिलास कडक तेज चाय।...."

वह भीतर पहुँचा तो उसने नित्य की तरह फिर यही अनुभव किया कि उसकी उपस्थिति ने भीतर बैठे लोगों को चौंकाया है। उसके सँभल कर बैठने और (उत्सुकतापूर्वक देखने की अमूर्त्त आवाजों को उसने अनुभव किया और उसके चेहरे पर खिसियाहट फैल गयी।)

"लगता है, प्यारे, रात ठीक से सोये नहीं हो ! 'डायरी' लिखते रहे क्या ? मुलाकात तो हुई होगी ?"—कन्धे को दबाते हुए, कामरेड सूरज ने पूछा, तो उसका चेहरा और ज़्यादा सख्त हो आया।

"कामरेड, माफ़ करना। ये सब बातें यहाँ पर करना ठीक नहीं। दूसरों का मजाक उड़ाने या स्कैंडलों में दिलचस्पी रखने की सामन्ती मनोवृत्ति में, प्यारे, हमारा पूरा मुल्क जकड़ा हुआ है।"—इस बार कामरेड ने फुसफुसाते हुए कहा—"चलो, यहाँ से दफ़्तर चलते हैं। तुम्हारी कविता का 'प्रूफ' भी दिखा देंगे। और 'डायरी' कब तक दे रहे हो ? ख़ैर, ये बातें वहीं होंगी। पंडित, जरा चाय जल्दी देना। कड़क तेज़......"

चाय पीकर दोनों उठे तो उसे लगा—लोग अपनी-अपनी जगह पर थोड़ा-सा उचके हैं। कुल पाँच-सात लोग आपस में बिखरे हुए-से बैठे थे, लेकिन उसे लगा, उसे हज़ारों की भीड़ को चीरते हुए बाहर निकलना पड़ रहा है।

'क्रान्तिकारी उत्तरांचल' का दफ़्तर, प्रेस और कामरेड सूरज का रहना—सब कुछ सिर्फ़ दो कमरों के छोटे-से मकान में है। बाहर छोटा-सा आँगन है, उसके किनारे आलूबुखारे के सर्वहारा पौधे खड़े हैं और उन्हीं में से एक पर 'साइनबोर्ड' ठोंक दिया गया है—'जनवादी चेतना का अग्रदूत—क्रान्तिकारी उत्तरांचल'। प्रतीक-चिह्न के रूप में गहरे लाल रंग में मशाल भी बनी है।

"बाहर बड़ी ठंड है, भीतर बैठेंगे।" कहते हुए जाते-जाते कामरेड सूरज ने साइनबोर्ड की ओर संकेत किया—"हिन्दुस्तान के लोगों की जिन्दगी में अभी 'कम्युनिज्म' इसी स्थिति में है—आलूबुखारे के पेड़ पर टँगे हुए लाल 'साइनबोर्ड' की शक्ल में। कामरेड लेनिन ने कहा है कि लोगों को अपने-आप को कम्युनिस्ट के रूप में घोषित करने की नहीं, पहचानने की जरूरत होती है''''कामरेड लेनिन का कोई जवाब नहीं है, प्यारे ! उसकी यह बात रोमांस-जैसी बूर्ज्वा चीज पर भी ज्यों-की-त्यों लागू होती है। तुम भी प्यारे, अपने 'रोमांस' को लाल परचम की तरह

सारे शहर में मत घुमाओ, प्लीज !""मैं जानता हूँ, दोस्त, तुम इसी बात पर वापस लौट जाना चाहोगे, लेकिन मैं तुम्हें रोकूंगा और तुम्हें रुकना होगा। तमाशबीनों के इस शहर में तुम्हें कामरेड सूरज-जैसा दोस्त नहीं मिलेगा। मैं जरा-सा बीड़ी सुलगा लूं""।"

इस सख्त और बकबकिया आदमी से उसे खीझ ही होती है और ऊब, लेकिन इतना वह जरूर अनुभव करता है कि उसकी विक्षुब्धता और बौखलाहट के प्रति मजाक उडाने की क्रूरता इसमें नहीं है। बस, यह आदमी तार्किकों की तरह पेश आता है और हावी होने की कोशिश करता है। उसने तय किया, कुछ देर बैठेगा।

"आप काफी ईमानदार और उतनी ही सख्त बातें कहने की कोशिश करते हैं, कामरेड ! लेकिन आदमी को समझने का आपका पूरा नजरिया किताबी कीड़ों की तरह का है। मैं आपके साथ बैठना, बातें करना चाहता हूँ, लेकिन मैं समझ नहीं पाता कि हम दोनों के बीच की बातचीत में कोई संगति हो सकती है।"

"क्यों, भई ?"

"क्योंकि लेनिन और स्त्री में बहुत बड़ा फर्क है। लाल किताब और स्त्री के जिस्म में बहुत गहरा फासला है और इसी लिए दोनों के नतीजे भी अलग-अलग हैं। मैंने भी थोड़ा-बहुत 'लिट्रेचर' पढ़ा है, थोड़ा-बहुत इतिहास और समाजशास्त्र भी। आप रोटी-रोजी के सवाल और प्रेम-जैसी कोमल चीज को जिस तरह एक साथ गड्ड-मड्ड करने की कोशिश करते हैं...."

"वाह प्यारे, आज तो अच्छे 'मूड' में दिख रहे हो ? पहले तो तुम बड़ी पंडिताऊ भाषा इस्तेमाल करने लगते थे, या ठस्स फौजी जबान कि 'देखिये मिस्टर, अपन मिलिट्री माइंडेड है और 'डू ऑर डाई' में विश्वास रखते है ""।' और या 'स्त्री का सौन्दर्य पुरुष के सम्पूर्ण अस्तित्व को किसी अमूर्त्त अजगर की तरह जकड़ता है और जब यह जकड़ छूटती है, आदमी को खोखला कर चुकी होती है।'""प्यारे, तुमने कामरेड शब्द को उसकी

पूरी अहमियत में देखना नहीं सीखा है। औरत को सामन्तवादी और बूर्ज्वा भावुकताओं में देखने की मनोवृत्ति आदमी को एक खास तरह के अहंकार में जीने का आदी बना देती है और जब उसका यह खब्त उतरता है, तो वह या तो गालियाँ बकता है या झूठे दार्शनिक लहजे में अपने प्रेम की उन ऊँचाइयों को बखानने की कोशिश करता है, जिन पर से वह खुद मुँह के बल लुढ़क चुका होता है। अपनी बौखलाहट और खब्त को 'रोमांटिक मिथ' बना लेना बहुत आसान है, लेकिन उतना ही बेवकूफ़ी-भरा और खतरनाक भी है। जनाब, आप जिस तरह के प्रेम की ऊँचाइयों के वहम में पागलों की तरह शहर की गश्त लगाते फिरते हैं—माफ करना प्यारे, यह एक खालिस बेवकूफी है!"

वह शायद उत्तेजित हो जाता। इतने निर्मम और सख्त व्यंग्य को को सहने की मनःस्थिति में वह इन दिनों कदापि नही है। उसके मन में आया कि उठ पड़े और चुपचाप बाहर निकल जाय, लेकिन यह एक दूसरी तरह की पराजय होगी। एकाएक उसने निश्चय कर लिया कि आज कामरेड की बातों से ऊबना या खीझना नही है। वह थोड़ा और सहज होकर बैठ गया।

"माफ करना प्यारे, मेरी बातें कुछ तल्ख जरूर होती है। दरअसल जब आपकी मानसिकता बदलती है और लिजलिजे किस्म के सामन्ती अथवा रूमानी संस्कारों की केंचुल को आप उतार देते है, तो आपकी भाषा भी बदलती है। कामरेड लेनिन ने भाषा के परिवर्तित चेतना का संवाहक होने की वकालत की है...."—कामरेड सूरज ने अपने भीतर इकट्ठा किये हुए इतमीनान को हवा में छोड़ने के बाद, धीमे से मुस्कुराने की कोशिश की, तो उसके चेहरे और आँखों की सख्ती कुछ कम हो गयी और चेहरे पर की त्वचा किंचित् ढीली पड़ती हुई-सी दिखी।

"आप कोशिश तो बहुत करते हैं, कामरेड, अपने सामने पड़े व्यक्ति को अपनी 'सो कॉल्ड' सैद्धान्तिक बातों से ध्वस्त कर दें—लेकिन जब आप कुछ ज्यादा ही जोश में आकर बोलते है, तो मुझे आपकी बातों

से किसी हारे हुए पहलवान के पसीने की-सी बदबू छूटती हुई महसूस होती है।'' बातें करने का यह लफ्फाजी तेवर अपने भीतर की वास्तविकताओं के सामने घुटने टेक चुकने वाले आदमी में ज्यादा होता है—और, फार योर इन्फॉर्मेशन, मैं सचमुच मिलिट्री माइंडेड आदमी हूँ और अपनी पत्नी को सैद्धान्तिकता की वघार लगाने की जरूरत महसूस नहीं करता। प्यार मेरे लिए प्यार और मेरा निहायत व्यक्तिगत मसला है, इसका अवाम से कोई वास्ता नहीं है। मैं अगर पागलपन में हूँ तो रहूँगा। मुझे जो भी रास्ता चुनना है, वह अपने भीतर से चुनना है, दूसरों के दस्तावेजों में से नहीं। मैं यह जानता हूँ कि जो अपने प्यार में सच्चा नहीं है, वह लड़ाई में भी सच्चा नहीं हो सकता। जिसमें सच्चाई की लड़ाई लड़ने का दम होता है, उसके लिए अपनी लड़ाई अस्तित्व की शर्त होती है, फिर चाहे बाहर से वह पागलपन दिखती हो या बेवकूफी। आदमी के 'इमोशन्स' को समझने से इन्कार करने वाले आदमी, बुनियादी तौर पर वह ठूंठ होते हैं, जो अपनी हरियाली को दूसरों को बकरी की तरह चबाते हुए देखते हैं, और धीरे-धीरे सूख जाते हैं। मैं नहीं समझता कि रूस और चीन में किसी की प्रेमिका उसके साथ विश्वासघात करे, तो वह सर्वहारा फिलासफी को शहद लगाकर चाटना शुरू कर देता होगा। माफ करना, कामरेड, मेरा अपना अन्दाज यही है कि जो लोग अपनी काहिली और कायरता की वजह से जिन्दगी की सचाइयों से भाग खड़े होते हैं, बुनियादी तौर पर इस किस्म के लोग पिटे हुए पहलवानों की-सी मानसिकता के शिकार होते हैं। दूसरों का साहस उन्हें बर्दाश्त नहीं होता....''

''थ्री चियर्स फार दी डॉन क्विक्जोट ऑफ दिस लिटिल सिटी!.... वाह, कामरेड, क्या स्पीच झाड़ी है, तबीयत खुश कर दी। ह्विस्की पिलाने के लायक बयान तुमने दिया है, लेकिन अपन तो कड़के रहने के आदी हो चुके हैं। मैं सिर्फ चाय पिला सकता हूँ....''—कहते हुए कामरेड सूरज आलमारी की तरफ बढ़ गये और स्टोव निकाल कर सामने रख लिया।

कुछ देर दोनों के बीच सिर्फ स्टोव जलाये जाने की प्रक्रिया सन्नाटे को चीरते हुए पक्षी के पंखों की-सी गतिशीलता का अहसास कराती रही। जस्ते की केतली में चाय का पानी चढ़ाते हुए, कामरेड सूरज ने अपनी बुझी हुई बीड़ी को स्टोव की लपट मे ही सुलगा लिया और कुछ क्षण चुपचाप कश खींचते और चुटकी बजाकर राख झाड़ते रहे। फिर काफी गम्भीर होकर बोले—"तो तुम्हें भी यह पता है कामरेड, कि कभी हम पर भी बीत चुकी है? मैं समझता हूँ, इस तरह का वक्त हर आदमी पर पड़ता है। सवाल सिर्फ यह है कि इसे कौन किस तरह लेता है। जिस तरह तुमने लिया है, मैं फिर इसे खालिस बेवकूफी ही कहने की इजाजत चाहूँगा। इस बात में कोई तुक नहीं है कि आपकी प्रेमिका शादीशुदा औरत हो जाये, तो आप इस वास्तविकता को चुपचाप बर्दाश्त कर लेने की जगह—कि उसने आपको अपने लिए नालायक समझ कर छोड़ दिया—आप सरे-बाजार उसके पति का गला पकड़ लें। अपनी मिलिट्री-मार्का जिस्मानी ताकत के बूते पर उसे जलील करने की या उसे मारने-पीटने की कोशिश करें।" कामरेड सूरज के झिड़कने में उसने अनुभव किया, सख्ती के बावजूद, एक अदृश्य आत्मीयता है। जब कामरेड सूरज आवेग में बोलते हैं, तो उनके सूखे-से चेहरे पर एक खास तरह की चमक आ जाती है।

वह उँगलियों को आपस में फँसा कर चटकाने के बाद कुछ कहना ही चाहता था कि कामरेड सूरज ने टोक दिया—"लेट मी फ़िनिश माइ से। बात यह है प्यारे कि इधर के चन्द दिन मैंने तुम्हारे दीवानेपन की 'प्रूफ़-रीडिंग' में बिताये है और मै जनाब को यह बताना चाहता हूँ कि जिस आदमी में अपनी प्रेमिका के द्वारा किये गये फ़ैसले को बर्दाश्त करने का बूता नहीं हो—वह प्रेम नहीं, लौंडियाई करता है। जनाब, आप प्रेम करने चलें, तो इस तमीज़ को गाँठ में रख कर चलें कि औरत अपना पंचफ़ैसला हमेशा अपने हाथ में रखती है। और अब आप डॉन क्विक्ज़ोट की तरह एक मायावी संसार की कल्पना करें और उस में चक्कर काटते रहें—और

अपने अलावा हर आदमी आप को लगत, ठूंठ और पिटा हुआ लगे, तो इस 'मेन्टल परवर्शन' का कोई इलाज नही है।""एक मिनट, आप अपना बयान झाडें, इससे पहले यह चाय""और देखो दोस्त, यह ध्यान रहे कि हम दोनों के बीच सिर्फ जबानी महाभारत होगा, ओके !"

शेखर इस आशंका में था कि कही बातों-बातों में कामरेड सूरज का सन्तुलन गडबड़ा न जाये और यह भी वास्तविकता है कि अपने किये हुए के प्रति उपदेशकों की-सी आक्रामक मुद्राएँ उससे बर्दाश्त नही हो पाती।

चाय का गिलास आगे बढाते हुए, कामरेड ने बच्चों की-सी शरारत के साथ हँसने कोशिश की, तो वह खुद हँस पड़ा।

एक-दो घूंट भरने के बाद, वह बोला—"मै आप को लड़ाकू फ़ितरत का आदमी लगता हूं ?"

"नही, मै सिर्फ मजाक कर रहा था, हाला कि पिछली वारदात के बाद लोगो में तुम्हारी 'इमेज' यही है। तुम्हारी जानकारी के लिए मैं यह बता दूं कि अकेले में मै तुमसे उलझ रहा हूँ, लेकिन तमाशबीनो में हमेशा तुम्हे 'फ़ेवर' करता हूँ।"

"मुझे इस बात का अहसास है। मै आप को शायद यह समझा नहीं पाऊँगा कि अपने हत्यारे से लडना लड़ाकू होना नहीं है। शायद, उस दिन मै उसे जान से मार डालता, लेकिन यही हुआ। अचानक मेरे भीतर यह विचार आया कि इसके बाद मेरी 'इमेज' क्या बनेगी। सिर्फ़ एक हत्यारे की।""और मेरे हाथ ढीले पड़ गये ' मैं प्रोफेसर तिवारी को सिर्फ चन्द थप्पड़ मार कर रह गया। यू बिलीव मी कामरेड ! तिवारी की आँखों मे भय और चेहरे पर बदहवासी देख कर मुझे खुशी नही हुई। मैंने महसूस किया कि यह गलत हो गया है। अगर मीना को मै झापड़ मार देता तब शायद मुझे इतना बुरा नहीं लगता। लोगों ने सिर्फ अफवाह फैलायी थी लेकिन अब ठंडे दिमाग से सोचने पर मुझे भी लगता है कि मैं कत्ल कर सकता था। कभी-कभी बात हमारे बर्दाश्त कर सकने की हद से बाहर निकल जाती है। और मुझे इस बात का मलाल रह गया है कि उस वक्त

मेरे पास छुरा नहीं था। उसे थप्पड़ मारना बेवकूफी थी। इस बात ने मेरे तकलीफ को बढ़ाया है। मुझे उसे जान से ही मारना चाहिए था। लेकिन मैं आप को बताना चाहता हूँ कि जाने कैसे एकाएक मेरे दिमाग में यह खयाल आ गया कि इसके बाद अपने सम्पूर्ण और निर्दोष प्रेम के बावजूद, मैं सिर्फ हत्यारे की शक्ल में बदल जाऊँगा। हालाँकि मैं यह महसूस कर रहा हूँ कि अपने भीतर की सचाई को साबित करने के लिए मेरे पास इसके अलावा और कोई उपाय नही।····सचाई आदमी के भीतर कभी-कभी उस बच्चे की तरह पैदा होती है, जिसे माँ का पेट चीर कर ही निकाला जा सकता है। इस शहर के जो लोग मेरे ऊपर कीचड़ उछालते है, मैं उनकी परवाह नहीं करता। इस हकीकत को जानता हूँ कि दूसरों की सचाई को बर्दाश्त करना सब के बस का नहीं होता। लोग मेरे व्यवहार को देख सकते है कामरेड, लेकिन मेरे इस व्यवहार के पीछे की यातनाओं को देखना उनके वश में नहीं। मैं फिर कभी आप को बताऊँगा, कामरेड, कि इस चोट्टी लड़की के प्रेम में लद्दाख की बर्फ में मैंने किस तरह अपने को गलाया है और पागलपन का 'सर्टिफिकेट' हासिल करने के लिए-मैंने क्या-क्या 'टॉर्चर' बर्दाश्त किये है, ताकि फौज की नौकरी से छुट्टी मिल जाये और मैं इसके करीब पहुँच सकूं।....लेकिन अब सब-कुछ बेमानी हो चुकी है। मैं बहुत गहराई से इस बात को महसूस कर रहा हूँ कि या तो हत्या और या आत्महत्या—नहीं, इसके अलावा और कोई चीज मेरा फैसला नहीं कर सकती।····बस, इतना जरूर है कि कहीं भीतर यह प्यास न जाने क्यों लगातार महसूस होती है कि किसी को यह यकीन दिला सकूं कि मेरा हत्या करना सिर्फ प्रेम करना होगा। हाँ, थोड़ा-सा वक्त मुझे जरूर चाहिए। मैं पहले यह फैसला करना चाहता हूँ कि ठीक क्या होगा। सुसाइड कर लेना या····।"

आवेश में जकड़ती चली गयी आँखों मे एकाएक आँसू भर आये और वह फफक-फफक कर रोने लगा, तो कामरेड ने उसे सँभालने की कोशिश में कहा—"शेखर, तुम कुछ दिनों के लिए अपने घर क्यों नहीं चले जाते?

जब तुम खुद महसूस कर रहे हो कि तुम्हें सोचने के लिए वक्त चाहिए—तुम कुछ दिनों को घर वापस चले जाओ। फादर तो तुम्हारे शायद अब रहे नहीं।""लेकिन माँ है, भाई-भाभियाँ वगैरह हैं। परिवार के बीच रह कर शायद कुछ सही बातें सोचने का""।"

"नहीं, सूरज भाई! बन्दे ने इस गुंजाइश पर भी गौर करके देख लिया है। भाई-भाभियों के बीच में अगर अपनी हकीकतों को उघाड़ूँगा, तो सिर्फ हास्यास्पदता के अलावा कुछ हाथ नहीं लगेगा। रह गयी माँ—जो हालत मेरे दिमाग की है, मैं उसे 'फेस' नहीं कर सकता। आप ने जिक्र छेड़ दिया है, तो यह बात याद आ गयी है। जिस दिन पन्त मार्केट वाला कांड मुझसे हो गया, लगभग सुबह होते वक्त आँख लगी होगी। मैं ने सपने मे देखा कि मुझे फांसी घर में खड़ा किया गया है और माँ को अपनी अन्तिम इच्छा के रूप मे मैंने वहाँ बुलाया है....लेकिन धीरे-धीरे उसके चेहरे पर की झुर्रियाँ गायब होने लगती है और मेरे सामने वही धोखेबाज औरत खड़ी होती है""।"

वह अपने आवेश की अवरुद्धता मे चुप हो गया तो कामरेड सूरज ने इतमीनान के साथ मुस्कुराने की चेष्टा की—"दरअसल तुम में बलिदानी मूड सवार हो गया है और तुम अपनी प्रेमिका को दिखाना चाहते हो कि प्रेम सिर्फ गृहस्थी संभाल कर बच्चे पैदा करने की ही नहीं, बल्कि बलिदान की भी चीज है। तुम उसकी नजर मे अपने-आप को फरहाद सिद्ध करना चाहते हो।""लेकिन दोस्त, जब कोई औरत प्रेम करने के बाद तोते की तरह आँख फेर लेती है, तो फिर उसे समझाने की कोशिश करना कोयले को घिस कर सफेद लकीर खींचने की कोशिश करना है।"

कामरेड कुछ और कहते कि इतने में बाहर से दस्तक पड़ी और मदन भीतर आ गया—"साहब, हिमांचल मिष्टान्न भंडार का इश्तहार ले आया हूँ।"

कामरेड जब तक यह तय करते कि मदन से इश्तहार रख कर चले जाने को कहे, शेखर एकाएक उठ खड़ा हुआ—"सूरज भाई, इस वक्त

चलूंगा। अब शाम को मुलाकात होगी। मम्मी मेरा इन्तजार करती होगी। खाने की मेज पर कुहनियां टेके बैठी होंगी।"

मदन शेखर की उपस्थिति देखते ही अपने-आप में कुछ ठिठक-सा गया था। कामरेड सूरज ने उसे झिड़क दिया—"तू स्साला भी ऐन वक्त पर आ टपकता है। जा, उधर मेज के ऊपर पेपरवेट से दवा कर रख दे और फूट जा!"

कुछ, खिसियाये हुए-से मदन को हड़वड़ी मे वाहर निकलते देख कर, कामरेड सूरज के होठों पर हलकी-सी मुस्कुराहट खिच गयी—स्साले को यह भी याद आ गया होगा कि पिछले वक्त इसी तरह अचानक तव कमरे में चला आया था, जव सरस्वती माता मुझसे वातें कर रही थी।

कामरेड सूरज 'सी-ऑफ़' करने की सी संजीदगी के साथ वाहर तक चले आये और अपने-आपको समेटकर, तेजी से 'ओकवुड रेंज' की तरफ जाते शेखर को वड़ी देर तक देखते रहे।

● ●

३

कुंवर अहिपाल सिंह की कार जिस वक्त शहर पहुंची, रात गहरी होने लगी थी और सन्नाटा बढने लगा था। उनकी आंखें किंचित् ऊपर उठी और उन्होंने देखा कि होटल विश्रान्त अपने आस-पास के पोलों पर जलते हुए बल्बों की रोशनी में धुंधला-धुंधला दिखाई दे रहा है, जैसे होटल का खूबसूरत दो-मंजिला भवन अपना साया छोड़कर, कही अन्यत्र गायब हो गया हो। होटल के भीतर रोशनी हो, तो शीशों पर दिखाई देती है।

बिना किसी पूर्व-सूचना के आने के कारण उन्हें किसी की प्रतीक्षा में नहीं रहना था। उन्होंने तय कर लिया कि सीधे 'चंद्रा पैलेस' चलेंगे। रामबहादुर सो भी गया हो, तो हॉर्न सुनते ही उठ खड़ा होगा।....लेकिन कार स्टार्ट करने के साथ-साथ उन्हें लगा कि कोई परिचित स्वर उसके शोर में पानी में डाले गये पत्थर की तरह डूब गया है। उन्होंने स्विच ऑफ कर दिया।

अगली खिडकियों के शीशे ऊपर उठे हुए थे। कार के तेज गति से चलने पर तेज, ठंडी हवा आक्रमण करती थी। शीशे के पार झाँकने पर उन्हें ध्यानसिंह पनवाडी की दूकान की अपेक्षाकृत तेज रोशनी में से कोई आदमी हडबड़ाता अपनी ओर आता दिखाई दिया और जब तक उन्होंने शीशा आधा नीचे गिराया 'जै हिंद सरकार!' की कॉर्निश में झुकी आवाज सुनाई दी।

"जै हिंद, हुजूर!"

"अरे भई, वर्मा! तुम यहाँ मौजूद हो? मैं तो यही सोच रहा था

कि सर्दी के मौसम में, इतनी रात को तुम शहर को तरफ उतरोगे नही। होटल का सन्नाटा तो यहीं दिख गया था।"

"बस, सरकार, यों ही पान खाने चला आया था। हुजूर, सीधे कोठी पर जाएँगे? आपके आने की कोई खबर नहीं थी। हम लोग सोच रहे थे, अब कालेज-बन्दी के बाद इतमीनान में ही सरकार आएँगे। ये तो संजोग की बात है...."

"हमने एकाएक तय किया, कालागढ़ वाली सीट का 'रिइलेक्सन' इस बार हम खुद लड़ें, तो कोई हर्ज तो है नही। यह बात तुम्हें हम जल्दी मे बताये दे रहे हैं, क्योंकि अब शहर वाला मोर्चा तो खुद तुम्हे ही देखना होगा।"

प्रफुल्लता में लोट-पोट दिखने की सी मुद्रा में 'सरकार, यह तो मेरी खुशनसीबी होगी', वाक्य को उन्होंने अभी अपने मस्तिष्क मे संगठित किया ही था कि कुंवर अहिपाल सिंह ने कार स्टार्ट करते हुए, अचानक पूछा—"तुम्हारे होटल मे इस वक्त कुछ बचा तो होगा नही? मैं उम्मीद कर रहा था, सात-साढ़े सात तक यहाँ पहुँच जाऊँगा। रानीबाग के पास स्टेट मिनिस्टर फाइनेन्स मिल गये। सीताबरन पांडे के मर जाने से वेकेन्ट हो जाने वाली सीट का चर्चा चल पड़ा। बार-बार वो भी यही जोर देने लगे कि 'इस बार आप खुद ही उम्मीदवार बनें। जब आपका आदमी जीत सकता है, तो आपके सामने कोई समस्या ही नही आनी है।' मंत्री जी तला रहे थे कि सी० बी० साहब भी यही चाहते है। देश के हालात व खास तौर से इस 'चाइनीज़ एग्रेशन' के बाद, जिस तरह के मोड़ ले हे है और मदद करने के बाद, अब रशियन लॉबी जिस तरह से यहाँ ावर में आ रही है और आएगी—राजनीति से कटे रहना धीरे-धीरे वक्त से कट जाना होगा। देख लेना, इस लड़ाई के बाद देश के इकानामिकल कंस्ट्रक्शन में भी बहुत हेरफेर हो जायेगा और सरकार के पंजे दिन-ब-दिन फैलते ही जाएँगे।"

वर्मा अपनी प्रफुल्लता में अटक कर रह गये थे। कुंवर साहब की

धाराप्रवाह बातों के बीच उस वाक्य को कहने की न अब कोई गुंजाइश रह गई थी, न प्रासंगिकता। अब तो सिर्फ इस प्रतीक्षा में थे कि कुँवर साहब थमें, तो बतायें कि 'हुज़ूर, कुछ नग शायद, बचे हों। राशन वगैरह तो है ही।'

"हाँ तो मैं कह रहा था कि करीबन डेढ़ घण्टे तक मंत्री जी से बातचीत होती रही। तुम तो जानते ही हो, जुम्मा-जुम्मा दो साल पहले तक यह आदमी झोला कंधे पर लटकाये टक्करें खाता फिरता था लेकिन राजनीति में मोहरे बदलते क्या वक्त लगता है। पिछले 'जनरल इलेक्शन' में हमने इन्हें अच्छी खासी रकम ही नही दी थी, जीप भी दी थी। खैर हमें यह देखकर खुशी हुई कि तोताचश्मी इन्होंने नही बरती हमारे साथ। दरअसल हमारी पूरी कोशिश तो यही थी कि सी० बी० साहब को अपने यहाँ की सीट से लड़वाया जाए। उन्होंने यहाँ हिल-एरिया से ही लड़ने का फैसला कर लिया, तो हमारा सारा उत्साह खत्म हो गया। हमने सोचा, प्यादे को ही कुछ आगे बढा दें। सीताबरन का, कॉंग्रेस से 'नॉमिनेशन' न हो चुका होता, तो अपने ही क्षेत्र से लड़ा देते। बहरहाल, यहाँ पर बातें करने का तो वक्त है नहीं। दोपहर बाद ही 'इस्टेट' से निकल आये थे। अब भूख काफी लग आई है।'''हमारा इरादा तो रानीबाग से ही वापस लौट जाने का था।"

"तो, सरकार, आप कोठी पर चले। मैं 'एगकरी' और कोई एकाध सब्जी-सलाद जो-कुछ भी इस वक्त बना सकता हूँ, लेकर घण्टे-भर में खिदमत मे पेश होता हूँ। कुछ 'ड्रिंक' भी लेंगे हुजूर ? सर्दी तो इस बार शुरुआत मे ही सिर पर चढ़ रही है।''''"

"नहीं।''''लेकिन, वर्मा, अब इस वक्त होटल में तुम्हारे अलावा तो कोई होगा नही ? राधेश्याम तो छुट्टी से लौटा नहीं होगा ? तुम बहुत परेशानी में पड़ जाओगे। हम सोचते है, कुछ 'ड्राई फ्रूट्स' और नमकीन वहाँ एलमिरा में पड़े ही होंगे।"

"नहीं, सरकार ! इसमें परेशानी की क्या बात है। आप तो जानते

हैं, 'कुकिंग' मेरी हॉबी है। हुजूर पहुँचकर थोड़ा आराम करें, मैं पहुँचता हूँ।''—कहते हुए वर्मा होटल वाली चढ़ाई की ओर जाती सड़क का रुख करना ही चाहते थे कि कुंवर साहब ने कार का पिछला दरवाजा खोल दिया—''अच्छा, आओ। तुम्हें होटल के पास 'ड्राप' करके चला जाऊँगा खाना खाकर निकले होगे, साँस चढ़ जाएगी।''

''अब सरकार क्यों बेकार में इतनी तकलीफ उठाएँगे,'' कहते-कहते, वर्मा ने पाँव भीतर बढ़ा दिया। वर्मा ने दरवाजा बंद कर लिया और खिड़की से बाहर पान थूका, तो कुँवर साहब को ध्यान आया कि आखिर इस बीच उन्हे शराब की मद्धिम-मद्धिम बू लगातार क्यों अनुभव हो रही थी। कार कुछ आगे बढ़ी तो कुँवर साहब बोले—''वर्मा, ठंड महसूस हो, तो खिड़की के शीशे चढ़ा लेना।''

मोटर वाली सड़क से अगर जाना हो तो होटल से 'चंद्रा पैलेस' करीब सवा मील की दूरी पर पड़ता है, लेकिन ओकवुड काटेज वाले क्षेत्र के नीचे-नीचे से निकली हुई पगडंडी पर होते हुए चार-पाँच फर्लाङ्ग से ज्यादा दूर नहीं।

खाना 'टिफिन' में रखने के बाद, वर्मा पगडण्डी पर से होते हुए ही चंद्रा पैलेस पहुँचे और खाना शुरू करने से पहले, थोड़ी-सी ह्विस्की ले लेने की शुरुआत कुँवर साहब ने की। सामने की आलमारी के कपाट अब बंद थे, मगर वर्मा को उसके भीतर रखी शराब की उपस्थिति सोफे पर बैठे-बैठे महसूस हो रही थी। अब उसकी समझ में आ गया था कि उस वक्त कुँवर साहब ने शालीनतापूर्वक इन्कार क्यों कर दिया था। थोड़ा सरूर बढ जाने पर नितांत असंग होने की सी मुद्रा में वर्मा बोले—''सरकार, आपके पीछे-पीछे शहर में एक अजीब वारदात हो गई।''

कुँवर साहब ने देखा, वर्मा का पूरा चेहरा रोमांचक घटनाओं में रस लेने की पुरानी अभ्यस्तता से भर गया है।

"अच्छा, इतनी रात गये ठंड में नारद पनवाड़ी की दुकान पर इसी वजह से आप मौजूद थे।"—थोड़ा-सा मुस्कुराते हुए, अपनी बात समाप्त करके, कुँवर साहब ने घूँट भरी—"किसी ने सुसाइड-वुसाइड कर लिया, या कोई लड़की-औरत भगा ले गया? या किसी होटल-वोटल से अफ़ीम बरामद हो गई? इससे छोटी घटना को तो तुम शायद, वारदात नहीं कहना चाहोगे? और इससे बड़ी कोई वारदात तो इस 'मौज़ियापुर' शहर में, शायद, अंग्रेजों के जमाने में भी नहीं हुई? बयालिस का मूवमेन्ट भी नारद पनवाड़ी की दुकान पर पान खाता हुआ-सा गुजर गया। हकीकत में यह शहर नमकहलाल किस्म का है।"

भगवतशरण वर्मा की यह विशेषता है कि बात को कभी अधबीच में काटते नहीं। इतमीनान से सुनते रहने के बाद, बोले—"सरकार, जाहिरा तौर पर तो इससे भी छोटी वारदात हुई है, मगर उसके चर्चे से पूरा शहर जाम को भरा हुआ है।"

कुँवर साहब के चेहरे पर की त्वचा को प्रश्नचिह्न के आकार में बदलती हुई-सी देखने की कोशिश में वर्मा थोड़ा आगे को झुक गये। थोड़ा-सा खँखारकर, सधी हुई आवाज में कहते गये—"सरकार, अपने सी०बी० डिग्री कालेज में किसी जमाने में—यही कोई पाँचेक साल पहले—राजशेखर ठाकुर नाम का एक लड़का पढ़ा करता था। उसका बाप, अपने जमाने में, उधर रायबरेली प्रतापगढ़ के पास कहीं चवन्नी-भर का जमींदार था—यही सुना है। इसका बड़ा भाई पहले इसी शहर में रहकर, पढ़ चुका है और आज कल शायद, कहीं कानपुर-वानपुर की तरफ पुलिस सर्विस में है। पहले इन लोगों के मामा यहाँ सर्विस में हुआ करते थे—डिप्टी डाइरेक्टर थे।....लेकिन यह लड़का उनके 'ट्रांसफर' के बाद भी यहीं पढ़ता रहा। बहुत रंगीन किस्म का लड़का यह तब भी हुआ करता था। हालाँकि सुना है, पढ़ने-बढ़ने में तेज था और लड़कों के जुलूस-वुलूस निकलवाने-जैसी हरकतें भी करता रहता था....तो मैं हुजूर को बता रहा था...."

"भगवत बाबू, आप जो भी बात हो, उसको साले पूरे हिस्टारिकल रिफरेंसेज देते हुए कहने के आदी हो गये हैं—और आपके 'डिटेल्स' इतने लम्बे, और 'इफेक्टिव' होते है कि असली मुद्दे की जान निकाल लेते हैं। उस लड़के के बारे में मै भी बहुत-सी बातें जानता हूँ। लिखता-विखता भी था और अच्छे-खासे परचों में उसकी चीजें छपने भी लगी थीं।.... हाँ, एम० ए० करके निकल गया था, तब से सिर्फ़ एकाध बार कभी सीजन की भीड़ में आँखों के सामने पड़ा है। हाँ, तो वारदात क्या हो गई ?'

'भगवत बाबू' कुँवर साहब उन्हें तभी कहते है, जब थोड़ा खीझ जाते हैं, यह ध्यान आते ही वर्मा एक साँस मे कह गये—"सरकार तो सब-कुछ जानते हैं, मगर उसका यहाँ एक 'लव-एफेयर' भी चलता था। डॉक्टर दुबे की लड़की के साथ। हुजूर तो जानते ही है, डाक्टर दुबे को मरे कई साल हो गये और उनके परिवार में सिर्फ़-चार जने बच गये थे। उनकी घरवाली, जो कभी आजादी के मूवमेन्ट मे भी रह चुकी थीं और लोग बताते थे कि उनके पास उस जमाने के गाँधी जी और सरदार पटेल के कई खत अभी भी मौजूद है। लड़का उनका कहीं बम्बई की किसी मिल मे अच्छी पोस्ट पर हो गया है। मीना की शादी के वक्त उसे कई बार देखा। एक बार तो वहीं नारद पनवाड़ी की दुकान पर देखा था, तो मैं हुजूर को बता रहा था....मीना से छोटी एक बहन है, उषा, वह भी शायद भाई के साथ बम्बई चली गई है। बहुत ऊँचा-सा जूड़ा बनाने का शौक था उसे और, सरकार, रंग निहायत गोरा था और बहुत तेज बोलती थी...."

वाक्य पूरा करने से पहले ही वर्मा ने अनुभव किया कि कुँवर साहब के ठहाके के साथ ही ह्विस्की के कुछ छींटे उनके मुँह पर भी पड़े है और ह्विस्की की मादक गंध नथुनों में भर गई है।

जल्दी-जल्दी बोले—"सरकार, मीना की शादी अपने सी० बी० कालेज के प्रोफेसर तिवारी से हो गई थी, जो क़ेमिस्ट्री पढ़ाते है....कमीनगी की उस लौंडे ने हद कर दी, साहब ! पंत मार्केट वाले चौराहे के पास बीच बाजार में तिवारी जी का गला पकड़ लिया और कई थप्पड़-घूंसे जड़

दिये। सरासर गुण्डागर्दी है। ऐसे गुण्डा-एलीमेन्ट को शहर मे रहने देना बहुत खतरनाक है, साहब ! खतरनाक और इस शहर के बाशिन्दो के लिये शर्मनाक।"

"भगवत बाबू, आप बहुत भावुक आदमी है। दूसरो के बारे मे बताते समय भी ऐसे तैश मे आ जाते है, जैसे आपके साथ ही वारदात हुई हो। आप जो भाषा बोल रहे है, यह नारद पनवाड़ी और शारदा पडित की दुकानो से फैलती है। आपको याद है, एक बार हमारे बारे मे भी उल्टी-सीधी खबरें उड़ा दी गई थी ? और यह कौन-सी बड़ी वारदात हुई कि किसी लड़की के भूतपूर्व प्रेमी ने उसके शौहर का गला पकड़कर, दो-चार थप्पड़ जड़ दिये...." गम्भीर होते-होते, कुंवर साहब ने फिर ठहाका लगाया—"यह तो अपने प्रेम को अन्तिम रूप से ठिकाने लगाना है। वैसे मै तसव्वुर कर सकता हूँ कि इस छोटे-से शहर के लिये यह कितनी सनसनीखेज घटना है। चलो, इस साल की सर्दियाँ काटने का एक जुगाड हो गया यहाँ के लोगों के लिये।....शारदा पंडित को 'स्वदेश'-सेवा का मौका मिल गया। आपके बेटे के पर्चे मे भी यह किस्सा छप ही गया होगा ? लोकल पर्चो के लिये तो इस तरह की 'न्यूज' बहुत महत्त्वपूर्ण होती है।.. लेकिन कोठी पर आते ही डाक पहले देख ली थी हमने, 'क्रांतिकारी हिमांचल' का कोई 'इश्यू' नही था। हम तो उसके 'लाइफ-मेम्बर' भी बन गये थे.... 'स्वदेश' अभी हमने पलटा नही। हमे तो इस पर्चे से शारदा पडित के जिस्म की बू आने लगती है।...."

"क्या कहे, सरकार ! यही तो मेरी सबसे दुःखी रग है। निहायत नाकारा निकल गया ससुरा। अच्छे काम होते नही, बदी मोल लेने को हरदम तैयार बैठे है। जब सारे शहर में थुक्का-फजीहत है और उसे कोई अपने नजदीक नही आने देना चाहता, हमारे सुपुत्र उसके कंधे पर हाथ रखे हुए घूमते दिखाई देते हैं। कभी सरकार थोड़ा-सा डांट दे...."

वर्मा की अंतिम बात को अनसुना करते हुए, कुंवर साहब ने पूछा—

"तब वह रह कहाँ रहा है ? अपने किसी दोस्त के यहाँ टिका है या किसी होटल में ? या आपके बेटे...."

"नही, हुजूर ! मिसेज मैठाणी को तो सरकार जानते हैं। वह तो हमेशा की फ़ितूरी औरत है।"

"अच्छा, उन्होंने ठहरा लिया है अपने साथ। खैर, रहेगा ही कितने दिन। इस शहर के गुरु लोग तो अगर सर्दियों के बारे में ही बातें करने पर उतर आएँ, तो बर्फ बरेलो-पिलीभीत मे भले ही जा गिरे, यहाँ हिम्मत नहीं करेगी। अच्छा, तो अब मैं खाना शुरू करूँगा। आप चलें....या थोड़ी-सी ह्विस्की अगर साथ ले जाना चाहें....मैं बहुत शुक्रगुजार हूँ कि इतनी रात गये तुमने इतनी तकलीफ मेरे लिये उठाई।"

"नहीं, सरकार ! मेहरबानी है, हुजूर !"—कहते हुए, एक संक्षिप्त-सी प्रफुल्लता वर्मा में आ गई और झुककर नमस्कार करते हुए पीछे हटते चले गये। दरवाजे तक पहुँचे थे कि कुँवर साहब ने पूछ लिया—"इधर मिसेज सक्सेना वगैरह तो नहीं आई थीं, होटल की ओर ?"

वर्मा देर तक बैठे रहने के बाद की सुस्ती को झटकते हुए-से रुक गये और दो कदम आगे बढ़कर बोले—"नहीं सरकार ! हमारे होटल की तरफ तो नहीं आईं। वहाँ अब कौफ़ी-वौफ़ी तो बनती नहीं। रास्ते में एकाब बार मिली थीं, तो पूछ रही थीं वो लोग कि 'कुँवर साहब कब तक वापस लौटेंगे ?' आप तो इस शहर की रौनक है, सरकार !....हाँ, हुजूर, याद आया....कल वो लोग 'कवाना' में दिखाई पड़ी थी। मिस पाल भी उन लोगों के साथ ही थीं...."

हालांकि वर्मा जानते थे कि भोजन करते समय कुँवर साहब किसी भी परिचित की उपस्थिति पसन्द नही करते, लेकिन उन्हे आशा थी कि गीता-पाल का जिक्र आने के बाद, शायद, कुछ देर को रोकना चाहेंगे। उन्हें यह देखकर थोड़ा-सी खिन्नता ही अनुभव हुई कि कुँवर साहब ने धीरे से हाथ उठाकर, उन्हें विदा लेने का संकेत कर दिया है।

● ●

'रणजीत विला' लम्बी-सी, दो-मंजिला बिल्डिंग है। ऊपर-नीचे दोनों हिस्सों में, पांच-पांच कमरे हैं। दूर से ही नहीं, पास पहुँचने पर भी 'बोर्डिंग हाउस'-जैसा दिखता है। ऊपर की मंजिल में जाने के लिये दोनों कोनों पर लकड़ी की सीढ़ियाँ लगी हुई हैं, जिनके किनारों पर अक्सर अंगूर और जवाकुसुम की बेलें आपस में मिली-जुली लटकी रहती हैं।

पश्चिम की ओर वाली सीढ़ी से प्रायः सिर्फ गीता पाल के परिचित आते हैं, हालांकि सिर्फ़ दो कमरे उसके पास हैं। दोनों ही तरफ की सीढ़ियों का ढांचा कुछ ऐसा है कि 'कॉलबेल' की समस्या महसूस नही होती। आने वाले के शरीर का दबाव पड़ते ही सीढ़ियाँ आवाज़ देने लगती हैं और कमरे के भीतर बैठे व्यक्ति के लिये, प्रायः यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि आने वाला किस ओर के हिस्से में आ रहा है।

गीता पाल नींद टूट चुकने के बाद आलस्य मे थी। सीढ़ी चढ़कर, कोई ऊपर की मंजिल में आ रहा है, यह आभास तो हो गया था, लेकिन इतनी सुबह किसी के आने की गुंजाइश नहीं थी। सिर्फ़ इतना कर लिया कि मुँह ढांपे सोई थी, कम्बल नीचे कमर तक उतार लिया। शरीर की गठन कुछ ऐसी है कि सीधे सोये रहने पर स्तन अपनी सम्पूर्णता मे सुडौल हो आते है और, किसी भी कारण से, अपनी इस मुद्रा को स्वयं ही अनुभव करना गीता पाल के लिए काफी अर्थपूर्ण होता है। कम्बल हटाने के स्पर्श के साथ-साथ, नितान्त अचानक उसे स्मरण हो आया कि कल रात वह बहुत-बहुत देर तक शेखर को लेकर सोच रही थी।

अपने ही दरवाजे पर दस्तक पाने की कोई सम्भावना न दिखने के कारण, गीता इस प्रतीक्षा में थी कि दूसरी तरफ कोई जाने वाला होगा और जब तक वह उसके सामने का बारामदा पार नहीं कर लेगा, चलने की आहट सुनाई देती रहेगी। अचानक किसी बात का ध्यान आये और उस पर सोचने का मन हो, तो किसी के पाँवों की आहट बाधा पहुँचाती है। लेकिन सिर्फ़ दस्तक ही नहीं, परिचित-सी आवाज़ भी सुनाई पड़ी, तो गीता ने सजग होने की कोशिश की और लेटे-लेटे ही पुकार लिया—"कौन है ?"

"अरे, भई, मैं हूँ तुम्हारी नानी—शर्मा !" वाक्य शुरू होने के साथ दरवाजा थपथपाने की भी लय थी, जो वाक्य समाप्त हो चुकने पर भी यथावत् रही।

गीता ने जल्दी से अपने-आप को समेटा और दरवाजे के पास आ गई। कुण्डी नीचे गिराना ही चाहती थी कि अचानक पूछ लिया—"आपके साथ कोई और भी है, मिसेज शर्मा ?"

"हाँ, हैं ! मिस्टर शेखर है !"—इस बार दबाकर बोली गई आवाज़ में श्रीमती शर्मा ने कहा और एक धीमा ठहाका वातावरण में गूँज गया।

गीता ने तुरत कुण्डी गिरा दी और श्रीमती शर्मा के भीतर पहुँचते ही, दरवाजा जल्दी से बंद कर दिया। नाराजी दिखाती हुई बोली—"आपमें यह बुरी आदत है मिसेज शर्मा, कि लगातार दरवाजा भड़भड़ाती रहती हैं और भीतर वाले को इतना भी वक्त नहीं देती है कि वह अपने कपड़े ही ठीक कर ले। पूछ इसलिए लिया था कि कहीं आपके साथ शर्मा साहब न हों।"

"यार, तुम सर्दियों के मौसम में भी इस हालत में सोती हो ? शर्मा जी होते तो उनकी लार टपक पड़ती। हाय, तुम तो इस वक्त रात-भर मर्द के साथ सोकर उठी हुई नायिका-जैसी लग रही हो।" श्रीमती शर्मा, शायद, इस बार ठहाका लगाने की जगह मुँह से सीटी की आवाज निकालने की कोशिश करना चाहती थीं, लेकिन गला फँस कर रह गया।

"लगता है, शर्मा जी जब तक दारागंजी वापस नहीं चले जाते, 'स्लाइडकोडिन' प्लान पर अमल करेगा नहीं।"—गीता ने भी मजाक उड़ाने की कोशिश की और खूंटी पर टंगा अपना शाल उतार कर, आर-पार डाल लिया।

श्रीमती शर्मा चारपाई पर ही बैठ गई थी। कुहनियों को गद्दे पर टिकाकर, थोड़ा विश्राम कर लेने की मुद्रा में, पीछे को झुकती हुई सी बोली—"भई, तुम और प्रभा हम लोगों की बातों का बुरा न माना करो। तुम दोनों 'बैचलर्स' हो और हम लोग कोशिश करती हैं कि कुछ तो 'कम्पेनसेट' किया जा सके। और किसी चीज से न सही, बातों से ही सही। यों एक रास्ता सूझता है। मिसेज सक्सेना की तो मैं नहीं जानती, लेकिन अगर तुम लोग चाहो, तो अपने शर्मा जी को मैं कुछ दिनों के लिये 'क्रेडिट' पर दे सकती हूँ।...."—अपना कहना पूरा करते ही श्रीमती शर्मा पूरी तरह लेट गईं और साड़ी का पल्ला खींचकर, गीता को भी चारपाई पर गिरा लिया।

"हाँ, क्यो नही, मिसेज शर्मा!....यह तो आप तुरंत और बाखुशी कर लेंगी—ताकि दो-चार सालो मे अगर हम लोग शादीशुदा बनी, तो अपने-अपने 'हसबैंड' को आपके पास उधार-चुकाई के लिये भेज दे!.... हम लोगो से अपने जवान होने की भी कद्र नही होती—एक आप है, जो बुढापे तक के इंतजाम मे लगी रहती है!"

मिसेज शर्मा ने चट से गीता का बाया कान पकड़ लिया और फिर दोनों बड़ी देर तक हँसती रही।

हँसी थमते ही, गीता बोली—"मिसेज शर्मा, इस उम्र में भी जो जोश और हवस आप मे है, उसके सामने तो हम 'बैचलर्स' पिद्दी हैं, पिद्दी! शर्मा जी की सेहत को देखते हुए तो यही लगता है, अभी आप खुद ही 'डेबिट' में चल रही होंगी!....खैर, छोडिये ये सब फिजूल बातें।

कभी हम लोगों की छात्रायें अगर इस तरह की बातें सुन लें कि उनकी टीचर्स कितनी गंदी-गंदी बातें करती हैं...."

"माफ करना, कुमारी गीता पाल ! टीचर हो जाने से 'वूमन स्पाट्स' गायब नहीं हो जाते हैं। बात तो यह है कि कभी-कभी आप दोनों बनती ज्यादा है। प्रभा भी बहुत 'प्युरिटन' दिखने की कोशिश करती हैं, लेकिन जनाब, दाइयों से पेट छिपता होता, तो मुहावरा ही क्यों बनता। अच्छा, तुम्हारे पूछने से पहले ही बात दूँ कि अचानक कैसे आ टपकी।....कल बातें करते-करते कुछ ध्यान ही नहीं रहा कि रविवार तो आज ही तशरीफ लाने वाला है। शर्मा जी तड़के ही विदा हो गये। उन्हें भुवाली अपने किसी डॉक्टर दोस्त से मिलने जाना था। बच्चे तो, तुम जानती ही हो, इस बार यहाँ आए ही नहीं हैं। सिर्फ़ हफ्ते-भर के लिए तो शर्मा जी आए ही हैं। अब देखो, कल वो भी बाजार से लौटते ही उसी के बारे में पूछने लगे कि शहर में बड़ी चर्चा है। और बुड्ढा, तुम जानती नहीं हो, बहुत शरारती है। कहने लगा कि 'अब तो बाजार घूमते हुए हमें भी डर लगने लगा है कि कही कोई हमारा गला पकड़ने वाला भी न निकल आए !'.... अरे, भई, हम तो सनातनधर्मी ब्राह्मणों के कुल में उत्पन्न हुए, जहाँ कन्या अपने पितृकुल में ही रजस्वला हो जाए तो सात पीढ़ियों को नरक भोगना पड़ता है। उस उम्र में तो लड़कियों को यह भी तमीज नही होती कि पुरुषों की दुनिया सिर्फ़ पिता-ताऊ-चाचा-मामा और भाइयों तक ही सीमित नहीं होती।"

"लेकिन प्रेम की दुनिया में ऐसी कोई नियम तो बना नहीं है कि प्रेमी सिर्फ़ शादी से पहले ही 'एवेलेबुल' होते हैं, शादी के बाद नहीं। प्रेम की दुनिया में तो शुद्ध 'पर्सनल लॉ' चलता है।....अच्छा, आप कुछ देर लेटी रहें और शर्मा जी के सुबहे को दूर करने का कोई उपाय निकालने की कोशिश करें। मैं तब तक 'बाथरूम' हो आऊँ। लौटकर, चाय-नाश्ता कुछ बनाया जाए, बाकी गप्पें तभी होंगी। हाय, साढ़े आठ हो गये हैं। इस शहर में तो सर्दियों मे सूरज महाराज भी बड़ी देर तक लिहाफ में घुसे

रहते है। सर्दियो में तो, साहब, नींद खुलने के बाद का जो आलस होता है, वह नींद से ज्यादा मजा देता है।"

"यार, कल रात 'रोमियो ऑफ दि सिटी' के खयालों में तो नहीं रही? बहुत अँगड़ाइयाँ ले रही हो...."

'धत' कहकर, गीता पाल दरवाजा खोलकर, बाहर निकल गई। 'बाथरूम' दूसरे कमरे में था। दो कमरों के बीच में कोई द्वार न होने से, बारामदे में होकर जाना पड़ता था।

शौच और हाथ-मुंह धोने से निबटकर, गीतापाल कमरे में आई और चाय बनाने की तैयारी में दिखी, तो श्रीमती शर्मा उठ खड़ी हुई और बोली—"सुनो, यार, चाय-वाय यहां नही। अगला संनडे तो साला सात दिनों के बाद पड़ेगा। क्यों न आज ही मिसेज मैठाणी के यहां धावा मारा जाए? तुम तीनो की रिहायश एक तरफ है, इसलिये मैं ही चली आई कि इकट्ठा कर लूंगी। चलो, प्रभा और मिसेज सक्सेना को साथ लेती चलें। चाय बुढ़िया के यहां पी जाए। यों तुम्हे ज्यादा ही इच्छा हो आए तो मिसेज सक्सेना या प्रभा के यहां पी ली जाएगी। मैं तो एक प्याला पीती आई हूं।"

"लगता है, आप कुछ ज्यादा ही 'इंटरेस्टेड' हो गई है।"

"तुम लोगो से ज्यादा नही, यार! बस, इतना है, हमसे नाटक नही होता। ....और यो हालत तो यह है कि सारे शहर में उसकी चर्चा है। लोग ज्यादातर मनगढ़न्त बातों का मजा ले रहे हैं और मेरे जी में आया है कि कुछ हकीकत को भी पाया जाए।"

"लेकिन मिसेज शर्मा, मान लीजिए हम लोग जाएँगी तो सवाल यह है कि सब बाते पूछेगी किससे? और वह भी तो वही मौजूद होगा? कहीं हमीं लोगो पर बरस पड़ा तो? ....वास्तविकता तो मीना ही बता सकती

थी, लेकिन उससे इस सिलसिले में कुछ पूछना जाहिलपना होगा और वह बुरा भी मानेगी।"

"मीना तो अगर बताये भी, उसमें कुछ दम नही होगा। औरत होने के नाते, इतना अंदाजा तो हम लोग भी लगा ही सकती हैं कि ऐसी परिस्थिति में औरत कभी सच कहने की बेवकूफी कर हा नहीं सकती। किसी भी शादीशुदा औरत के लिये अपनी गृहस्थी एक किले की तरह होती है, उसका टूटना उसे ध्वस्त कर देता है।" —श्रीमती शर्मा कुछ गम्भीर हो गई थीं। कुछ क्षण थम कर, बोलीं—'चलो, तुम कपड़े बदल लो। मान लो, मिसेज मैठाणी का रुख बातचीत का नहीं दिखा, तो यों ही औपचारिक किस्म की बातें करके वापस लौट आएँगी। जहाँ तक उसका सवाल है, मेरा अंदाजा तो यही है, उसे हम लोगों को मिसेज मैठाणी के पास देखते हो, कहीं टहलने-बहलने चल देना चाहिए। ....लेकिन गीता, एक बात मेरी समझ में नहीं आ रही है....तुम तो बहुत 'करेजियस' और दमदार औरत मानी जाती हो, आज एकाएक तुम दब्बू औरतों की जैसी बातें क्यों करने लगीं ?"

गीता ने अनुभव किया, श्रीमती शर्मा की आँखें काफी तीखी हो आई हैं। आलमारी की तरफ बढ़ती हुई, बोली—"बात दर-असल यह है, मिसेज शर्मा, अपने स्वभाव और अपनी 'रिस्क' के लिये 'बोल्डनेस' दिखाना अलग बात है, लेकिन जहाँ किसी दूसरे की जिंदगी 'इन्वाल्व' हो, बचना चाहिए। खासतौर पर 'लव एफेयर्स' में। यह इतना 'कम्प्लीकेटेड' और नाजुक किस्म का मामला होता है कि इसमें किसी भी पक्ष को छेड़ना, जलती आग मे घी डालना है। इस लड़ाई में 'सिंसियर पार्टी' ज्यादा मार खाती है।"

"तुम किसी हद तक ठीक कह रही हो, मिस पाल ! ....और तुम्हारा तो भई, इस क्षेत्र का अपना इतिहास भी है। मैं तो सिर्फ़ इतना बता दूं कि औरत की 'सिंसियारिटी' शादी से पहले बहुत ढलवाँ किस्म की चीज होती है। उसकी कोई 'रेलीवेंस' ही नही होती। प्रेम किसी से और

हवा में फैल जायेगी सर्दियों की सुबह में मुँह का एकाएक खुलना—और वह भी लगभग तिलिस्मी मूर्ति की-सी रोमांचकता धारण कर चुके आदमी का—गीता के लिये वह स्पष्ट कर सकना, शायद, मुश्किल तो होगा कि इस तरह वह क्यों सोचने लगी है।

वह हाथ में जो 'पैकेट' लिये था, लगता था, टूथपेस्ट-ब्रश-साबुन-जैसी चीजें होंगी और वह—न जाने इन्हें देखकर, या अपने-आप ही—जिस तरह अचकचाया-सा खड़ा हो गया था सिगरेट जलाने के बहाने, कुछ पता नहीं चल पा रहा था कि वह अंततः किस तरफ जायेगा। शहर के निचले हिस्से की ओर था कि ऊपर, ओकवुड की ओर ही?

कही ऐसा न हो कि वो लोग थोड़ा ऊपर से मिसेज सक्सेना और प्रभा जायसवाल को साथ लेती ओकवुड की तरफ चले और यह शख्स ऐन बीच रास्ते मे उनसे टकरा जाय?

शख्स—हाँ, फिलहाल, इसे शख्स शब्द मे महसूस करना ही जाने क्यों ज्यादा सटीक लगता है।

उसे 'क्रातिकारी उत्तराचल' का पट लगी दिशा मे आगे बढ़ते देखकर, दोनो को राहत महसूस हुई और श्रीमती शर्मा ने वह कहते हुए अपनी साड़ी और पेटीकोट को टखनों तक उठा लिया कि—'चलो, बाघ रास्ते से अलग तो हुआ। कामरेड सूरज के यहाँ जाता दिखता है। सुना है, उससे बड़ी घुटती है इसकी।'

"मिसेज शर्मा, आप थोड़ी-सी चढ़ाई आते ही ऐसे चलना शुरू कर देती है, जैसे नदी पार कर रही हो।"

"चंद कदमों तक मुझे यही करना होता है।" श्रीमती शर्मा ने कहा और दाये हाथ को गीता के कंधे की ओर बढ़ाते हुए, बायें हाथ से बदस्तूर साड़ी और पेटीकोट को पकड़े रहीं—"आप जवान है, मिस पाल, और आपके लिये जल-थल, सब एक है।....मगर एक बात मै आप से कह डालना चाहूँगी, यदि आप बुरा न मान जायेंगी, इस बात का इतमीनान मुझे हो जाय!"

"ख़ैर आप कहिये तो सही। बुरा न मानने का—यानि बात बुरी लग गई है, यह जाहिर न करने का—मैं वादा करती हूँ आपसे; क्योंकि मैं खूब अच्छी तरह जानती हूँ कि मेरे बुरा मान जाने का इतमीनान हो जाना आपको ज्यादा 'एग्रेसिव' बना सकता है!"

"आपकी भाषा—हाँ, आपकी भाषा में भी इधर धार आती जाती है, मिस पाल!....और यही मैं कहना चाहती हूँ कि आप धारा होने लगी हैं।....पिछले हादसे के बाद आप रुका पानी होती चली गई थीं।....अरे, भई, हम लोग घनिष्ट सहेलियाँ हैं। हमारा चला-फिरा, कहा-सुना सब साथ है। पहले आप वैसी थी, जैसे फूल खिला हो और हवा में तैर रहा हो। फिर दीपक के 'सुसाइड' कर लेने के बाद कैसी गुमसुम होती गईं।.... और मैं देख रही हूँ, इधर कुछ दिनों से जैसे जमी बर्फ टूट रही है।"

"आप बहुत दूर तक की कौड़ियाँ समेटने लगती हैं, मिसेज शर्मा! 'थमा पानी' खूबा कहा आपने मुझे। अरे, आप ही लोग ही तो मुझे 'एडवेंचरस् लेडी' के रूप में बदनाम किये बैठी हैं।"

"लेकिन ये कौन कहता है कि थमी हुई औरतें 'एडवेंचरस' नहीं हो सकतीं? 'बार्किङ्ग डॉग सेलडम बाइट्स' कहा गया है, मिस पाल!"

"मगर मुझे तो आप लोग बातून और 'सोशल' भी मानती हैं?"

"ऐसा है, मिस पाल, मैं जिस्म से जरूर स्थूल हूँ, मगर नजर मेरी सूक्ष्म किस्म की है। आप में इधर बदलाव आ रहा है, यह एक हकीकत है।"

"ख़ैर यह वक्त बतायेगा। लो, मिसेज सक्सेना दूर से ही नमस्कार कर रही हैं।...."—गीतापाल ने कहा और रुख बदल लिया।

मिसेज सक्सेना इस समय मैक्सी में थीं और किसी कैफे चलाने वाली क्रिस्तान महिला-जैसी बेबाक दिख रही थीं।

मिसेज सक्सेना ने उन दोनों के 'नमस्कार' के जवाब में अपने दोनों हाथ ऐसे जोड़े, जैसे ऊपर तक पहुँचे नमस्कार को 'कैच' कर रही हों।

● ●

श्रीमती सक्सेना और प्रभा ने थोड़ी अन्यमनस्कता दिखाई कि, इस सन्दर्भ को लेकर श्रीमती मैठाणी से वार्तालाप करना अनुचित नहीं भी, तो कठिन अवश्य होगा। हालाँकि श्रीमती शर्मा के खोदने पर, यह उन्होंने स्वीकार कर लिया कि इस काण्ड को लेकर फैले कोलाहल की तहों में झाँका जाए, यह कौतूहल उनके भी मन में है।

प्रभा के यहाँ चाय पीने मे कुछ वक्त लग गया। इस बीच चारों इस बात पर सहमत हो गईं कि वार्तालाप के बीच असंतुलन या उत्तेजना आने की स्थिति को टाला जाए। यह भी तय हो गया कि अधिकांशतः श्रीमती सक्सेना और श्रीमती शर्मा ही बातचीत करेंगी।

चल पड़ीं और ओकवुड रेंज वाली सड़क पर आ गईं, तो लगा—किश्ती है, नदी मे उतर आई है। शेखर को लेकर श्रीमती मैठाणी से वार्ता को निकले होने का अहसास उन चारों में भरा था और ऊपर, चेहरे पर की त्वचा तक छलक आया था।

"वह अभी-अभी नीचे की तरफ उतरा है। शायद, कॉमरेड के कबाड़-खाने की तरफ। श्रीमती मैठाणी के एकांत में होने की गुंजाइश तो है।"—कहते हुए, श्रीमती शर्मा को खुद ही महसूस हो गया कि हाँफ चढ़ जाने से साफ-साफ बोल नहीं पा रही है।

"आज वापसी के बाद, रात किसी वक्त—यानी सोते वक्त मिसेज शर्मा अपना 'ट्रेवेलॉग' जरूर सुनायेंगी।...."

"किसे, मिसेज सक्सेना....?"

"और किसे, शर्मा जी को।"

"हाँ, सुना है, 'लेट एज' में लोग इसी तरह के 'टॉनिक्स' इस्तेमाल करने लगते हैं।"

"ओफ, मिस प्रभा, आप बख्शती नहीं हैं।"

"खूब, मिसेज सक्सेना, आप बात उगलवाती भी हैं और बनती भी हैं।"

"सुना है, शहर में, राजा साहब भी आये है!"

हालाँकि साफ था कि चढ़ाई चढ़ते में थक चुकी है और साँस भारी चलने लगी, मगर इस बात को श्रीमती शर्मा ने—हालाँकि एकाएक—इतने मनोयोग और एकाग्रता के साथ कहा कि सचमुच उन दोनों का चेहरा पिन चुभोया-सा हो आया।

स्पष्ट था कि कुंवर अहिपालसिंह से नजदीकीपन होने की तरफ संकेत कर रही थीं मिसेज शर्मा। दोनों ही तय नहीं कर पाईं कि श्रीमती शर्मा की इस सूचना को किस तरह लिया जाय।

वो दोनों कुछ तय करतीं कि इससे पहले ही श्रीमती सक्सेना ने पत्ता जड़ दिया—"हाय, मिसेज शर्मा, राजा साहब के शहर में होने की सूचना पहले आपको कैसे?"

दोनों ही समझ गईं, नाराजगी दिखाने का मतलब अपने को कमजोर करना होगा।

प्रभा ने पहल की—"मिसेज सक्सेना, श्रीमती शर्मा सौ, दो सौ वर्ग मीटर की 'मिनी-रेस' वाली महिला नहीं हैं—'मैराथन-रेस' की धावक हैं। लम्बी दौड़ में आखिर-आखिर में ये ही 'फर्स्ट' आयेंगी!"

'हम टीचर्स में यही बात खराब होती है, मिस जायसवाल, कि जो 'सब्जेक्ट्स' पढ़ती हैं, वही 'लैंग्वेज' इस्तेमाल करने लगती हैं।... हालाँकि आप जिस्म से भी लगती हैं, मगर कोई आपको सिर्फ बोलते सुन ले, तो बता सकता है कि आप 'स्पोर्ट्स टीचर' होंगी!"

कहने के बाद, गीता पाल हँसी भी, मगर महसूस हुआ कि कुंवर

महिपालसिंह को लेकर अनुभव हो रही किंकर्त्तव्यविमूढ़ता से उबरने की कोशिश में किया हुआ वह मजाक टल्ला बनकर रह गया है। उसे इस बात पर कुछ विस्मय भी था कि कौलर साहब शहर में है, और उसे या मिस जायसवाल को खबर नहीं, जो कि उनके 'निकट' समझी जाती हैं।

इस वक्त इस प्रसंग को वार्ता का केन्द्र बनने देना ठीक नहीं, यह सोचते हुए, गीता मिस जायसवाल का हाथ थामती, चुपचाप आगे चलती गई।

जब वो लोग 'ओकवुड कॉटेज' पहुँची, सूर्य की किरणें कोहरे से ढँके हुए वातावरण में एक शब्दातीत सौन्दर्य उत्पन्न कर रही थीं। जैसे आँखों की पहुँच तक का सारा वनस्पति-जगत किसी परीलोक के से मायावीपन में डूबा हुआ हो। शहर की ओर देखने पर लगता था, समुद्र है। पर्वतों की तरह ऊँचा होकर, अपने-आप में थमा हुआ धुँध-भरा सागर। पगडण्डी पर की पत्तियाँ अभी ओस से गीली थीं और चलते हुए अपने आस-पास एक आकारहीन आर्द्रता महसूस होती रही थी।

बारामदे से लगे छोटे-से खेत को, जिसमें फलों के वृक्षों के बीच-बीच की जगह में शरदकालीन सब्जियाँ बो दी गई थीं, पार करते ही चारों को दिखाई दिया कि छोटी-सी मेज पर अखबार फैलाये वही बैठा है और श्रीमती मैठाणी तौलिये तार पर फैला रही हैं।

उन चारों को ही विस्मय था कि आखिर वह उन लोगों से भी पहले कब और किस रास्ते से यहाँ पहुँच गया। वह, इस वक्त, किसी जासूसी उपन्यास के नयाक की सी मौजूदगी का अहसास करा रहा था। कोशिश करके, उसकी ओर से आँखें हटाकर, उन लोगों ने काफी आदर प्रदर्शित करते हुए श्रीमती मैठाणी को नमस्कार किया और अपने भीतर इस प्रतीक्षा से भर गईं कि श्रीमती मैठाणी बैठने को कहें।

श्रीमती मैठाणी के चेहरे और आँखों में, उन्होंने देखा, आकस्मिकता

में धँस जाने की सी मुद्रा क्षण-भर को उभरी, लेकिन दूसरे ही क्षण उनका चेहरा अभिवादन की चमक से सामान्य हो गया—"अरे, आप लोग इतनी सुबह्-सुवह्....यहाँ ? ठहरिये, मैं दरी ले आऊँ। बेंच मे वैठने में आप लोगों को असुविधा होगी। कुर्सियाँ कुछ टूट गई है, पर्याप्त नही होंगी...."

"आप कष्ट क्यों करेंगी, हम लोग यही जमीन पर ही वैठ जाएँ, तो हर्ज क्या है। कितने साफ़, धुले हुए-से पत्थर तो हैं...." श्रीमती सक्सेना ने कहा। और अनुभव किया कि पीठ-पीछे किसी के उठने की सी आहट हुई है और शायद, चल पड़ने की भी, लेकिन मुड़कर देखना शिष्टाचार के विरुद्ध लगा।

श्रीमती मैठाणी कमरे के भीतर पहुँच गई, तो चारों ने एक साथ मुड़कर देखा कि वह मफलर लपेटता, वाड़े को पार कर रहा है।

श्रीमती मैठाणी के दरी ले आने से पहले ही, चारों सावधानता में लौट आईं। अपने भीतर की विचलितता ने उन सभी को एक विचित्र-सी सावधानी में जकड लिया है, ऐसा उन सभी को साफ़-साफ़ अनुभव हो रहा था। श्रीमती मैठाणी के हाथों से दरी लेकर, चारों वैठ चुकीं, तो एक-दूसरे की ओर देखते हुए प्रत्येक ने लगभग एक-सी मुस्कुराहट को महसूस किया और अपने चौकन्नेपन से उसे ढाँक लिया। सतर्कता

इसी वीच बाड़ा समाप्त होने पर पड़ने वाले फाटक के खुलने और वंद होने की आवाज सुनाई दे गई।

"हम लोगों को टॉप की तरफ गये काफी वक्त हो गया। खास तौर से श्रीमती शर्मा ने देखा नहीं है और चाहती थी, हालाँकि इन्हे कुछ दिनों से खाँसी की शिकायत है और साँस चढ़ जाती है....हमने सोचा, रास्ते में आप से मिलती हुई निकल जाएँ...."—श्रीमती सक्सेना वार्तालाप के लिये, और अपने आ चुकने का संदर्भ गढ़ने की कोशिश में, सहज-सी भूमिका

बनाना चाहती थी कि श्रीमती सैठाणी के चेहरे पर गहरी होती जाती मुस्कुराहट को देखकर, आगे की बातें उनके हलक में ही अटक गईं।

श्रीमती सैठाणी के चेहरे पर सामान्यतया झुर्रियां नहीं दिखतीं, लेकिन इस वक्त गहरी और क्रमशः पारदर्शी होती मुस्कुराहट में कुछ रेखायें उभर आई थीं और उनका व्यक्तित्व एकाएक अपेक्षाकृत गम्भिर और किंचित् आक्रामक-सा प्रतीत होने लगा था। हालांकि वो बोल नहीं रही थीं, लेकिन एक सर्द हवा की तरह चुभती हुई-सी वाग्मिता से उनका चेहरा ललाट पर की गहरी रेखाओं तक लबालब भरा दिखाई देने लगा था।

"जी, हम लोगों ने सोचा कि जब तक हम सब टॉप घूमकर वापिस लौटेंगी, हो सकता है, आप दोपहर के भोजन के बाद का विश्राम कर रही हों। आप तो जानती ही है, हम नौकरी-पेशा औरतो की जिन्दगी में सिर्फ इतवार और छुट्टी के ही दिन तो कुछ मुक्ति के होते है। इनमें भी अक्सर नोट्स तैयार करने या पढने में समय व्यतीय होता है और या मेहमान-नवाजी मे।....सोचा, आप जाते-आते देखेंगी, तो यही कहेंगी कि इतना ऊपर तक आकर आपके घर के पास से गुजरते हुए भी बिना दुआ-सलाम के ही वापस चली गईं हम लोग....मिस पाल और जायसवाल तो अक्सर आपकी चर्चा करती है।"—स्थिति को सँभालने की कोशिश में, श्रीमती सक्सेना ने फिर यही अनुभव किया कि बात हाथ से निकल चुकी है। एक खिसियाहट उन्होने महसूस की कि शायद, सारी बाते वो परस्पर असंगत ढंग से कह गई है।

"जी, उस दिन जब मैं गिरजाघर वाली सड़क पर से लौट रही थी, तो आपको याद होगा, संयोग से आपसे भेंट हो गई थी।....और आपने कहा भी था कि आपकी ओर जाऊँ। श्रीमती शर्मा टॉप पर से हिमालयन-रेंज देखना चाहती थीं....ये यहाँ जी० जी० आई० सी० मे...."—कहते-कहते प्रभा जायसवाल का गला भी कुछ वँध-सा गया और वह शाल को ठीक करने लगी।

"अरे, भाई! आप सभी लोगों से मैं परिचित हूँ। इसमे किसी तरह

की परेशानी दिखाने की क्या बात है। और मिसेज शर्मा कोई नयी-नयी तो आई नहीं हैं—अब तो इन्हें चार-पाँच महीने होते होंगे। लेकिन आप लोग अपने साथ कुछ खाने-पीने का सामान लेकर नहीं चली घर से ? मैं समझती हूँ, जहाँ श्रीमती शर्मा रहती है, वहाँ से भोजन करके इतनी सुबह-सुबह कम-से-कम इस जगह तो कोई नहीं पहुँच सकता....और माफ़ करें, श्रीमती शर्मा भोजन करने के बाद टॉप की चढ़ाई बर्दाश्त कर सकती हैं, इसकी गुंजाइश मुझे दिखती नहीं।"—श्रीमती मैठाणी के होठों पर आत्मीयता-भरा व्यंग फैलता जा रहा था—"अच्छा, ऐसा करें, आप लोगों को अगर टॉप की सैर करनी ही है, तो पहले आप लोग हो आएँ। लौटते हुए आएँ, मैं आप लोगों के लिए कुछ खाने-पीने का प्रबंध किये रहूँगी।....या इस वक्त चाय पीकर जाना पसंद करेंगी....?"

चारों ने अनुभव किया कि 'जी, जी, बात दरअसल यह है'—जैसा कोई वाक्य उनके हलक से टकरा कर रह गया है।

"जी, बात यह है, यही सोचकर हम लोग कुछ साथ लाई नहीं कि बारह, साढ़े बारह तक तो वापस लौट ही आयेंगी। मिसेज सक्सेना अपनी नौकरानी से कहती आई हैं। हम लोगों के लौटने तक वह सबके लिये भोजन बनाये रहेगी।....पानी अगर हो तो थोड़ा-सा पीना चाहूँगी।"....कहने को तो कह गई गीता पाल, लेकिन स्वयं उसे लगा कि बात रेत की तरह हवा में बिखर गई है।

"देखिये, अब आप लोग अगर बहुत नाटक करती रहेंगी, तो मैं नमस्कार करके विदा देने को लाचार हो जाऊँगी। अपने से बड़ी उम्र वालों के सामने बोला गया झूठ मुट्ठी में बंद किये गये पानी की तरह बहने लगता है। जितनी देर में आप लोगों ने मुझे नमस्कार करने के लिये हाथ उठाये, उतने में ही मैंने जान लिया कि आप लोग राजशेखर के किस्से में जरूरत से ज्यादा दिलचस्पी की मारी हुई चली आ रही हैं!"

अपनी बात पूरी करके, श्रीमती मैठाणी ने उन लोगों की ओर जिस तरह एकटक देखा, चारों सकपका गईं। उन्होंने अनुभव किया, श्रीमती

मैठाणी के मुंह पर हल्की-सी नाराजी और शरारत के साथ-साथ, उन लोगों के आ जाने का बुरा न मानने का आश्वासन भी है।

वो चारों, कुछ कहने की कोशिश मे दिखती हुई भी, चुप ही थी। श्रीमती मैठाणी आत्मीयतापूर्वक यह कहती हुई मुड़ गई, रसोईघर की तरफ, कि—'पहले आप लोगो के लिये चाय बनाई जाए। सर्दियों के मौसम मे तो बिना चाय के बात करना बेवकूफी है।'

चिड़ियों का एक झुण्ड उड़ता हुआ आया और बाड़े के किनारे पर से नीचे की झुके हुए पेड की टहनियों पर बैठ गया। उनके चीं-ची करते हुए आने और पेड़ पर बैठने की तैयारी मे थमते हुए से उड़ने की आवाजें बीत चुकने पर, उन सभी ने अनुभव किया कि एक गहरी खिसियाहट के बाद, अब एक राहत-सी महसूस हो रही है।

हालांकि श्रीमती मैठाणी चाय पी चुकी थी, लेकिन आग्रह करने पर उन्होंने प्याली उठा ली। दो घूंट भरकर किंचित् अवसाद-भरे स्वर में बोली—"आप लोगों के आने से सिर्फ एक ही बात बुरी हुई है। राजशेखर उठकर, चला गया है। मेरा अंदाजा है, चाय भी वह ठीक से नही पी पाया होगा। अभी-अभी तो वह बाजार से लौटकर आया ही था। अखबार पढने का बहुत शौकीन है।"

"हम लोग माफी चाहती है....लेकिन आप विश्वास करें, हम लोगों के मन में किसी तरह की दुर्भावना नहीं। न हम लोग किसी तरह के गलत इरादे से आई है। हां, इतना हम लोगों को स्वीकार कर लेना चाहिये कि सचमुच बहुत गहरी और रोमाचक किस्म की उत्सुकता हम सभी मे थी और है।'–श्रीमती सक्सेना, इस बार, काफी संतुलित स्वर मे बोली—"अफवाहे और 'अनकन्सर्न्ड' लोगों से सुनी-सुनाई बातें यों ही मजा लेने के लिये तो काफी होती है, लेकिन इनसे किसी तरह का सुकून मिलता नहीं। इस शहर मे तो यो भी 'स्कैण्डलस' किस्म के लोगो की कमी नही और फिर अब तो वास्तव में काफी संजीदा घटना लोगों के हाथ लग गई।"

"आदमी की जिंदगी उतनी सनसनीखेज होती नहीं, जितनी लोग

बना देते हैं, मिसेज सक्सेना ! अपनी खुद की जहालत और जंगलीपन से पीड़ित या ठूंठ जिंदगी मे ऊबे हुए लोगों के हाथ जब दूसरों की जिंदगी लग जाती है, तो वो इसे फुटबाल की तरह खेलते हैं।....और माफ कीजिएगा, जिस बात से किसी होनहार आदमी का भविष्य बँधा हो, उसका जीवन-मरण निर्भर हो—उसका सिर्फ तमाशबीन होना, कहीं-न-कहीं निहायत गलत होना है। राजशेखर कल रात जिक्र कर रहा था कि जब वह अपने ही दुःख और गर्दिश में डूबा सड़कों पर गुजरता है—सुना है, आप लोग उस पर फब्तियाँ कसती हैं ?" व्यंग्य

अपनी बात पूरी करके, शरारत-भरी मुस्कुराहट के साथ, श्रीमती मैठाणी ने देखा, तो फिर चारों बुरी तरह झेंप गईं और कुछ कह पाना उनके लिये कठिन हो गया।

"मैं, विश्वास कीजिये, आप लोगों को लांछित नहीं करना चाहती। राजशेखर में, उसकी बावलेपन से भरी हुई जिंदगी मे रुचि लेने लगना, किसी के भी लिये, बिल्कुल-बिल्कुल स्वाभाविक है।....लेकिन सिर्फ स्वाभाविक, उचित नहीं। खास तौर से मेरे लिये राजशेखर की जिंदगी बहुत अहमियत रखती है।....हालाँकि मैं आशा करती हूँ और ईश्वर से प्रार्थना भी कि वह सँभलेगा और उबरेगा और इस हद तक नहीं आगे बढ़ेगा कि वापस लौटने की गुंजाइश न रहे।....मगर मैं फिर भी डरती हूँ। लोगों से, उनकी लापरवाही और 'इनह्यूमैनिटी' से, जो बाहर से सामाजिक हलचल दिखते हुए भी, अपने-आप में निहायत 'पर्सनल' और अमूर्त्त होती है। राजशेखर बहुत गहरे से टूटा है; लेकिन मैं जानती हूँ कि लोगों की कुटिल तमाशबीनी का दबाव उस पर नहीं पड़ता, तो वह कभी प्रोफेसर तिवारी के साथ इस तरह का व्यवहार नही करता। सड़कों पर से उसे गुजरता देखकर, वाहियात लोग इस तरह के 'फाल्स कमेंट्स' देने लगे थे कि 'मजनू लैला की तलाश में फौज से भाग कर आ पहुँचे, लेकिन लैला के पास इनके कासे में डालने को अपनी सुहागरात के बासी पड़ चुके फूलों के अलावा कुछ भी नहीं।'....आप लोगों के लिये यह कल्पना करना क्या

कठिन हो सकता है कि इस तरह की बातों का किसी अपने ही दुःख में डूबे हुए व्यक्ति पर क्या असर हो सकता है ? अपनी माँ, अपने परिवार और दोस्तों से दूर के इस शहर में अकेला और विश्वासघात से टूटा हुआ कोई आदमी—क्या बीतती होगी इस पर ? वह बैठा होता है, और मैं कहती हूँ कि 'राजशेखर, रोटी और लोगे ?' तो ऐसे चौंक उठता है, जैसे सपने से जागा हो। सोना जाता है कि अचानक जाग उठता है और मैं कमरे के अँधेरे में भी उसके आँसुओं को देख सकती हूँ।...."

श्रीमती मैठाणी की आँखें भर आई थीं। आँसू पोंछने के लिये, उन्होंने अपना चश्मा गालों पर से ऊपर उठाया और मुस्कुराने की कोशिश करने लगी—"मुझे, शायद, इतना भावुक नहीं हो जाना चाहिये।....और आप लोगों के सामने....शहर में यों ही मेरे लिये अफवाहें कम नहीं हैं...."

"मिसेज मैठाणी, विश्वास कीजिये, इस तरह की नीचता आप हम लोगों में नहीं पाएँगी कि आपके बारे में किसी तरह की गलत बातें करें। हम लोग जानती हैं, हम लोगों को लेकर भी हजार-हजार अफवाहें इस शहर में रहती हैं। सिर्फ इतना है कि हम लोगों का स्वभाव कहीं एक-दूसरे से मिलता है, एक-दूसरे के दुःख-सुख में हम हाथ बँटाना चाहती हैं और किसी तरह की बोरियत को अपने ऊपर हावी नहीं होने देना चाहती हैं—बस ! इतना भी इस शहर के कई लोगों की बर्दाश्त से बाहर है। लोगों की ही क्यों, खुद हमारी बहुत-सी 'कुलीग्स' हम लोगों को लेकर वाहियात बातें करती हैं। भई, मैठाणी जी, ये तीनों तो जवान और सुन्दर दिखती हैं ना ? लोग कहते हैं कि 'यह थुलथुल आउटडेटेड मास्टरनी इन बुलबुलों की पूँछ से क्यों लगी रहती है ?'....लेकिन इतना आपको मानना होगा कि इस तरह के असाधारण माहौल में उसे अपने यहाँ 'शेल्टर' देकर, आपने खुद को भी चर्चा का केन्द्र बना ही लिया है !"

श्रीमती शर्मा के अन्तिम वाक्य से कहीं श्रीमती मैठाणी क्रुद्ध न हो जायें, इस आशंका में अब तक चुप बैठी गीता पाल बोल उठी—"आपने जो-कुछ किया है, वास्तव में बड़े नैतिक साहस की बात है। सारे शहर में

जिसके बारे में यह हल्ला हो कि फौज से भागा हुआ अपराधी, चरित्रहीन और खूनी है—उसे बेटे की तरह घर में जगह देना, यह सचमुच बहुत मुश्किल काम है। पहले मैं भी कुछ अजीब-सा महसूस करती थी, 'ऐब्सर्ड' भी....लेकिन आपसे बातें करते हुए, ठीक-ठीक कह नहीं सकती, मैं क्यों अपने-आपको कुछ अपराधी अनुभव करने लगी हूँ। आप-जैसी औरत किसी गलत आदमी को अपने साथ रख नहीं सकती, तय है।"

"ओह, गीता, तुम लोग अंदाजा नही लगा सकतीं कि किस सीमा तक निश्छल, भावुक और कल्पनाशील है वह लड़का। अभी आज उसकी मेज-आलमारी ठीक कर रही थी, देखती क्या हूँ, कि पागल आजकल डायरी लिख रहा है।....थोड़े-से पन्ने चोर की तरह पढ़ गई। हे परमात्मा, कितना पारदर्शी जल की तरह बहता हुआ हृदय और कैसी काव्यमयी भाषा ! बन्द करके लौटने लगीं, तो बाद मुद्दत के मुझे अपने माता-पिता और परमेश्वर और जोजफ चन्द्रशेखर—सबकी याद एक साथ आई। इन लोगों के—या मेरे भी—बारे में उस डायरी के पन्नों में कहीं कोई एक शब्द नहीं। फिर भी।....लेकिन, शायद, मैं बहुत बहकी बातें करने लगी हूँ। इन सब बातों को सुनने तो आप लोग आई नहीं हैं।"—कहते-कहते, श्रीमती मैठाणी के गोरे और पारदर्शी चेहरे पर थकावट उभर आई।

वो लोग तय कर नहीं पाईं कि इस अवसन्नता को कैसे तोडा जा सकता है। इस तरह के करुणा-भरे वातावरण की उन्होंने कल्पना नहीं की थी। श्रीमती मैठाणी जैसे आस-पास के सारे वातावरण में मादा गरुड़ के से पंख फैलाकर बैठ गई थीं और उन लोगों की रोमांचकता पर हावी हो चुकी थीं।

"उस दिन ये मिस जायसवाल मिल गई थीं—दो-चार बातें यों ही हो गई थीं। मैं उम्मीद करती ही थी कि शायद, ये कभी आएँगी मेरे पास। चाहूँ तो मैं भी इधर-उधर जाकर लोगों को 'कन्विन्स' करने की कोशिश कर सकती हूँ कि वास्तविकता क्या और कितनी है।....लेकिन मुझे यही लगता है कि सच्चाई जब दूसरों के कंधों पर बैठने को उतावली

होती है, तो उसके पंख टूट जाते है। सच्चाइयों से गुजरना अपने भीतर वापस लौटना है। इसकी गति बाहर को नही....।''

''आप वहुत ऊँचे इंटेलेक्ट वाली औरत है, यह सुना भी था। जिस तरह का एकांत-जीवन आपने वर्षो से अपना रखा है, उसे भेदने का न कभी संयोग जुटा और न साहस। मन में उठी बात फिर रह जाएगी। अभी आपने जोजफ़ चंद्रशेखर का नाम लिया था, ये आपके पति थे न ? उनको बयालीस के 'मूवमेंट' में कहीं गाजीपुर की तरफ गोली से उड़ा दिया गया था, शायद ?''

''हाँ, आप ठीक कह रही हैं, लेकिन गोली से चंद्रशेखर सिर्फ घायल हुआ था। मृत्यु तो उसकी यहीं, ओकले अस्पताल में हुई थी।'' संक्षिप्त विवरण मे ही इस प्रसंग को समाप्त कर चुकने की सी निश्चिन्तता दिखाते हुए, श्रीमती मैठाणी ने वातचीत का रुख फिर दूसरी ओर मोड़ दिया—''तो आप लोग राजशेखर के वारे में आखिर मुझसे जानना क्या चाहती थीं ?''

''सवसे पहले तो यही कि आखिर वह आपका कोई रिश्तेदार तो नही ? इस तरह माँ के से हठ मे जो आप उसे साथ रख रही हैं—सुना था, कुछ लोगो ने इस वारे में समझाने की कोशिश की थी कि उसे अपने-अपने साथ टिकाकर, आप अच्छा नहीं कर रही है ?''

''अरे, समझाने की नही, वहकाने की कोशिश।''—श्रीमती मैठाणी का स्वर थोड़ा सख्त हो आया—''वह स्वदेश साप्ताहिक का एडीटर लोमड़ी पंडित भी आया था। कहता था कि 'एक चरित्रहीन सामाजिक अपराधी को शरण देकर आप समाज के साथ अन्याय कर रही है, वहन जी !'....बस, उसके इसी वाक्य से मेरा संतुलन गड़बड़ा गया और अपने सामान्य स्वभाव के विपरीत, मैंने उसे साफ़-साफ़ कह दिया कि शहर के सबसे बड़े गाँधीवादी चोर से मै सामाजिकता या नैतिकता-जैसे विषय पर बात नही कर सकती।''''उल्लू का पट्ठा कहने लगा कि 'वहन जी, एक राष्ट्रीय पत्र के सम्पादक का अपमान करके, आप अपने लिये अच्छा नहीं

र रही है।'...मुझसे अपना गुस्सा सहा नहीं जा सका। मैं चिल्ला दी—'गेट आउट, यू डैम एडीटर! तुम वही चोट्टे हो न, जो जोजफ द्रशेखर की 'इमेज' बिगाड़ने के लिये, मेरे बारे में ऊल-जलूल बातें अपने 'येलो पेपर' में छाप चुके हो?'...अगर वह चल नहीं देता तो शायद, मैं उसे धक्का मार देती।"

"जिले में तो उसकी बड़ी साख है। सुना है, गाँधी जी से उसकी बड़ी निकटता थी।"

"साख समाज में हमेशा गलत लोगों की होती है—खास तौर पर हमारे देश के जैसे पतनशील समाज में। चंद शरीफ गुंडे किसी की भी जिंदगी नष्ट कर सकते है।...लेकिन मैं तो यह तय कर चुकी हूँ, मेरे जीते जी राजशेखर को रहने-खाने की समस्या पर सोचने की जरूरत नहीं। हाँ, जिस दिन वह स्वेच्छा से यह शहर छोड़ना चाहेगा, मैं हर्गिज नही रोकूँगी। अपनी नियति मैं जानती हूँ। अकेलापन ही मेरा जीवन-साथी रहा और रहेगा।"

"आपके पास वह पहुँच कैसे गया?"—गीतापाल पूछते ही, कुछ हिचक भी गईं।

"तुम तो, गीता, जानती हो कि अपनी पढ़ाई के दिनों में वह मेरा 'पेइंग गेस्ट' रह चुका था। जब तक वह रहा, तब भी ऐसे, जैसे माँ के साथ रह रहा हो।...तब मैं 'रियलाइज' नहीं कर पाई। हाँ, कभी-कभी उसकी याद जरूर आ जाया करती थी। लेकिन तब, शायद, राजशेखर के अन्दर ऐसा शरण खोजता हुआ-सा, निश्छल और करुण हृदय नहीं नहीं था, जो दुनिया की किसी भी औरत को माँ बनने को मजबूर कर सकता है। शायद आप लोग कभी जीवन में इस सत्य को जान सकें कि दुख जब देने में आता है, तो कितना देता है।...मैं इसी में बूढ़ी हो चुकी हूँ, लेकिन राजशेखर भी इस रहस्य को अभी, शायद पहचान नहीं पा रहा है कि जीवन में दुख कभी-कभी ऐसे भी आता है कि जितना हमें खाली करता है, हम सरोवर की तरह भरते हैं। चंद्रशेखर के शहीद

होने के बाद, मैं भी यही सोचती थी कि या तो एक निहायत आदर्श-विहीन जिंदगी और या आत्महत्या के अलावा और कोई रास्ता बचा नही है ।....या फिर एक ऐसी वीरान और लम्बी यात्रा, जिसमें अपने पाँव के ऊपर पाँव रखकर चलना पड़ता है ।"

एक क्षण को उदासी मे डूबे रहकर, श्रीमती मैठाणी तुरत उबर आईं । गीता के बायें गाल पर हलका-सा थप्पड़ मारती हुई बोलीं—"अभी नहीं, लेकिन यों अकेले-अकेले ही बुढ़िया हो जाओगी, तो तब मेरी 'ट्रेजेडी' को समझ पाओगी । अभी तुम्हारे पास वक्त है ।"

"हाय, आपने 'अभी वक्त है' कहकर, मिस पाल की तरुणाई और सुंदरता को धन्य कर दिया....अभी सुबह-सुबह जब मैं सबसे पहले इनके कमरे मे गई थी कि सब को साथ लेकर, आपसे मिलने आएँगे....हाय, झूठ ससुरा याद नही रहता है । आखिर सच मुँह से निकल ही गया ।.... खैर, मैं आपसे यह कहने जा रही थी, मिसेज मैठाणी, कि सुबह हमारी मिसपाल बिल्कुल सुहागरात के बाद की सी सुंदरता से भरी हुई थीं । कुछ स्वप्नों मे ही 'सैटिस्फाइड' हो जाते हैं । यों मैंने इनसे कहा भी था...."

गीता ने श्रीमती शर्मा के मुँह पर हाथ रख दिया—"आप, श्रीमती शर्मा, दायँ के बैल की तरह घूम-फिर कर अपनी जगह आ जाती है । 'सेक्स' के अलावा आपको कुछ सूझता ही नहीं क्या...."

"जब उम्र बीतने लगती है, 'सेक्स' बुझते हुए दीपक की लौ की तरह कुछ ज्यादा आलोकित होने लगता है ।"—श्रीमती मैठाणी ने सक्सेना की ओर देखते हुए कहा और पहली बार, मुक्त होकर, ठहाका लगाया ।

"हाय, 'सेक्स' के साथ आलोकित शब्द को जोड़कर, इसे कितना पवित्र और गरिमामय बना दिया आपने !....यह अद्भुत बात है । मुझे, मेरी तारीफ मे कुछ कहने से पहले, यह कहने की इजाजत मुझे दे ही दीजिए कि आप वास्तव मे एक आलोकित महिला हैं । अभी आपने ठहाका लगाया, तो मैंने अनुभव किया, जैसे मैं एकाएक ऐसी उत्फुल्लता से भर

गई हूँ, जिसे मैं शब्दों में नहीं बाँध सकती।"—श्रीमती सक्सेना के स्वर मे गहरे आदर का भाव था।

"आप मुझे, शायद, कुछ ज्यादा प्रतिष्ठा दे रही हैं। इतना जरूर है, दुखों ने मुझे और चाहे कुछ न दिया हो, थोड़ा-सा आत्म-विश्वास दिया है और साहस भी। मुझसे बातें करने के बाद लौटने वाले को, अपने-आपसे वार्तालाप करने में भी कुछ ज्यादा आनन्द आएगा—यह गलतफहमी मुझे है। राजशेखर अक्सर कहता है, 'मम्मी, तुम तो कभी-कभी ऐसे मुझसे बातें करती हो, जैसें मैं तुमसे बातें कर रहा होऊँ!'....जब वह अपने-आपसे लडता हुआ थक जाता है और अपनी बदहवासी, अपने गुस्से को लड़ाई के मैदान से वापस लौटे हुए सिपाही की फौजी वर्दी की तरह उतार फेंकता है और सिर्फ़ एक असीम करुणा और पश्चाताप मे होता है—ऐसे क्षणों में उसे सुनना, जैसे किसी देवशिशु को सुनना होता है।"

श्रीमती मैठाणी आत्म-मुग्धता में डूबने लगी थीं कि श्रीमती सक्सेना ने यह कहकर, चौंका दिया—"हाय, कभी अपने देवशिशु का प्रवचन सुनने का सौभाग्यपूर्ण अवसर हमें भी उपलब्ध करवाइए!"

"प्रायः अध्यापिकायें जिस तरह की ठस भाषा बोलती है, उससे आप लोग कुछ बेहतर भाषा बोल लेती है, यह अचानक नही हुआ होगा। जब हमारे आस-पास और हमारे भीतर कोई बड़ी घटना घटित होती है, तब हमारी भाषा पर भी असर पड़ता है।"

"आप श्रीमती सक्सेना की प्रार्थना को टाल रही है....।"

"प्रार्थना तो खैर यह समवेत भी हो सकती है, लेकिन पानी तो स्वाद तब ज्यादा देता है, जब परिश्रम के बाद की प्यास में पिया जाए। वाणी का स्वाद भी कुछ ऐसा ही होता है। जितनी कठिनाइयों से मिलता है, उतना ही स्मरण रहता है।....लेकिन राजशेखर संकोची बहुत है। आजकल 'टची' भी कुछ ज्यादा हो गया है। देखिये, फिर कभी आप लोग खुद ही उससे बातें कीजिएगा। उसे यह इतमीनान हो जाए कि बाते करने वाला उसका अहित चाहने वाला नही, तो वह अत्यन्त शिष्ट ढँग से और बहुत

अच्छी-अच्छी बातें करता है।....संकोची इतना है, जब पिछले महीने शहर में पहुँचा, तो होटल में टिक गया था। वो तो मैं जबर्दस्ती ले आई। अब सोचती हूँ कि यह कितना अच्छा हुआ। होटल में उसे लोग परेशान करते और शायद, होटल मालिक को कहकर, निकलवाने की कोशिश करते.... और तब, शायद, वह बर्दाश्त नहीं कर पाता।"

"आप क्या सोचती हैं। दोषी कौन है?"

"यानी मीना या राजशेखर....? मैं आशा नहीं करती कि आप या कोई भी मुझसे सहमत हो जाएगा—लेकिन मेरी नज़र में सारा अपराध मीना का है और किसी हद तक, शायद, उसकी परिस्थितियों का हो।.... लेकिन राजशेखर का तो अपराध सिर्फ़ इतना है कि उसने मीना को उस हद तक प्यार किया, जिसमे पुरुष अपनी आँखों से कुछ नहीं देखता—सिर्फ़ भावना से देखता है।....और अब वह जलते हुए रेगिस्तान में अकेला है। उससे वह सब सहा नही जा रहा है, जो उसे दिखाई दे रहा है। बस, इसी बदहवासी मे उसने प्रोफेसर तिवारी का गला भी पकड़ लिया होगा। इस शहर के हू-हू करते हुए लोग कही उससे आखिर हत्या भी न करवा दे, हालाँकि मै उसे बहुत समझाती हूँ कि जिन्दगी अक्सर अपने-आप को इस तरह भी शुरू करती है कि लगता है, सब—कुछ समाप्त हो गया है। वह बहुत समझदार और कल्पनाशील भी है, लेकिन उम्र से पार पाना भी तो आसान नहीं होता? शरीर भी अक्सर आदमी को इस घपले में डाल देता है कि अपनी ही लगाम अपने हाथों से छूटने लगती है।....देखो, याद आया। यह बात मैंने उससे भी कही थी और इसको 'बेस' बनाकर, उसने 'वल्गा' शीर्षक देकर एक कविता लिखी है...."

"वासना की विफलता भी तो कभी-कभी आदमी पर बुरी तरह हावी हो जाती है, मिसेज मैठाणी! और अपनी इस तरह की विफलताओं को दबाने के लिये बहुत-से लोग कविता लिखने लगते है। मैंने बायरन की जिन्दगी के बारे में कही किसी मैगजीन में हाल में ही पढ़ा था...."

"जरूर पढ़ा होगा, लेकिन शायद, इतना कोई बुद्धिविवेक वाला बिना

पढ़े भी आसनी से समझ सकता है कि वासना कविता की ओर वापस नहीं ले जाती, प्रेम ले जाता है। कविता बहुत कठिन चीज है और वासना बहुत आसान। वासना तो जानवर में भी होती है—और आप लोगों ने भी देखा होगा कि अक्सर वह इसमे विफल भी हो जाता है—लेकिन वह कविता की दिशा में नहीं जाता !"

श्रीमती मैठाणी के दवंग स्वर ने फिर श्रीमती शर्मा को दवोच लिया।

"....लेकिन वह तो पहले से ही लिखता रहा है। कालेज के दिनों में ही। अपने कालेज की वार्षिक पत्रिका का कोई अंक भी उसने सम्पादित किया था।"

"आप तो उसके बारे में काफी—कुछ जानती हैं, मिसपाल !....लेकिन विफलता शब्द की जो परिभाषा मिसेज मैठाणी ने दी है, भूलियेगा नहीं।" —इस बार न बोलने से अनुपस्थित लगती हुई-सी प्रभा जायसवाल ने कहा।

"लोग जो यह अफवाह उड़ा रहे हैं कि वह फौज से भाग कर आया है, इसमें क्या कुछ सच्चाई है, मिसेज मैठाणी ?"

—गीता पाल ने, प्रभा जायसवाल की बात को अनसुना करके, श्रीमती मैठाणी से एकाएक पूछ लिया।

"इसमें सच्चाई होती, तो आप क्या समझती हैं कि इस शहर के लोग उसको यों मुक्त रहने देते ? कव की मिलिट्री-अथारिटीज़ को सूचना भेज दी गई होती और अब तक उसका 'कोर्ट-मार्शल' हो चुका होता। हाँ, यह जरूर सच है कि वह मीना की खातिर ही वहाँ से 'रिलीज़' लेकर चला आया। इस बेवकूफ लड़की के लिए जो-जो 'टॉर्चर' उसने मोल लिये है, मेरा तो सोचकर ही मन सहम जाता है।....लेकिन, मिस पाल, तुम कम बोलते हुए भी उसके वारे में ज्यादा उत्सुक दिख रही हो। देखो, कहीं फिर न वदनाम हो जाना।"

गीता का चेहरा थोड़ा-सा उतर गया।

"मैंने जो-कुछ कहा है, तुम्हारा जी दुखाने को नहीं, गीता !....लेकिन कभी-कभी जिन्दगी अपने लिये बहते हुए पानी की तरह जमीन ढूंढ़ती होती है और हमें पता नहीं लगता !"—गीता पाल के चेहरे को और भी हताश पड़ते देखकर, श्रीमती सेठाणी ने तुरंत पसंग बदल दिया—"मिसेज सक्सेना, सुना है, आप कबाब बहुत अच्छे बनाती हैं ? कभी हमें भी खिलाइए ?"

मिसेज सक्सेना 'अवश्य-अवश्य' की मुद्रा में सिर हिलाना ही चाहती थी, कि तब तक श्रीमती सेठाणी उठ खड़ी हुई—"आप लोगों को एक-एक प्याली चाय और पिलाऊँ। क्या करूं, नौकर अभी लौटा नहीं, घर में बेसन नहीं है—नहीं तो पकौड़ियां खिलाती। ताजा पालक की।"

उन लोगों के शिष्टाचार में रोकने तक, श्रीमती सेठाणी सीधे रसोई-घर की तरफ निकल गई—"भई, गीता, बुरा न मानना। तुम सबसे छोटी हो। जब तक मैं चाय का पानी उबालूं, जरा प्यालियां धो दो। प्लीज। उधर उस कोने में नल है। राजशेखर की मेज पर से भी प्याली उठा लेना।

श्रीमती शर्मा कुछ तल्ख होकर धीमे-धीमे बोलीं—"बहुत घाघ औरत है, साहब ! हम लोग बेकार जरूरत से ज्यादा भावाभिभूत हो जा रही हैं। लौटने दीजिये, अब इस बुढ़िया की थोड़ी-सी लिहाड़ी ली जाए।....अरे बाप, गीता को कैसे काम पकड़ा गई, जैसे बहू हो...."

"इट मे बी पॉसिबल !...."—प्रभा फुसफुसाती बोली—"बुढ़िया के उस 'कमेंट' पर आप लोगों ने, शायद, गौर नहीं किया ? कह रही थी कि कभी-कभी जिन्दगी बहते हुए पानी की तरह जमीन ढूंढ़ने लगती है...."

"खैर, यह 'कमेंट' तो आप पर भी उतना ही चस्पा होता है, मिस जायसवाल ! आप तो मिस पाल से भी ज्यादा शुद्ध 'बैचलर' है और उम्र भी मिस पाल से कुछ ऐसी ज्यादा नहीं हो गई...."

"सुनिये, आपस की छेड़खानी तो लौटते हुए भी काम आ जाएगी—इस वक्त कुछ ऐसी बात सोचिए सब लोग, जिससे हम लोगों के वापस चले

जाने पर बुढ़िया अपनी अँगुलियाँ चटकाते हुए यह न कह सके कि उल्लू की पट्ठियाँ चली आई थीं।"—श्रीमती शर्मा जैसे अभी भी अपनी हतप्रभता में से उबरने की कोशिश में थीं। घबराहट

"कल 'कवाना' में काफ़ी पीते हुए, ज्ञानवती जी, आप दाढ़ीवाले बकरे की 'फ़ैन्टेसी' सुनाते-सुनाते रुक गई थीं....?"—प्रभा ने, श्रीमती सक्सेना की योजना में शामिल होने की सी मुद्रा में, धीमे-धीमे अपनी बात समाप्त की और श्रीमती सक्सेना का कंधा दबा दिया।

"अरे हाँ, कभी-कभार उस बकरे को इधर-उधर भटकते देखा भी था। सुना है, उसे भी ये अपने बेटे की तरह रखती थीं और एक बार कुछ शरारती लोगों ने रहमत बूचड़ को भेज दिया था कि बकरा बिक रहा है, खरीद लाओ और वह यहाँ से वो डाँट खाकर लौटा कि तौबा-तौबा कहने लगा। बाद में, बकरा मर गया—खुद-ब-खुद—तो बुढ़िया ने उसे यहीं कहीं कब्रनशीं कर दिया। सुना है, बुढ़िया खाती रहती थी और बकरा थाली में से रोटी उठाकर, घुटनों के बल बैठ जाता था और दोनों साथ-साथ खाते थे। हमारी एक 'कलीग' देख आई थी और बताती थी कि बू के मारे कमरा भरा रहता है।"—श्रीमती सक्सेना धीमे स्वर में बकरे का इतिहास बताती जा रही थीं।

"छि; बकरों से तो अजीब-सी बू आती है।"—श्रीमती शर्मा ने मुँह बिचकाया, तो प्रभा कुछ जोर से कह बैठी कि—'आप तो ऐसे मुंह बिचका रही है, जैसे वह बकरा कब्र में से उठकर, आपके सामने खड़ा हो गया हो!....'

"हाँ, भई, यह अचानक मेरे बकरे का कैसे जिक्र आ गया?"—समीप आती हुई, श्रीमती सेठाणी ने कुछ तेज आवाज में पूछा, तो श्रीमती शर्मा एकाएक कुछ आक्रामक हो आईं। सँभलकर बैठते हुए, बोली—'हम लोगों ने यह सुना था कि आपको बकरे पालने का बहुत शौक है? आपने, शायद, वह मुहावरा तो सुना ही होगा कि 'बकरे की माँ आखिर कब तक दुआ करेगी?'....और श्रीमती सक्सेना यह भी बतला रही थीं कि जब

आपका चंद्रभाल बकरियों के पीछे भागता था तो आपको बहुत प्रसन्नता होती थी ?"

श्रीमती शर्मा आशा में थीं कि इस अचानक के आक्रमण से श्रीमती मैठाणी निश्चित रूप से कुछ हतप्रभ होंगी और शायद, खीझेंगी भी।.... लेकिन श्रीमती मैठाणी चाय की देगची रखते हुए, बच्चों की ही सरलता के साथ बोली—"अरे भई, मिसेज शर्मा ! यह मुहावरा सिर्फ़ सुना ही नहीं है, बल्कि दुआयें करके भी देखा, लेकिन बकरा बचा नहीं। शायद, बहुत-से लोग राजशेखर की ओर इशारा करके भी इस तरह की बातें करना चाहे, लेकिन मूर्खों को इस बात का ज्ञान कभी नहीं होता कि इस तरह की 'सेल्फ-कांशेसनेस' अगर बदबू देने की हद तक पाली जाए, तो फिर बकरे वाले मुहावरे से भी ज्यादा खतरनाक होती है।....लेकिन आपको यह सब किसने बताया ? शहर के लोगों ने या बकरियों ने ?"

अपना वाक्य पूरा करके, श्रीमती मैठाणी ने एक साथ बाकी तीनों की ओर घूर कर देखा, तो उन्हे लगा, जैसे देगची में पड़ी चाय बदजायका और बदरंग हो गई होगी।

श्रीमती सक्सेना, प्रभा और गीता—तीनो को श्रीमती शर्मा के द्वारा इतने आकस्मिक और आक्रामक ढंग से बात का कह जाना उचित लगा नही था। गीता चुपचाप चाय प्यालियों में उंड़ेलने लगी थी।

प्रभा जायसवाल तश्तरियों मे रह गया पानी एक किनारे फेंक रही थी। श्रीमती सक्सेना ही बोलीं—"श्रीमती शर्मा बहुत हँसमुख दोस्त हैं। मजाक करना इनकी आदत में शुमार है। हम सब लोगो को आपसे बातें करके बहुत ही प्रसन्नता हुई है। मैं तो आपसे सचमुच बहुत प्रभावित हुई हूँ। अब कभी-कभी हम लोग आपके यहाँ आया करेंगी। आपको एतराज तो नहीं होगा....?"

"होगा, अगर आप लोग नहीं आएँगी !....खास तौर पर ये मिसेज शर्मा ! मुझे ऐसे लोग बहुत अच्छे लगते है, जो अपना मजाक खुद उड़ा

सकते हों !"—श्रीमती मैठाणी लगभग पारिवारिक किस्म की घनिष्ठता में बोलीं—"आपके बच्चे कितने हैं ?"

"दो लड़के—चार लड़कियाँ।" कहते हुए, स्वयं श्रीमती शर्मा ने अनुभव किया कि अपनी परास्तता को छिपाना कठिन हो गया है।

"और आपके ? कभी बच्चों के साथ देखा नहीं आपको।"

"जी, जब रामपुर में 'एप्वाइंटेड' थी, एक 'सोजेरियन' हुआ था। बचा नहीं। इस बात को तीन साल हो चुके।"—अपने अवसाद को छिपाने की चेष्टा करते हुए बोलीं—"गनीमत है, सक्सेना साहब को इस बात की कोई शिकायत नहीं। अक्सर मजाक में कहते हैं कि 'भई, देना भगवान् के हाथ में है, हम तो सिर्फ़ कोशिश कर सकते है। हिम्मते-मर्दां, मदद्दे-खुदा........बहुत बातूनी हैं।"

"और आप लोगों से तो, खैर, बच्चों को लेकर अभी पूछना ही बेकार है !"—प्रभा और गीता की ओर रुख करती हुई श्रीमती मैठाणी हँस पड़ीं, तो श्रीमती शर्मा को भी जैसे अपने-आपसे उबरने का फिर अवसर मिला। बोलीं—"इन दोनों से पूछना तो बेकार हो सकता है, लेकिन अनाथालयों के मैनेजरों से तो पता किया ही जा सकता है....!"

इस बार सभी को हँसी आ गई।

चारों विदा होने लगीं, तो श्रीमती मैठाणी गीता के कंधे पर हाथ रखती हुई बोलीं—"श्रीमती सक्सेना अपनी नौकरानी से सिर्फ़ अपने और प्रभा जी के लिये ही कह कर आई होंगी।....तुम और श्रीमती शर्मा यहीं कुछ खा-पीकर...."

"जी नहीं, फिर कभी कष्ट देंगी।" कहते हुए गीता ने आदरपूर्वक नमस्कार किया और बाड़े की तरफ़ बढ़ने लगी—"आपको परेशान किया, क्षमा करेंगी।"

"अरे, नहीं। तुम तो मेरे लिये बच्ची की तरह हो।" कहते हुए,

श्रीमती मैठाणी का चेहरा इस बार आत्मीयता से लबालब भर गया और विदा में हाथ उठाते हुए, आग्रह भरे स्वर में बोलीं—"आप लोग फिर कभी आइएगा जरूर....।"

संतपाल गिरजाघर मे से दोपहर का गजर सारे शहर में फैल गया। वो लोग, अब वापसी मे, चुपचाप चली जा रही थीं। कोहरा अब काफी झीना पड़ चुका था। बस स्टेशन के पास ही हलचल इतनी दूर से भी साफ़-साफ़ दिखने लगी थी।

"आप दोनों हम लोगों के यहां भोजन करके ही अब जाएँगी।" श्रीमती सक्सेना ने आग्रहपूर्वक कहा और अनुभव किया कि श्रीमती मैठाणी से लम्बे वार्तालाप के बाद, बातचीत करते में अब आलस्य और थकान की सी अनुभूति होने लगी है। फिर भी इतना कह दिया—"श्रीमती शर्मा, यह मैंने आपसे कब कहा था कि मिसेज मैठाणी को बकरे की हरकतों से प्रसन्नता होती थी ? इतना आपको मान लेना चाहिए कि मिसेज मैठाणी आपसे सिर्फ़ उम्र मे ही नही, अनुभवों में भी बड़ी है। आपने तो मुझे बहुत ऑड पोजीशन मे डाल दिया था।....वो तो श्रीमती मैठाणी बहुत सभ्य महिला हैं। आप, गीता ठीक कहा करती हैं, बातें करते-करते बहक ही जाती है।"

"लेकिन आज इन्हें सबक भी तगड़ा मिल गया।"—गीता पाल ने कहा।

श्रीमती शर्मा कुछ कहना चाहती थीं कि उनका पाँव फिसल गया और वार्तालाप वहीं टूट गया। प्रभा ने उनको सहारा देकर उठाया, तो कराहती हुई बोलीं—'आज सुबह-सुबह किसी अच्छे का मुंह नहीं देखा।' और गीता पाल की ओर देखने लगीं।

"मेरा मुंह तो आपने शर्मा जी की मूर्त्ति देखने के बाद ही देखा होगा!"—गीता पाल ने कहा और चारों हँस पड़े।

● ●

६

शवनम स्टोर्स से वाहर निकलते ही, उसने एक वार चारों ओर देखा। मफलर के किनारे को ओठों के ऊपर किया और तेजी से आगे वढ़ गया। अव वह सीधे घर जाना चाहता था, लेकिन अध्यापिकाओं को देखकर, उसने जाने क्यों रास्ता वदल लेने की जरूरत महसूस की। ओकवुड कॉटेज से वाहर निकलते ही जाने क्यों एक अवूझ किस्म की विचलितता महसूस होती है। कोई नहीं देख रहा होता, कोई कुछ नही कह रहा होता, मगर एहसास वना रहता है।

ओकवुड कॉटेज में रहते हुए भी किसी घायल जानवर की तरह गुफा में पड़े होने की सी प्रतीति होती है और शायद, इसो प्रतीति में वह वाहर निकल आता है।

थोड़ा-सा नीचे उतरते, उन अध्यापिकाओं की पहुँच से ओझल हो चुकने का इतमीनान होते ही, वह फिर उत्तर की ओर मुड़ गया। हालाँकि वह अक्सर, इस वक्त, अखवार-पत्रिकायें सरसरी निगाह से पढ़ते हुए ओकवुड की तरफ लौटता है, मगर उसने चुपचाप पगडण्डी पकड़ ली।

श्रीमती मैठाणी चाय तैयार किये हुए, उसके इन्तजार में थीं और इस वीच धो लिये कुछ कपड़ों को तार पर फैलाने जा रही थी।

"ममी, आप इतने ठण्ड मे भी सुवह-सुवह कपड़े धोने वैठ जाती हैं।"

"वेटे, इस शहर में तो हमेशा ही ठंड और कोहरे से वास्ता है। आज तो तव भी लगता है, मौसम कुछ खुलेगा। तुम आज वहुत थके लगते हो, जैसे तेजी से चढ़ाई पार की हो, तुम्हारी आवाज में भारीपनहै।"

"योंही, ममी, पगडण्डी पकड़ता हुआ आ गया। तेजी से इसलिये कि चाय ठण्डी हो जायेगी।"

"देख, शेखर, मुझसे झूठ ना बोला कर।"—श्रीमती मैठाणी बाहर खुले मे रखे मेज की तरफ बढ़ती बोली—"चल, पहले चाय पी ले। आज इतवार है। मुझे याद नहीं रहा, तू अपनी ओर से कुछ कभी करेगा नहीं। अब मीट लेने तुझे दुबारा जाना होगा। मेरे साथ घास खाते-खाते ऊब गया होगा।"

"नहीं, ममी, मीट-वीट रहने दो। बहुत जी ललचा गया, तो कहीं कभी किसी होटल-वोटल में खा लूंगा। मीट अकेले के लिये खाने-बनाने की चीज नही।"

वह अखबार पढने लगा था। श्रीमती मैठाणी ने 'टीकोजी' हटाकर, चाय प्याली में उँड़ेली, तो उसकी सुगन्ध हवा मे आ गई।

"मैंने भी इसीलिये छोड़ ही दिया कि अकेली औरत के लिए वह सचमुच झंझट की चीज है। चंद्रशेखर को बड़ा शौक था। मेरी आदत भी पड़ गई थी।....तुम्हे एक घटना बताऊँ कि तब चंद्रभाल को लाई ही थी। रहमत बूचड़ का बेटा फेरी पर निकला और इस सनक में कि गोश्त वाला दरवाजे तक आया हुआ है—पाव-भर कलेजी ले ली।....मगर बनानी शुरू की और बाद में बना लेने के बाद, तश्तरी में निकालकर चखना शुरू किया, देखे कैसी बनी है—तब तक मे 'पोर्ट्रेट' पूरा हो गया और मुझे लगा, चंद्रभाल ससुर मेरी आँखों के सामने खड़ा है और कह रहा है—'मम्मी, मेरी कलेजी....' ....उल्टी होते-होते बची। आँखों में भयंकर 'टेन्शन' महसूस हुई और मैंने तश्तरी को, 'फ्राइपैन' को बाहर दूर फेंक दिया। वापस नही लाई।...निचाट अकेलेपन की जिन्दगी आदमी को एक अजीब ढँग से 'सिनीकल' बना डालती है।"

उसने कुछ नहीं कहा।

श्रीमती मैठाणी ही बोली—"अब ऐसी कोई झंझट रही नहीं। वह ससुरा मर गया, तब मैंने महसूस किया कि यह मिट्टी का खिलौना था,

में खेल रही थी। उसको जगह कुत्ता-बिल्ली पालती तो भी यही होता। ....तुम चाय पीकर, अखबार से निबट कर, दुबारा निकल जाना। आधा किलो मीट लेते आना। आज पुलाव बनायेंगे।'

"मेरी खातिर, ममी, अपने को भी भ्रष्ट कर सकोगी? अकेले में हर्गिज न खाऊँगा।"

"जहन्नुम में तो जाना ही है मुझे। क्या फर्क पड़ेगा....और जहन्नुम में तो, शायद, 'वेजीटेरियन' लोग भेजे ही न जाते हों और शाक-भाजी वहाँ मिलती ही न हो!"—कहती, चाय की अंतिम घूंट भरती श्रीमती मैठाणी उठ खड़ी हुई—"कपड़े डाल दूँ, तो तुझे पैसे और टोकरी दूँ।"

वह कुछ जवाब देता कि उसने किसी के आने की आहट अनुभव की, हालाँकि सुनने की जगह, महसूस करने की अनुभूति ज्यादा हुई।

योंही कनखी से उसने देखा और उसे उन चारों महिलाओं के पाँव अपनी पीठ पर पड़ते महसूस हुए। साफ था कि वो फाटक के भीतर, श्रीमती मैठाणी के पास ही आ रही हैं।

जब तक वे वो लोग श्रीमती मैठाणी से अभिवादन करतीं, वह चुपके से उठा और तेज लेकिन लगभग बे-आवाज कदमों से चलता खुले फाटक से बाहर निकल आया। बिना पीछे मुड़े ही, उसने धीमे से फाटक बन्द किया, तो उसे याद आया कि अभी-अभी जब वह वापस लौटा था, तब फाटक खुला ही छोड़ दिया था।

लगभग चार-पाँच घंटे वह कहाँ भटकता रहा, उसे कुछ होश नहीं। सीधे उत्तर की तरफ पहले चढ़ाई और फिर ढलान की तरफ निकलता गया और जब वह किसी जंगल में के पेड़ का सा भटकना खत्म करके—ओकवुड आने की जगह—सीधे शहर की तरफ निकल आया।

वह दुबारा शबनम स्टोर्स की ओर गया और 'सुबह भूल गया था' कहते हुए, जल्दी से कुछ सामान खरीदा। फिर यंत्रचालित-सा 'रहमत मीट शॉप' की तरफ निकल गया और गोश्त लिया। अब कहीं जाकर उसने महसूस किया कि वह भूखा है।

उसने अपनी थकावट में से उबरने की सी कोशिश में घंटाघर की ओर देखा—एक बज चुका था।

वह स्वयं नहीं समझ पा रहा था कि ऐसा कैसे हो गया। यह पहली बार हुआ है कि श्रीमती मैठाणी से बिना कुछ कहे चले आने के बाद, लगभग दिन-भर वह बाहर रहा। सुबह की चाय के बाद, सिर्फ़ नाश्ते पर ही नहीं, दोपहर के भोजन के वक्त की प्रतीक्षा श्रीमती मैठाणी ने की होगी। काफ़ी देर तक हो सकता है, अभी तक उन्होंने भोजन नहीं किया हो। श्रीमती मैठाणी का चेहरा उसे स्मरण आता गया और उसके कदम लम्बे पड़ने लगे।

माल रोड के नुक्कड़ पर पहुँचकर, वह राह से भटका-सा ऊपर ओक-वुड काटेज की दिशा में जाती हुई सड़क पर बढ़ना ही चाहता था कि तभी उसे कुछ परिचित-सी आवाज़ सुनाई दे गई।

आवाज साफ नहीं थी, जैसे बोलने वाले के गले में कोई चीज़ अटकी हुई हो। सिर्फ गर्दन घुमाकर देखने की कोशिश में ही, सरदार रेस्तरां के भीतर बैठे कामरेड सूरज का झबरा सिर दिखाई दे गया।

"हैल्लो...." —कामरेड सूरज कुछ खा रहे थे और हाथ मे पकड़ी चम्मच को उसकी तरफ 'इधर आओ, इधर आओ' की मुद्रा में तेजी से हिला रहे थे।

शेखर नजदीक पहुँचकर, उनकी बगल मे बैठ गया, तो उन्होंने आवाज लगाई—"प्राहा, एक डबल मसाला डोसा होर। ठाकुर भाई की खिदमत में।"

सरदार दिलदार सिंह की मूँछें ऐसे हिली, जैसे चीटी ने काट लिया हो ओठों पर—'सत श्री अकाल जी, ठाकुर साहब !'

शेखर कुछ सन्ना गया। लोगों का अभिवादन, इन दिनों, उसके लिये अभिवादन नहीं रह गया है। इसके साथ जैसे एक रोमांचकता जुड़ी होती है। इस रेस्त्रां में भी न-जाने कितनी बार, कितने लोगों के बीच और किस तरह की चर्चायें उसको लेकर हुई होंगी।

"सूरज भाई, हमें कुछ भूख नहीं। सिर्फ चाय पी लूँगा। दिन में खाना

कुछ ज्यादा खा लिया।"—वह जैसे अपने-आप से मुक्ति पाने की जरूरत महसूस कर रहा था।

कामरेड सूरज ने दायें हाथ की चम्मच को चटनी वाली कटोरी में डालते हुए, बायें हाथ से उसके कन्धे को थपथपाया—"अरे यार, इस नामाकूल शहर में दिलदार भाई ही वह हस्ती है, जो ऑफ-सीजन में भी मसाला दोसा और इडली-जैसी दुर्लभ चीजें परापत करा देता है। दिन-भर में चाहे ससुरे तीन ही दोसे बिकें, लेकिन सरदार को कोई कोफ्त नहीं होगी।"

"अपन तो, कामरेड दादा, कस्टमर को माशूक समझ कर उसका इन्तजार करते हैं और माशूक के इन्तजार में जो कोफ्त होती है, बादशाओ, वो तीतर के कोफ्तों से भी मजेदार होती है...."

हालाँकि सरदार जी मसालादोसा बनाने की तैयारी में व्यस्त हो गये थे, लेकिन उसे लगा कि पलटकर, उसकी तरफ जरूर देखेंगे। उसे अनायास ही याद आया कि ओकवुड काटेज से सुबह की धुंध में ही चले आने के बाद भी प्रत्येक क्षण वह यही तो प्रतीक्षा करता रहा है—शायद, मीना फिर दिखाई दे जाए। दूर, बियाबान एकांतों में भी हर क्षण उसकी उपस्थिति महसूस होती है।

जाने उसे प्रत्येक क्षण यह अहसास क्यों घेरे रहता है कि इस शहर की तमाम नज़रें पारदर्शी हो गई हैं। मुहब्बत या प्रेम, लड़की या औरत, चरित्र या रोमांस—जैसे शब्द लोगों की जबान पर से चिड़ियों के झुण्ड की तरह उड़ते हैं और उसके अस्तित्व को पेड़ की तरह प्रयोग करते हुए, कन्धों पर बैठे हुए-से, देर तक फड़फड़ाते रहते है।

ये जो लोग इधर-उधर बैठे हैं, शायद, ये भी कुछ-न-कुछ बोलना शुरू करेंगे।

वह कुछ विचलित हो रहा था लेकिन उसने अंततः यही तय किया कि चुप रहना ही, उसके लिये, बेहतर होगा।

दोसा अनमने मन से जल्दी-जल्दी उसने खा लिया और चाय पीकर,

कामरेड सूरज से विदा माँगने की सोच रहा था कि कामरेड सूरज उठकर खड़े हो गये—"सरदार जी, चाय नही चलेगी।"

रेस्त्राँ से बाहर निकलते ही, कामरेड सूरज ने उसके कंधे पर हाथ रखकर, उसका रुख अपने प्रेस की दिशा मे मोड़ दिया—"यार, तुम इतनी उतावली में क्यो हो ? चलो, चाय जमकर प्रेस में पी जाएगी। मैंने सुना है कल तुम्हे सिद्दीकी मियाँ ने बुलाया था ? और कोई यहाँ अभी-अभी कह रहा था कि आज सुबह 'फोर सिस्टर्स' ओकवुड काटेज जाती देखी गई थी ?"

"सिद्दीकी के बारे मे आपको किसने बताया ?"

"भाई मेरे, तुम इस शहर के बहुत ऊँचे हिस्से मे रहते हो। वहाँ से अगर पत्थर भी लुढकेंगे, तो सीधे कामरेड सूरज के प्रेस के कम्पोजिग-केस में पहुँचकर ही रुकेंगे।"—कामरेड ने जोरदार ठहाका लगाया और उसे प्रेस की तरफ ठेलते चले गये।

प्रेस की सीढ़ियों पर से होते हुए, दोनों साथ-साथ कमरे मे पहुँचे। कमरा इस अर्थ मे पूरी तरह साम्यवादी हो रहा था कि सब चीजे आपस में गड्ड-मड्ड हो रही थीं।

कोट उतार कर, कामरेड सूरज ने, मेज पर डाल दिया और स्टोवर सुलगा कर, चाय की केतली चढ़ा लेने तक कुछ बोले नही। सिर्फ़ सीटी पर 'काहे कोयल शोर मचाये रे, मुझे अपना कोई याद आये रे।' की धुन बजाते रहे।

शेखर दीवार के पास बैठ गया बोरे पर और इधर-उधर बिखरे पुराने अखबारों को उलटने-पुलटने लगा। बिना कोई इस तरह की घटना पढ़े ही, उसे एकाएक ध्यान आया कि आत्म-हत्या और हत्याओं की खबरें पहले भी अखबारों में छपा करती थीं, लेकिन तब इन खबरों से इस तरह का सरोकार अनुभव नहीं होता था। अब तो चाहे आत्म-हत्या या हत्या की खबरें बाराबंकी-बहराइच की ही क्यों न हो, उनसे खुद का एक चेतनागत रिश्ता-सा अनुभव होता है।

प्याली की खनक सुनकर, वह चौंका और देखा कि कामरेड ने चाय उसके सामने रख भी दी है। अब ऐसा अक्सर होने लगा है। अपने खोये-पन में से एकाएक उबरते हुए, उसे एक अमूर्त्त निरीहता में डूबने का सा अवसाद घेर लेता है और उसकी आँखें नम हो जाती हैं।

"तुम्हारी हालत तो, प्यारे, 'प्रिगनेन्ट वुमन' की तरह हो चुकी है। लगता है, सिर्फ़ चार-पाँच दिनों में ही तुमको 'प्री-डिलीवरी पेन्स' शुरू हो गये हैं। तुम भी अजीब चुगद हो, यार! हर समय ऐसी सूरत बनाये रहते हो, जैसे यह सारी दुनियाँ तुम्हारे चूतड़ो पर चढ़ी हुई हो। इतने ज्यादा 'टची' मत बनो। हाथ में रूमाल कैसा पकड़ रखा है?"

"टूथपेस्ट और ऑडोमास ले जा रहा हूँ। मच्छर बहुत हैं।"—उबरने की कोशिश करते हुए, उसे काफ़ी असुविधा अनुभव हुई—"ममी ने मीट भी मँगाया था...."

"थैंक्स गौड! मैं समझा था, कुछ प्वाइज़न-वाइजन ले आये हो।.... वैसे शहीदों के जुनून से गुजरते हुए आदमी को अपने दाँतों और मच्छरों की ज्यादा परवाह करनी नहीं चाहिए!"—कामरेड ने ठहाका लगाना चाहा, लेकिन शेखर की संजीदगी जैसे उनकी जीभ तक पहुँच गई। जल्दी-जल्दी चाय के दो घूंट भरने के बाद, उन्होंने चाय की प्याली शेख़र के मुँह के पास तक उठाई और बोले—"देख, भई शेखर, एक बात का हमेशा ध्यान रखना। यह कभी सपने में भी मत सोचना कि मैं तुम्हारा मजाक उड़ाने या तुम्हें दुखाने की कोशिश कर सकता हूँ। मुझे दरअसल तुमसे कुछ प्रेम हो गया है और इसीलिए डरने लगा हूँ। कोशिश करना चाहता हूँ कि तुम इतने ज्यादा उदासीन न रहो कि यह उदासी तुम्हारे लिए अफ़ीम का नशा बन जाए। अपने शहीद होने की उदासी बहुत खतरनाक होती है। इसमें आदमी को यह मुगालता हो जाता है कि वह दूसरों को सबक देना चाहता है। कोई ऐसी मिसाल कायम करना चाहता है, जिसे दुनिया-वाले मुद्दत तक याद रखें। तुम्हे, लगता है, आजकल कुल जमा साढ़े तेरह हजार की आबादी वाला यह शहर ही मियाँ सुकरात की जेब में पड़ा रहने

वाला 'ग्लोब' दिखाई दे रहा है। दुनिया कितनी बड़ी है, इसका अंदाजा लगाने के लिये ये पुराने अखबार ही काफी हैं, जिनके पन्नों पर आत्म-हत्या और हत्या करने वाले शहीद ही हजारों की संख्या में मक्खियों की तरह भरे पड़े हैं।"

"सूरज भाई, समझाने का यह आपका तरीका शायद कारगर नहीं हो पाए।"—वह सिर्फ इतना ही कहकर चुप हो गया।

"मैं खुद इस बात को महसूस कर रहा हूँ, यार! तुम्हें समझाने की कोशिश में बात बनाने की कोशिश करता हूँ, लेकिन कह देने के साथ ही लगता है, बनी नहीं। खैर, मुझे यह देखकर खुशी हो रही है कि तुम फेमिली-साइज वाली टूथपेस्ट और ऑलिमास ले जा रहे हो। कभी-कभी आदमी अपने बाहर की घटनाओं और उनकी प्रतिक्रियाओं में इतना बेखबर हो जाता है कि उसे अपने भीतर का मद्धिम संगीत सुनाई नहीं देता। उसका अवचेतन मन कितने सूक्ष्म और अमूर्त ढँग से उसे भविष्य के लिए तैयार कर रहा है, वह पहचान नहीं पाता। तुम भी नहीं पहचान पा रहे हो, शायद!....लेकिन मुझे इस बात की खुशी है।"

"अगर हत्या या आत्म-हत्या कर लेने से पहले आदमी इस बात को पूरी तरह पहचान लेना चाहता हो कि ऐसा क्यों है।....और अगर पहाड़ की चोटी पर से नीचे कूद पड़ने से पहले एक बार आदमी अपने चारों ओर की दुनिया और आकाश को अपनी आँखों से नाप लेना चाहता हो....और किसी दूसरे को यह सब जीने की तैयारी दिखाई देता हो, तो इसमें एतराज की गुंजाइश कहाँ हो सकती है? मैं आपकी दोस्ती और आपके मिजाज का बहुत अहसानमंद हूँ। बहुत थोडे वक्त मे बहुत ज्यादा जगह आपने मुझे दी है।....सिर्फ़ जबान से नहीं, बल्कि आँखों से भी थूकते हुए इस शहर मे एक आपही तो ऐसे है, जिसे मेरे कंधे पर हाथ रखकर चलते हुए असमंजस नहीं होता। शायद, इसीलिये मै यह बात आपसे साफ़-साफ कहने की कोशिश करना चाहता हूँ कि अगर जिंदा रहने का इत-मीनान मेरे भीतर आ जाए, तो इसका सिर्फ़ एक मतलब होगा—और वह

यह कि मैं निहायत झूठा आदमी हूँ और मेरा प्यार, मेरा 'इमोशन' और मेरी बौखलाहट और मेरी यातनायें—ये सब झूठी हैं। पागल करार दिये जा सकने की उम्मीद में मेरा अपने नंगे जिस्म पर बर्फ़ के घाव पड़ने देना झूठा है।....आप मेरी इस तकलीफ को समझ नहीं पाएँगे, सूरज भाई, कि मुझे लगातार यही तो लग रहा है कि मैं, मेरा प्रेम और यहाँ तक कि मेरा पागलों का सा यह गुस्सा—सब-कुछ झूठा पड़ता गया है और इसे सच मे बदलकर ही, इस हालत से मुक्त हुआ जा सकता है।"

धाराप्रवाह बोलने से शेखर की साँसें कुछ तेज हो गई थीं। वह चुप हो गया। कामरेड के माथे पर उलझनों में फँस चुकने की त्यौरियाँ साफ़-साफ़ दिखने लगी थीं और वो तेजी से बीड़ी फूँकने लगे थे।

शेखर ने अनुभव किया कि इस तरह बोल जाने पर वह अपने भीतर एक अपरिभाषेय किस्म की मानसिक उत्तेजना अनुभव करता है और उसे काफ़ी राहत मिलती है। ज्यादा समय तक चुप रहने पर निहायत चुप्पे ढंग से उदासी उस पर हावी हो जाती है, फिर चाहे वह अपने आवेगों में अकेला पड़ जाने की हो, या स्मृतियों में डूब जाने की। हालाँकि वह घंटों वीराने में निरुद्देश्य भटकते रह जाने के कारण काफी थक गया था और यह जिज्ञासा धीरे-धीरे उसकी पीठ पर बर्फ की तरह जमती गई थी कि आखिर क्यों—क्यों इतनी सुबह-सुबह वो चारों महिलायें श्रीमती मैठाणी के पास पहुँची होंगी!

"आपको मेरी बातें हवाई और असंगत लग सकती हैं लेकिन मैं आप से फिर पूरी ईमानदारी के साथ यह बात कह सकता हूँ कि मुझे मीना की शादी ने नहीं, उसके विश्वासघात ने तोड़ा है। विश्वासघात की तकलीफ को बर्दाश्त करना मौत को बर्दाश्त करने से भी कठिन है। कम-से-कम मेरे लिये। मैं नहीं जानता, आपकी प्रेमिका ने सिर्फ़ शादी की थी या विश्वास-घात भी किया था, लेकिन इतना तय है कि आप इस तरह की यातना से नहीं गुजरे। मेरे लिये, कामरेड, इस यातना का निदान तथाकथित सामाजिकता की वह तमीज़ नहीं है, जो प्रेमिका की शादी को पंच फैसले

की तरह गटक जाने की नसीहत देता है। चाहे औरत हो या मर्द, उसका पच-फैसला तभी तक उसके हाथ मे है, जब तक वह प्रेम की, एक-दूसरे के अस्तित्व में साझीदारी की शुरुआत न करें—वाद का एकतरफा फैसला कमीनापन है। मै नहीं जानता, आप क्या महसूस करते है। मेरे पास कोई रास्ता नहीं है। मीना ने शादी कर ली, मेरे लिये यह बात उसकी पसंद नही, नीचता है। और जनाब, इस तरह की नीचता को अपनी समझ से बर्दाश्त करना और बात है, लोगों के डर से बर्दाश्त करना और! मै इस शहर में पागलों और चूतियों की तरह चक्कर काटता फिर रहा हूँ, अगर यह एक हकीकत है, तो विश्वास कीजिए, अपने इस चूतियापे को सबसे ज्यादा गहराई से मैं खुद देखता हूँ।....देखता हूँ और महसूस करता हूँ।"

अहंकार से आलोकित होने की सी उत्तेजना में वह, पीछे हटकर, दीवार के सहारे टिक गया और निचले होंठ को ऊपर चढ़ाकर, कुछ ऐसी मुद्रा में बैठ गया, जैसे बात को समाप्त कर चुका हो।

"रुको मत, कहते जाओ....इसी मकसद से मै तुम्हे इस एकांत मे ले आया करता हूँ, दोस्त! तुम जब मफलर लपेटे हुए घूमते हो सड़को पर और तुम्हारी आँखों में, तुम्हारे चेहरे पर एक बेचैनी और बदहवासी होती है, और मुझे यह कहने की इजाजत दो कि हिंसा भी....तो यही लगता है कि आखिर किसी-न-किसी एक दिन या तुम हत्या करोगे और या आत्महत्या।"

"आपको मै बता नही सकता, कामरेड, कि मेरी सारी तकलीफों की जड यही है कि मैं हत्या या आत्महत्या के 'टेंशन' मे जरूर घिरा हूँ और इससे कम में मुझे अपनी मुक्ति दिखती नही है....लेकिन भीतर के उबलते लावे की तह मे कहीं एक नामालूम तरीके से जगह बनाता हुसा-सा कोई सोता है, जो मेरे एकांत में बहता है, तो मुझे उसकी आवाज़-सी सुनाई देती है। कुछ अजीब-सी कशमकश है। मुझे लगता है कि सिर्फ मेरे मानसिक ही नहीं, बल्कि शारीरिक ढाँचे मे बड़ी तेजी से रद्दोबदल हो रही है

और यह रद्दोबदल मेरे लिये कुछ इतनी अजनबी है कि मेरे जेहन में इसकी पूरी शक्ल को देख लेने की छटपटाहट है। और 'ट्रेजेडी' मेरी यह है कि मैं खुद भी गहराई से यह अनुभव करने लगा हूँ कि यह रास्ता जिन्दगी की तरफ ही जाता है, मौत की तरफ नहीं।....और मुझमे इतना सब्र नहीं कि मैं सिर्फ इस बात के लिये दस-बीस-पच्चीस सालों की ठंडी जिन्दगी जीने का फैसला लूं, ताकि अपने-आपको इस बात का यकीन दिला सकूं कि मैं सच्चाई पर था।....जबकि मुझे लगता है कि यह फैसला तुरंत भी हो सकता है। इसमें जोखिम ज्यादा है, लेकिन मुक्ति भी उतनी ही बड़ी। जीने की हविश मुझमे कहीं जरूर होगी, जिसे फिलहाल शायद, मैं ठीक से देख नहीं पा रहा हूँ, लेकिन मौत अपने-आप में इतनी पाबंद है कि यह आपको अपनी मर्जी का वक्त नही दे सकती।....और सूरज भाई, गलत वक्त पर होने वाली मौत गलत ढंग से जी गई जिन्दगी से बेहतर ही होती होगी। कम-से-कम मेरी राय मे। यह शायद, उस तरह का अंतिम फैसला लेने का सही वक्त नहीं है और मेरी उम्र सिर्फ तीस साल है।....लेकिन तकलीफ सिर्फ हत्या या आत्महत्या करने या न करने के असमंजस की ही नहीं है। तकलीफ मेरी यह है कि कम जोखिम का मेरे लिये कोई रास्ता नहीं है! प्रतिहिंसा कितनी भयानक चीज होती है, मैंने अभी इस बात की सिर्फ शुरुआत की है।....और महसूस करता हूँ कि यह एक ऐसी आग है, जो अगर आपके भीतर भड़क गई, तो आपका सबसे बुरा वक्त वह होता है, जब न आप इसे इस्तेमाल कर सकते हैं और न बर्दाश्त। इसे सहने का सिर्फ एक ही रास्ता है, आत्महत्या! फिर चाहे आप यह काम चाकू से करें या सिर्फ उस घृणा और पस्ती और विषाद से, जो आपको आपके ही भीतर धीरे-धीरे खत्म करता रहता है। यह असह्य विषाद भूसी की आग की तरह राख करता है। मुझे जिंदा रहने की यह तरकीब, जिसमें जोखिम की डर से आप उस चूतिये मूस की तरह भागते फिरते है, जिसे बिल्ली थोड़ी देर के लिये रिहा कर देती है, ताकि वह अपने जिंदा रह सकने की बदहवास कोशिशों से बिल्ली को और ज्यादा मजा दे सके—नहीं, सूरज भाई, जिंदा

रहने की यह दर्दनाक कोशिश मुझे निहायत अमानवीय लगती है। मेरे भीतर जो प्रतिहिंसा और घृणा भर गई है, मैं इसे अपने खून में जज़्ब कर लेने से बचना चाहता हूँ। अपने-आप से नफरत करने से बचना चाहता हूँ। मैं यह महसूस करता हूँ कि अपनी प्रतिहिंसा, अपनी घृणा और अपने प्रेम को कीचड़ की तरह अपने भीतर इकट्ठा करके जीना मेरे लिए मुश्किल है। आप कल्पना नहीं कर सकते, कामरेड, कि लगातार छै महीने किस तरह मैंने पागलपन का नाटक किया और सर्विस से मुक्ति पाई। 'सिर्फ' इन दो लाइनों के लिए कि 'मुझे लगता है, तुम्हारा फौजीपन हम दोनों के प्रेम को ले डूबेगा। तुम्हारे न रहने से मैं अपने-आपसे डरने लगती हूँ।'.... हुश...."

उसका चेहरा, उसने अनुभव किया, कुछ विकृत हो गया होगा। सावधानी बरतता हुआ बोला—"अब कभी मैं आपको उसके खत दिखाऊँगा। जो औरत सिर्फ चंद महीने पहले यह लिखती हो कि 'या तो मैं तुमसे शादी करूँगी और या आत्महत्या कर लूँगी'—वही औरत वेडिंग साड़ी की लकदक में डूबी आपको पहचानने से भी इन्कार कर जाए....जो औरत आपके साथ झील की मछलियों की तरह अपने शरीर के अंग-अंग से खेल चुकी हो, वही चेहरा इतना अजनबी बना ले कि जैसे आपके देखने मात्र से वह अपवित्र हो जायेगी....और जो औरत अपने होठों को आपके होठों पर रखकर कहती रही हो कि 'तुम तो मेरे देवता हो' वही जीभ को थूक में डुबोती हुई-सी आपको 'गुण्डा-बदमाश' कहे, तो यह सब किस तरह की तकलीफ होगी ? ये कहवाघरों, जनानखानों और चौराहों—होटलों पर मेरी बदहवासी, मेरे दुःख और मेरी यातनाओं को हड्डी की तरह चबाते और कुत्तों की तरह बखानते इस शहर के लोग।....ये मुझे कमीना और कातिल कहने वाले चोट्टे मुझे यह समझाने और अहसास कराने की कोशिश करेंगे कि मैं गलत आदमी हूँ ?....जरा आप कल्पना करें उस लानत-भरी जिन्दगी की, जिसमें आपको धोखा देने वाली औरत बिल्ली की सी शक्ल लिये हुए आपकी याददाश्त में घूमती रहे और आपका मूस की

तरह का जीना देखती रहे। आप रात के सन्नाटे में रोते हों और यह अहसास आपको दबोचे रहे कि सारी दुनिया आपको चूतिया समझती है।...."

शेखर का गला भर्रा गया और कोशिश करने पर भी वह आँखों में आँसुओं को उमड़ने से रोक नहीं पाया।

"मैं बहुत शर्मिंदा हूँ...."—कुछ शांत होने पर उसने कहा।

"अरे, यार, ऐसी कोई बात नहीं है। दरअसल जब अपनी तकलीफों की साझीदारी कहीं से नहीं मिलती, तब आदमी के पास इसके अलावा कोई रास्ता शायद, सचमुच बचता नहीं। लोगों के बीच में तुम्हारा चेहरा कितना सख्त रहता है और आँखें कितनी तीखी।....और अब इस वक्त तुम्हारा चेहरा मुहल्ले के छोकरों से पिटकर माँ के पास लौटे बच्चे-जैसा हो आया है। रुआँसा और निर्दोष। अकेलेपन में या साझीदार मिल जाने पर आदमी अपने कवच को उतार फेंकता है। यह सचमुच तमाशबीनों का शहर है। मेरे बारे में भी तुम्हें लोगों ने जो बातें बताई होंगी, एकतरफा होंगी। खाते-पीते के परिवार का होते हुए, मैं क्यों यह तंगदस्ती की जिंदगी जी रहा हूँ, लोगों को यह अजूबा लगता है और इस अजूबे का कोई निदान उनके हाथ कभी लगेगा नहीं। मेरे माता-पिता और रिश्तेदार ही नहीं, बहुत सारे आलतू-फालतू किस्म के लोगों को भी यह गलतफहमी है कि आखिर झख मार कर मैं अपनी उसी दुनियां मे लौटूंगा, जिसको मैंने ठुकरा दिया था। मेरे माँ-बाप और भाई-बहन इस नीचे वाली सड़क पर से गुजर जाते है। इस ओर देखने से बचना चाहते हैं कि कहीं मैं खड़ा बीड़ी फूंकता दिख नहीं जाऊँ। और इसी डर में यार लोग नजर डाल बैठते है।....और वह क्षण देखने के ही लायक होता है। यह जो चूतिया और चूतियापा लफ्जों को मैं बहुत ज्यादा इस्तेमाल कर बैठता हूँ—तुम्हारे साथ भी कर रहा था—ये मेरे माँ-बाप और भाई-बहनों की आँखों पर से मेरी ओर थूक की तरह उछाले गये शब्द हैं। तुम सामंती समाज की बात को सिर्फ मेरी सैद्धान्तिक बौखलाहट के रूप में देखने की कोशिश करते हो,

लेकिन मैं तुम्हे फिर वताना चाहता हूँ कि यह वहुत क्रूर और वेहया होता
है। और निहायत कायर। मेरी माँ तक मे यह हिम्मत नहीं है कि वह मेरे
बाप और भाइयों से कह सके कि मेरे लिये उन लोगां के अहंकार को
बर्दाश्त करना चूतियापा नही, इंसानियत है। मै जिन्दगी को अपने ही
तरीके से जीना चाहता हूँ, तो जनाव, इसमें आपको क्या तकलीफ है ?
कामरेड, जो हमारे समाज मे लडके-लडकी अथवा स्त्री-पुरुषो के प्रेम को
लेकर, तरह-तरह के चूतियापे से भरे काण्ड होते रहते है, इसकी तह में
हमारी यही लिजलिजी पारिवारिकता है। यह न निम्न वर्ग में इतनी है,
न उच्च वर्ग मे—यह सिर्फ सुसरे मध्यमार्गियों में है। तुम इतने दिनों से
बदहवास फिर रहे हो। मै जानता हूँ, तुम एक वार मीना को सामने पाना
चाहते हो और उससे अपने सवालो का, अपनी तकलीफों का जवाव पाना
चाहते हो। शायद, यह चाहते हो कि एक बार वह इंतजार न कर सकने
या फैसला वदल लेने की अपनी गलती के लिए तुम्हारे आगे अपनी
शर्मिंदगी जाहिर करे और माफी माँगे। तुम अब भी अपनी तकलीफों में
मीना की भागीदारी के अहसास को पाना चाहते हो। तुम, शायद, उसके
मुँह से सुनना चाहते हो कि शादी तो उसने कर ली है, लेकिन फिर भी
जिन्दगी-भर वह तुम्हें भूल नही पायेगी और अपने एकांत के क्षणों में
तुम्हारे साथ बीते हुए दिनों को स्मरण करेगी।....लेकिन यह वात गाँठ
बाँध लो, मीना के लिये यह कभी सम्भव नहीं होगा। अगर वह अपनी
अंतरात्मा से चाहे, तब भी नहीं। शादी से पहले, शायद, होता। वर्ग-
चरित्र कोई हवाई चीज नहीं है। वह अब एक शादीशुदा अध्यापिका है।
वह ज्यादा-से-ज्यादा इस शहर से अपना और अपने पति का 'ट्रासफर'
करवा लेना चाहेगी। मेरे साथ, तुम ठीक कह रहे थे, इस तरह की समस्या
नहीं थी। लक्ष्मी देखने मे सुन्दर, व्यवहार में मधुर और आकर्षक जरूर
थी, लेकिन उसके पास इस तरह की हवाई और लिजलिजी भाषा नही थी,
जिसे ये 'सो कॉल्ड' भले परिवार की लड़कियाँ बोलती हैं। सिर्फ अपनी
जबान के चिपचिपेपन मे से, अपने अस्तित्व की गहराइयों मे से नही।....

ग्रौर तुम भी जानते होगे, कामरेड, कि ग्रादमी की जवान ग्रौर उसके दिमाग को वरगलाना बहुत ग्रासान है।....जहाँ तक ग्रपनी लक्ष्मी का सवाल है, उसके फैसले में निहायत सादगी थी—किसी तरह की धूर्त्तता नहीं।"

"तव, ग्राप मेरी तकलीफों का सही ग्रंदाजा कभी लगा नहीं पाएँगे। धूर्तता कितनी तकलीफदेह होती है—इसे जानना ग्रासान नहीं होता...."

"मैं शायद, इसे तुमसे वेहतर जानता हूँ। तुम प्रेमिका की धूर्त्तता के शिकार हो, कामरेड, तो यहाँ पूरे खानदान को धूर्त्तता के शिकार हैं। शायद, मैं इतना जिद्दी नहीं वन जाता, ग्रगर मेरे परिवार के लोगों ने मुझको मूर्ख ग्रौर नाकारा समझकर, तटस्थ हो जाने की धूर्त्तता मेरे साथ नही वरती होती। लेकिन मैं तुमसे एक वात में सहमत नहीं हूँ ग्रौर यह वात जोर देकर कहना चाहता हूँ कि तुम्हे जो कोई रास्ता नहीं सूझ रहा है, इसकी एक वजह ग्रपनी तकलीफों को सिर्फ़ ग्रपने चश्मे के इर्द-गिर्द टोहते रहना भी है। प्रेम ग्रौर स्त्री-पुरुषों के संवंधों को ठोस ग्रार्थिक धरातल ग्रौर वर्गचरित्र की कसौटी पर न देखकर, निहायत तिलस्मी ग्रौर ऐंद्रजालिक किस्म की भावुकताग्रों में देखने का यही नतीजा होता है कि ग्रादमी को हत्या या ग्रात्म-हत्या के फितूर दवोचने लगते है। हमारे समाज में स्त्री या पुरुष, जो भी धूर्तता वरतता है, वह उसका वर्ग-चरित्र है ग्रौर इसके पीछे—निहायत नामालूम ढँग से ही सही—उसकी ग्रार्थिक धारणाएँ भी काम करती हैं।"

"मै कोई वेकार नहीं था....वेपढ़ा नहीं था। सीधे 'कमीशन' में चुनकर गया था। कदाचित मैं वेकार ग्रौर वेपढ़ा होता, तो मुझे उसके फैसले से इतनी तकलीफ नहीं पहुँचती। मैं यह मानकर चल सकता था कि सुरक्षित भविष्य का चुनाव क़िसी भी ग्रौरत की स्वाभाविक कमजोरी हो सकती है।"

"तुम फिर गलत समझ रहे हो, चूक रहे हो, कामरेड! गलत ग्रौर लम्बी ग्रार्थिक रूढ़ियाँ जातिवाद की सीढ़ियों पर होते हुए भी ग्रागे वढ़ती

है। तुम एक योग्य अफसर हो सकते थे, लेकिन कान्यकुब्ज होने की योग्यता तुम कहाँ से लाते ?"

"मीना कोई अपढ़ नहीं थी। यह बात वह पहले भी सोच सकती थी। मामी सिर्फ उन्हीं के कहने पर लौट आया मैं।"

"खूबसूरत और कल्पनाशील पुरुष की संगति में औरतें अपने-आपको सावधान नहीं रख पाती हैं।...लेकिन जब समय और जगह का फासला उन्हें मिल जाता है, तब स्थिति बदल जाती है।...और सही बात तो यह है कि हमारी सामाजिक रूढ़ियों ने स्त्री की स्वतंत्र सत्ता को पनपने ही नहीं दिया है।...वे सुरक्षाजीवी होती-होती 'कनिंग' तक हो जाती हैं।"

"यह बात आपको इस शहर के बारे में नहीं कहनी चाहिए। अपनी फैशनपरस्ती और घूमने-फिरने की आजादी में इस शहर की लड़कियाँ दिल्ली के भी कान काटती हैं। अभी जब मैं शबनम स्टोर्स में टूथपेस्ट वगैरह खरीद रहा था—चेयरमैन तिलक बाबू की हिप्पी फैशन की मुरीद लडकियाँ मुझ पर फब्तियाँ कस रही थीं। वह जो काफी लम्बी अफलातून-सी है, सीटी बजाने लगी थी। लड़कियों को छोड़िये, अध्यापिकायें भी। आपने उन तीन-चार अध्यापिकाओं की बातचीत और ठहाकों को कभी सुना है, जो अक्सर यहाँ से गुजरती हैं ? आज सुबह-सुबह वो मम्मी के पास पहुँच गई थी और इसीलिये मैं चुपचाप बाहर खिसक आया और सुबह से अभी तक वापस नही आया हूँ।"

"अरे तुम मिस पाल वगैरह की बात कर रहे होगे ? तुम्हें यह मालूम नही है कि वह खुद भी इसी मैदान मे चोट खाई औरत है। वैसे, कामरेड वह सिर्फ दिखने में ही नहो, बातचीत और व्यवहार मे भी बहुत खूबसूरत औरत है। मुझे यह बात कह लेने दो कि स्वतंत्रता जिसे कहते हैं, उसकी चेतना उस औरत में है। स्वतंत्रता का सीधा-सादा अर्थ होता है, आत्म-निर्भरता। सिर्फ आर्थिक मसलों मे ही नहीं, अपने जाती फैसलों में भी। मैंने अपनी जिन्दगी के चंद साल मजदूर बस्तियों मे भी गुजारे है और मजदूर औरतों को अपने फैसले खुद लेते देखा है। इस शहर की चंद बोल्ड

लड़कियाँ शादी से पहले मिली हुई छूट को इस्तेमाल करती हैं, इसीलिये इनकी आजादखयाली में असली आवाँगार्दो वाली गहराई नहीं है। औरतों को फैशनपरश्ती और आवारागर्दी की छूट देना उन्हें स्वतंत्रता देना नहीं है। इस तरह की छूट देना—यह उन्हें और कमजोर करना है। मैं समझता हूँ, एक चाय और चल सकती है।....बाहर इस भरी दोपहरी में भी कितना कोहरा है...."

"इस वक्त आप अगर बाहर निकलें, भाई साहब, तो आपको कोहरे में डूबते ही कविता में डूबने का सा मज़ा आ जाएगा। मैं अभी दूर-दूर तक बियाबान में घूमता रहा था और अपने पर से गुजरता कोहरा मुझे लग रहा था, जैसे किसी नंगे आदमी को ढँकने की दयानत बरत रहा है।"

"वाह, कामरेड, तुमने हमें 'भाई साहब' कहकर कत्ल ही तो कर डाला !....अरे, तुम्हारी कविता का प्रूफ़ दिखाना था। उस दिन तो तुम एकाएक खरगोश की जैसी उछाल लगाकर गायब हो गये। मैं रात-भर तुम्हारे ही बारे में सोचता रहा। लिखने-पढ़ने में अगर तुम अपने-आपको लगाने की कोशिश करो, तो तुम्हारे चरित्र और स्वभाव में लेखक होने की गुंजाइश बहुत है। चलो, नीचे प्रेस में चलते है।"

शेखर चुप ही रहा। कामरेड सूरज उसकी कविता का प्रूफ ढूंढने की की कोशिश मे लगे हुए, कहते रहे—"मैं लिख नहीं सकता। कोशिश की थी। हमेशा यही लगा, लेखक होने के लिये जो भीतरी आर्द्रता चाहिये, मुझमें नहीं है।....लेकिन पढ़ा बहुत है। परिवार से कटे जीवन का, बस, यही एक सदुपयोग हुआ है। 'जीनियस' चाहे वह साहित्य, कला और संगीत के क्षेत्र का हो या पॉलिटिक्स और लड़ाई के मैदान का—उसकी जीवनगाथा पढ़ना मेरी 'हॉबी' ही नहीं, मेरे जीने का हिस्सा बन गया है। ऐसे लोगों की जिन्दगी में, उनके संघर्ष में और उनके 'एचीवमेन्ट' में एक खास बात अलग से दिख जाती है। उनकी जिंदगी जैसे किसी अदृश्य शक्ति

के हाथों घटित होती है। उसमें सामान्य आदमी का 'चल मेरे घोड़े टिक्-टिक्' वाला सिलसिला नही होता। मुझे इनकी तह में उनके 'डीप इमोशंस' दिखाई देते है। ऐसे लोग किसी हद तक 'डिटरमिंड' होते है कि जैसे 'साइक्लोन' आता है और उसके पीछे लौटने की कोई गुंजाइश नही होती ....मै, शायद, उलझ जाता हूं कि तुमसे मै आखिर कहना क्या चाहता हूं। सिर्फ इतना ही कि तुम्हारे भीतर भी मुझे इमोशंस और सेंसिबिलिटी—दोनो का एहसास होता है। तुम्हारे सारे विक्षिप्त और आक्रामक दिखते हुए रवैये के बावजूद। तुम, शायद, मेरी इस बात पर हँसना चाहोगे कि तुम्हें ऑडोमास और टूथपेस्ट खरीद कर ले आते देखने की बात मुझे 'हांट' करती रही है।....अरे हां, यार, तुमसे यह पूछना तो भूल ही गया कि मियां सिद्दीकी ने तुम्हे क्यों बुला लिया था? सरदार बता रहा था कि कल तुम सड़क पर जा रहे थे कि चौकी के बाहर खड़े-खड़े मियां सिद्दीकी ने तुम्हे बुला लिया था। प्रोफेसर तिवारी ने कोई रपट-वपट तो नही लिखाई है? हालांकि मै नही समझता कि इस तरह की नासमझी वो करेगे। सिद्दीकी क्या कुछ सख्ती से पेश आया था?"

"नही, ऐसी कोई बात नही है। सिद्दीकी, आप भी जानते होंगे, काफी बातूनी किस्म के आदमी है। सिर्फ कुछ नसीहत देने के 'मूड' मे थे और 'अवाम के जनरल कमेंट्स' का हवाला दे रहे थे। उन्हे यह भी मालूम है कि बड़े भैया झांसी मे डी० वाई० एस० पी० है।"

"तुम्हे यह भी बता देना चाहिए था कि तुम्हारा यह दूसरा बड़ा भाई भी कोई मामूली हस्ती नही है। खुद का अखबार निकालता है और 'ब्लिट्ज' जैसे हंगामेबाज अखबार से भी उसका ताल्लुक है। यार, तुम्हारी कविता की 'गैली' तो ये रखी हुई है, 'प्रूफ' भी उठवाया था, मिल नहीं रहा है। हरीवल्लभ तीन-चार दिन से आया नहीं है। आधा मैटर कम्पोज ही नहीं हुआ अखबार का...."

"रहने दीजिए। मै अब महसूस कर रहा हूं कि कविता छपवाने और टूथपेस्ट खरीदने में कोई फर्क नहीं है। ये चीजें मेरी मौजूदा मनःस्थिति

में एक फालतू किस्म का अंतराल पैदा करती है। कभी-कभी कितनी असंगत बातों में आदमी उलझ जाता है। मुझे निहायत अप्रासंगिक तौर पर यह याद आ रहा है कि हमारे कैम्प में एक बार दिल्ली से संगीतकारों की एक टोली सिपाहियों के मनोरंजन के लिए आई थी। सितार-वादक अपने हुनर का अच्छा-खासा मर्मज्ञ था, लेकिन जाने क्यों जब गत अपनी पूरी उठान पर थी, उसने मिजराब बदलने के लिए हाथ रोक दिया। उसे इसकी जरूरत आ पड़ी होगी, मगर मुझे एक नामालूम-सी कोफ्त हुई थी। अब इस वक्त मुझे इस बात का अहसास हो रहा है कि हत्या या आत्म-हत्या के द्वन्द्व में होने की बात करने वाले व्यक्ति के लिए कविता लिखना या टूथपेस्ट खरीदना अपनी लय को खुद तोड़ना है।"

कामरेड सूरज के चेहरे पर रेखायें खिच गई। उसने कुछ क्षण आँखें गड़ा कर देखा और एक अवसादग्रस्त मुस्कुराहट, उसे लगा, कामरेड के पूरे जिस्म में कौंध कर रह गई है।

"मैं, भाई साहब, धीरे-धीरे एक मायावी संसार का आदी होता गया हूँ। ओकवुड काटेज से नीचे की ओर उतरता हूँ, तो लगता है, जैसे 'रोपवे' इस्तेमाल कर रहा हूँ। दरअसल मेरे फैसले स्थगित होते जाने की वजह, शायद सिर्फ़ यही है कि मुझे अपने भीतर एकाएक कुछ ऐसा अजनबीपन दिखने लगा है, जिससे मैं खुद परिचित नही हूँ। जैसे कोई शीशा 'फ्रेम' में कसे-कसे ही तड़क जाए—मेरे भीतर कोई चीज बिजली की सी कौंध के साथ चटकी है और मैं अपनी ही हैरत को सँभाल नहीं पा रहा हूँ..."

"वाह, क्या जानदार भाषा तुमने बोली है, प्यारे! मै तुम्हे सलाह दूँगा कि तुम कविताओं में वक्त जाया न करके, 'फिक्शन' की तरफ ही अपना पूरा ध्यान लगाओ। समय भी। फौज की नौकरी में जा चुकने के बाद, जो तुम्हारी जिन्दगी में एकाएक यह तूफान आया है, इसे इस तरह लेने की कोशिश करो कि नियति तुम्हें एक ऊँचा लेखक बनाना चाहती है। तुम, शायद, जानते होगे हिन्दी के मशहूर लेखक कैप्टन अज्ञेय भी फौज में रह चुके थे!"

"मैं सब जानता और समझता हूँ, बड़े भाई ! आप मुझे बताने के चक्कर में लग गये हैं। यह एक अच्छा रोजगार पाने फ़ालतू वक्त के लिए आपको मिल गया है, लेकिन एक चीज आप तय समझिये कि मैं न अपने 'इमोशंस' के प्रति लाचार मैं हूँ, न अपने निर्णय से। मुझे सिर्फ फाँसी की सजा पाये हुए कैदी का सा थोड़ा वक्त अपने लिये यहाँ जीना और बिताना है, ताकि तसल्ली के साथ विदा ले सकूँ। देखिये, फिर एक अप्रासंगिक बात दिमाग में आ गई है। मम्मी, यानी श्रीमती मैठाणी, एक दिन कह रही थी 'इस संसार में आने के बाद हमेशा विदा लेने के 'मूड' में रहना चाहिए। खास तौर पर भुक्त-भोगी औरत को। इसी में मुक्ति है।' यह बात सिर्फ मम्मी पर ही नहीं, ऐसे हरेक आदमी पर लागू हो सकती है, जो मिसाल के तौर पर 'चल मेरे घोड़े टिक्-टिक्' वाली जिन्दगी में ऊब महसूस करता हो।"

"इसका मतलब है, वह बुढिया बहुत चमत्कारी औरत है। खैर, जिद्दी औरत के रूप में तो उसकी साख पूरे शहर में रही है। मैं ज्यादा नहीं जानता। मेरा कोई साबका नहीं पड़ा। कभी तुम्हारे साथ जाऊँगा। रू-बरू बातें करूँगा। बिना खुद बातें किये मैं किसी भी आदमी या औरत के बारे में कोई धारणा नहीं बनाता। चलो, वापस चलें ऊपर। अब तुम्हारी रस्सा तुड़ाकर भागने वाली उतावली कुछ 'नॉर्मल' हो गई दिखती है।.... लेकिन वो जो तुम बता रहे थे कि सुबह-सुबह फोर सिस्टर्स मिसेज मैठाणी के पास जा पहुँची थी....इसका मतलब है, वो तुम्हारे मामले में जरूरत से कुछ ज्यादा ही दिलचस्पी ले रही है। शहर में तुमने जो माहौल बना दिया है, उसमें किसी का भी मिसेज मैठाणी के पास जाना कुछ माने रखता है।"

"मेरा ख्याल तो यही है कि वो भी मम्मी को यही समझाने गई होंगी कि मुझ-जैसे चरित्रहीन, जंगली और खतरनाक आदमी को उन्हें अपने घर में ठहराना नहीं चाहिए। 'शॉपिंग' के लिये मम्मी निकलती रही हैं पिछले दिनों, तो न-जाने किन-किन औरत-मर्दों ने उनको यही सलाह देने को

कोशिश की है। कोशिशें क्या, बेवकूफी कहिये। यहाँ तक कि आपके एडीटर शिरोमणि भी गये थे और तमाचा खाते-खाते बचे थे। मम्मी, आफ़्टर ऑल, सचमुच एक जबर्दस्त औरत हैं और उसे समझाने की कोशिश मैं भी नहीं कर सकता।"

"वह बुढ़िया क्यों तुम पर आशिक है? उसके बारे में लोगों से यही सुना है कि जब मिसेज मैठाणी 'टीन एजर' थी, तभी एक कन्वर्टेड ईसाई मिस्टर जोजफ चंद्रशेखर से शादी कर ली थी, लेकिन गोत्र अपना छोड़ा नहीं। बयालीस की क्रांति-ब्रांति के चक्कर मे कम उम्र में ही चंद्रशेखर का देहांत हो गया, तो ईसाई समाज ने बहुत कोशिश की उन्हें अपनाने की, लेकिन मिसेज मैठाणी अपने खोल से बाहर कभी निकली नहीं। सुना था, इनके माता-पिता भी वापस ले जाने आये थे, तो सिर्फ़ इतना कहकर चुप लगा गईं कि 'आप लोगों के यहाँ से मेरी विदाई हो चुकी है।'...बहुत विचित्र औरत है। सुना है, आजादी के बाद के दिनों में कभी खुद नेहरू ने इन्हे बुलवाया था। क्रांतिकारियों की विधवाओं के अभिनन्दन वाले दिल्ली समारोह में, लेकिन यह बुढ़िया अपने ओकवुड काटेज से बाहर नहीं निकली। एक बार शारदा पंडित ने शहर में चंद्रशेखर का 'स्टेच्यू' लगाने की योजना बनायी थी, लेकिन वह सब भी इस बुढ़िया ने नहीं होने दिया। खैर, यह तय है कि जो लोग 'एबनार्मल' किस्म के निर्णय लेते है, उनके पीछे इतिहास होता है। इस नाजुक अवसर पर जो जोखिम बुढ़िया ने तुम्हें अपने साथ रखकर उठाया है, यह सामान्य नहीं ही है।"—कामरेड सूरज ने स्टोव ढूंढ़ते ढूंढ़ते ही बात पूरी की और स्टोव जलाने के बाद, शेखर की ओर ताकने लगे।

"मम्मी के बारे मे फिर कभी विस्तार से बातें करूंगा आपसे। आपको यह तो, शायद, पता होगा ही कि मैं अपनी पढ़ाई के दिनों में भी मम्मी के साथ रह चुका हूँ। 'पेइंग-गेस्ट' की शक्ल मे। अच्छा, सूरज भाई, मैं चलूं। मम्मी इंतजार करती होंगी।"

"कमाल हो, यार, पानी खौलने को रख चुका हूँ। अब तुम इस बात की

सनद तो दोगे नही, प्यारे, कि इस छोटे-से शहर मे इतना बड़ा दोस्त तुम्हे कोई दूसरा मिलेगा नही। रुको, यह कहने की कोई जरूरत नहीं है कि—'सूरज भाई, इस शहर मे आप ही पहले आदमी है'...अपन मकान को खाने की चीज समझते है, सुनने की नही। बाई द वे, तुमसे एक निहायत फिजूल बात पूछनी थी, जो हमेशा तुम्हारे चले जाने के बाद याद आती है और तुम्हारा इन्तजार बना रहता है।...हालांकि बहुत ही जाती यानी 'पर्सनल' किस्म की बात है। मैं खुद नहीं समझ पा रहा हूँ, कि पूछना ठीक भी होगा।"

"ऐसी कोई बात नही, जो आपको मै न बता सकूँ या कम-से-कम यह न कह सकूँ कि यह बात बता नही सकूँगा। बहुत कम लोग ऐसे होते है, जिनको लेकर यह निश्चिंतता मन में आ जाए कि इनके बारे मे लिया हुआ फैसला बदलना नही पड़ेगा....लेकिन यह शायद, अपने-आपको 'कंट्रा-डिक्ट' करना हो जाएगा, क्योंकि मीना को लेकर भी मै ऐसी ही गलतफहमी में था।...बहरहाल, आपसे नाराज न होने का फैसला बदलने का वक्त मिले, इतनी लम्बी जिन्दगी की उम्मीद न मै अपने-आपसे करता हूँ और न खुदा ताला से....आप मुझसे पूछना क्या चाहते थे ?"

"शेखर, प्यारे, अपन तो खालिस कामरेड है। निहायत रफ और बदजुबान। गंदी गालियाँ बकते हुए भी शर्म नही, सिर्फ तसल्ली महसूस होती है। लेकिन जो बात मैं तुमसे पूछना चाहता हूँ, मुझे सिर्फ़ शर्म ही नहीं, बल्कि तकलीफ भी महसूस हो रही है। मीना को लेकर तुम्हारे 'इमोशंस' को छूते हुए डर-सा लगता है। एक पल में तुम्हारा शांत और संतुलित दिखता हुआ चेहरा जैसे किसी शिकंजे मे जकड़ जाता है...."

"आप के साथ ऐसी बात अब नही, सूरज भाई! मै उन लोगों की बातों से बौखला उठता हूँ, जो मुझे मेरे चरित्रहीन, गलत और वहशी होने का अहसास इस तरह करना चाहते हैं, जैसे उनके हाथ अपने ऊँचे चरित्र और आदर्शो को प्रमाणित करने वाला जादुई चिराग लग गया हो। खैर, नही पूछेंगे अब आप, तो मेरे मन में बात बनी रह जाएगी...."

कामरेड चाय बना चुके थे। चीनी चलाकर, प्याली शेखर की ओर बढ़ाते हुए बोले—"अगर बात तुम्हें नागवार लगे, तो मुझे माफ़ कर देना। मैं पूछना....यानी जानना...."

शेखर ने देखा कि कामरेड का चेहरा काफ़ी गम्भीर हो आया है। बात कहीं अटक जा रही है और इस अंतराल को कामरेड चाय की चुस्कियाँ लेकर भरने की कोशिश कर रहे हैं।

"आप अब हिचकते रहे, तो मैं चाय नहीं पियूंगा।"—उसने प्याली को फर्श पर रख दिया।

"मैं जानना यह चाहता था, शेखर, कि मीना से तुम्हारा प्यार सिर्फ़ बातों तक ही सीमित था या कि बात काफी आगे बढ़ चुकी थी? आई मीन टु से, देयर वाज़ ए सेक्सुअल कान्टैक्ट बिट्वीन यू एण्ड मीना अर ऑन्ली...."

तेज गति से अपनी बात खत्म करके, कामरेड चाय की प्याली पर झुक गये।

शेखर को कामरेड का यह अजनबी-सा शर्मीलापन बहुत ही लुभावना लगा और उसे अनायास ही हँसी आ गई—"ओफ़्फोह, सूरज भाई, रफ़ और बेबाक आदमी होने का आप सिर्फ़ नाटक ही करते हैं। भीतर कहीं औरतों का सा शर्मीलापन भी आप में भरा हुआ है....हाँ, दूसरा, शायद, कोई पूछता, तो हो सकता है कि मैं झापड़ मार बैठता, लेकिन यह बात—आप इसे क्या समझेंगे, मैं कह नहीं सकता—खुद मम्मी भी मुझसे पूछ चुकी है और उनको भी मैं बता चुका हूँ कि एक बार यह नौबत भी आ चुकी थी कि शायद, 'एबार्शन' करवाना पड़े...."

"तब तुम हर्गिज-हर्गिज आत्महत्या नहीं करोगे!"—कामरेड के मुँह से यह बात एकाएक कुछ ऐसे निकली, जैसे सपने से चौंक कर उठ बैठे हों, लेकिन दूसरे ही क्षण उनकी कौंधती हुई आँखें बुझ-सी गईं—"लेकिन हत्या का इरादा तुम, शायद, आसानी से न बदल सको।"

शेखर सन्नाटे में आया हुआ, चुप रह गया।

"मुझे माफ करना, शेखर, मैं शायद, अपने अधिकार से बाहर की बात कर बैठा।"—कामरेड के चेहरे पर अवसाद उभर आया था

"मेरी चुप्पी का कारण यह नहीं है, सूरज भाई! मैं तो इस हैरत में हूँ कि ठीक वही बात आपने भी कैसे कह दी, जो इस बात को सुनने के बाद मम्मी ने कही थी।....हालांकि बहुत मजबूरी ढंग से ही मैंने मम्मी को बताया था। जैसे आप मुझसे पूछते हुए झिझक रहे थे, मैं यह मम्मी को बताते हुए शर्म और तकलीफ़ महसूस कर रहा था।....हैरत की बात यह भी है कि पूछने से पहले, लगभग आपकी ही तरह मम्मी ने भी खासी अच्छी भूमिका बांधी थी और कई बार 'मेरे बच्चे, मुझे ग़लत न समझना' कहते हुए बुढिया का चेहरा आपकी ही तरह संजीदा हो गया था। मम्मी के और आपके कहे हुए मे सिर्फ़ 'कन्टेन्ट' ही एक-सा नही—वाक्यों का 'कन्सट्रक्शन' तक लगभग एक-सा है।....शायद, जब 'इन्टेंशन' एक हो जाता है, भावना एक होती है, तब भाषा मे भी फर्क नही रह जाता। आपको ताज्जुब होगा, सूरज भाई, मम्मी ने भी आँखें बन्द करते हुए यही कहा था—'थैंक गॉड....मेरे बच्चे, तब तू सुसाइड कमिट नही करेगा।' हाँ, बाद वाला जो अंदेशा आपने कह दिया, मम्मी ने इसे कहा नही—लेकिन वह मम्मी के चेहरे पर उभर जरूर आया था।....सूरज भाई, आपको कसम है, यह रहस्य आपको बताना होगा कि आखिर एकाएक ऐसा आपने क्यों कहा? मम्मी से मै इस सिलसिले में आगे कोई बात कर नही सका।"

"शेखर, माफ करना, प्यारे! मै अब इस वक्त एकाएक कुछ थकान-सी महसूस करने लगा हूँ। 'मूड' भी कुछ इतना गम्भीर हो गया है कि बातें करने का उत्साह खत्म हो गया।....हालांकि बात तुमसे मैं बहुत ही 'नॉनसीरियस' किस्म की पूछ बैठा था। गनीमत है कि तुमने इसे 'नानसेंस' नही समझा।"—कामरेड सूरज की आँखों में अपना वार्तालाप समाप्त कर चुकने का सा इतमीनान दिखाई देने लगा, लेकिन शेखर अपने-आप मे कुछ इतना विस्मय और कौतूहल से भर गया था—और एक मद्धिम-सी मान-

सिक उत्तेजना से भी—कि वह प्रतीक्षा की मुद्रा में दीवार से टिक गया।

'माई, भिक्षा देना....'

जैसे किसी गहरे और निर्जन सन्नाटे में कोई पक्षी बोल उठे, खुली हुई खिड़की मे से किसी का करुण स्वर आकर, पूरे कमरे में फैल गया।

शेखर कुछ कहना चाहता था कि तभी नीचे से 'माई, भिक्षा देना' की आवाज दुबारा आई, और कामरेड सूरज चिहुँक कर उठ खड़े हुए। बोले—'यार, औरतों की जो दुर्दशा हमारे देश मे है, शायद ही कहीं हो। इन माइयों को भी इस बेकार और बेघरबार आदमी के अलावा कोई मिलता नहीं। हर हफ्ते, दूसरे हफ्ते पहुँचती है। मैं जरा इन्हे आटा डाल आऊँ। चाय अगर तुम एक प्याली और पीना चाहो...."

"अब नहीं। मम्मी मेरा इंतजार करती होंगी। इस वक्त इजाजत दीजिए।"—कहते हुए, शेखर बाहर निकल आया। एक उड़ती हुई-सी नजर उसने आँगन में खड़ी माई पर डाली और सड़क की तरफ बढ़ गया।

कोहरा अब भी पूर्ववत था और उसे लगा, बाहर निकलते ही, वह फिर अपनी पुरानी दुनिया में लौट आया है।

● ●

७

शहर के निचले छोर की लम्बी-सी बाजार के दायें-बायें मकानों की कई कतारें है। अधिकांश में, नीचे छोटी-छोटी दुकानें हैं और ऊपर लोग रहते हैं।

जहां पहले डॉक्टर दुबे की क्लीनिक हुआ करती थी, वहां अब बेकरी खुल गई है। ऊपर वाले हिस्से के लकड़ी के बरामदे में डॉ० एस० सी० दुबे, रजि० मेडिकल प्रैक्टिशनर की तख्ती तार के सहारे तिरछी लटकी है और कई अक्षरों की सफेदी उड़ चुकी है। बीते समय का कुछ ऐसा असर उस पर पड़ा है कि न जानने वाले को भी इस बात का अहसास हो सकता है कि यह किसी भूतपूर्व व्यक्ति का नामपट्ट होगा।

कोहली बेकरी की बगल वाली छोटी-सी सीढ़ी पर से शारदा पंडित और पार्वती बहन जी ऊपर पहुँचे, तब भुवनमोहिनी देवी टीन की चादर के टुकड़े पर बड़ियां फैला रही थी।

"अरे शारदा जी, आज सुबह-सुबह आप लोग यहाँ कैसे? बहन जी नमस्कार...."—मुड़ी हुई दरी को ठीक से फैलाते हुए भुवन मोहिनी देवी बोलीं—"बैठें...."

"हम लोग तो, आप भी जानती हैं, अपने स्वभाव से लाचार है। इस शहर के ज्यादातर लोग तो कुछ अंग्रेजों के असर और कुछ होटलों-सैलानियों की भीड़ के बीच अपने सामाजिक उसूलों की ओर से लापरवाह हो चुके है। हालांकि हम लोग इससे पहले नहीं आ सके, लेकिन चिंता प्रत्येक क्षण रही है। परसों ही मैं प्रोफेसर साहब के फ्लैट पर भी हो आया

था ग्रौर वहीं से मिसेज मैठाणी नाम की फितूरी ग्रौरत के पास भी चला गया ग्रौर समझाने की कोशिश की कि इस गुण्डा एलीमेंट को ग्रपने यहाँ पनाह मत दो।...लेकिन जनाब, ग्राज तक उसने किसी की सुनी है, जो ग्रब सुनेगी। खैर, मैं देख लूंगा दोनों को।...ग्रापने ये बड़ियाँ बहुत बेवक्त डाल दीं। देखिये, दस बजा चाहते हैं लेकिन ग्रभी तक इस शहर की नमी दूर नही हुई।" खादो की शेरवानी की ऊपरी जेब से 'रिस्टवॉच' निकाल-कर देखने के बाद, शारदा पंडित ने ग्रपनी ग्राँखें भुवनमोहिनी देवी के चेहरे पर गड़ा दीं—"ये पार्वती बहन जी तो ग्रापके दुःखों की कल्पना करके रो पड़ी थीं!"

ग्रवसाद, खिन्नता ग्रौर ग्लानि की ग्रनुभूतियाँ भुवनमोहिनी देवी के चेहरे पर लहरों की तरह उभरी ग्रौर डूब गईं। किंचित् विषाद्-भरी मुस्कुराहट के साथ, ग्रपने-ग्रापको संतुलित करती बोलीं—"शारदा जी, ग्रादमी को ग्रपना समय सहना ही पड़ता है। मैं ग्राप लोगो के लिये चाय बनाऊँ। ग्रब तो ग्रकेली पड़ गई हूँ...."

"ग्ररे, चाय-वाय कुछ नहीं। मैं पीकर चला हूँ ग्रौर बहन जी तो चाय पीती ही नही हैं। बयालिस के मूवमेंट के वक्त से सादा भोजन, उच्च विचार का संकल्प ले लिया था, खूब निभा रही है। इनके पास खादी की दो धोतियों से तीसरी धोती मैने ग्राज तक नहीं देखी। बस, हमसे यह सादा भोजन वाला नहीं निभता....कपड़ा तो खद्दर ही देखा, खद्दर ही सुना ग्रौर खद्दर ही पहना। ब्राह्मण तो व्यंजनप्रेमी होता ग्राया है।"

"सो तो ग्रापके स्वास्थ्य से ही दिख जाता है।" भुवनमोहिनी देवी ने कहा, तो शारदा पंडित ने ग्रनुभव किया कि मीना वाले प्रसंग के प्रति उनमे शायद, ग्रन्यमनस्कता का भाव है।

बोले—"स्वास्थ्य तो, खैर, बहन जी का भी बुरा नहीं है।...लेकिन श्रीमती दुबे, इस वक्त हम लोग यहाँ ग्रौपचारिक बातें करने नहीं ग्राये है। किसी भी तरह उस हरामजादे को शहर से बाहर फिकवाना है। मैंने प्रोफेसर तिवारी से भी बात की थी। उनके एक इशारे पर छात्रगण उसकी

हड्डी-पसली एक कर देते। वो भी टाल गये। मेरा ख्याल है, अगर एक बार आप श्रीमती सेठाणी से बातें करें और उन्हें बतायें कि आप जैसी स्वतन्त्रता सेनानी महिला को कितना अपमान बर्दाश्त करना पड़ रहा है, तो शायद, बात बन जाए। एक बार वह उस मोह से बाहर हो जाए, फिर मैं देखता हूं कि शहर में भील के अलावा उसे और कहां ठिकाना मिलता है।....मेरी, साहब, सारी जिंदगी स्वतन्त्रता-संग्राम के सिपाही की हैसियत से कट गई। यह हादसा मेरे लिये चुनौती है और स्वयं गांधी जी ने मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए कहा था, 'शारदा पंडित, अन्याय के विरुद्ध लड़ना, यही मानव-धर्म है।' अपनी आंखों के सामने समाज को इस तरह भ्रष्ट और निष्क्रिय होते देखना कि गुण्डा शिक्षक-जैसे पूज्य व्यक्ति का गला पकड़ ले, उन्हें पीटे और उनकी साध्वी पत्नी तथा एक प्रातःस्मरणीया स्वतंत्रता-लक्ष्मी की कन्या पर कुत्सित लांछन लगाये—यह हम सबके लिये डूब मरने की बात है। मेरा जो मस्तक अंग्रेजों के जुल्म के आगे नहीं भुका..."

कहते-कहते, शारदा पंडित का गला भर्रा गया और 'क्षमा कीजिएगा, आपको दुःखी कर रहा हूं, लेकिन दुःख में ही सच्चे हितैषियों की परख होती है।' कहते हुए, अपनी आंखें पोंछने लगे।

"इनका स्वभाव ही ऐसा बन गया है, बहन जी! लाख इन्हें सम-भाती हूं कि आजादी की एक लम्बी लड़ाई आपने लड़ी अब आजादी के बाद की लड़ाई दूसरों को लड़ने दीजिये....लेकिन स्वदेश-चिंता इनसे नहीं छूटती।...."

"पार्वती बहन, चातक बूढ़ा भी हो जाये, तो स्वाती का जल ही पीता है। स्वदेश और स्वसमाज के प्रति अपने कर्त्तव्य और बलिदान को देने की अवधि सालों से नहीं, उम्र से नहीं, आदमी की साँसों से नापी जाती है। जब तक सांस है, तब तक संघर्ष है। जिस समाज में लोग आदर्शों के लिये संघर्ष नहीं कर सकते, वह मृत हो जाता है।"—शारदा पंडित के स्वर में तेजस्विता आ गई थी, लेकिन भुवनमोहिनी देवी के इस कथन से उनको गहरी निराशा और खीझ अनुभव हुई कि 'कुछ प्रसंग ऐसे होते हैं;

जिनमें संघर्ष न करना ही बेहतर होता है, शारदा जी ! बढ़ती हुई गर्द को उछालने से वह अपनी ही आँखों में पड़ती है। मुझे अब इस अप्रिय प्रसंग में कोई रुचि नहीं रही। वो दोनों भी जल्दी ही छुट्टी पर चले जाएँगे। मैंने तो बम्बई जाने की सलाह दी थी, लेकिन प्रोफेसर सहारनपुर जाना चाहते हैं। वहाँ उनके बड़े भाई हैं। मैं सुरेन्द्र के पत्र की प्रतीक्षा कर रही हूँ....उसी के लिये ये बड़ियाँ भी डाली हैं। बरसों यहाँ रहते-रहते हम लोग पहाड़ी ही हो गये।"

"यही तो मैं कहने आया हूँ, बहन जी, कि अपनी मुसीबत में आप अपने को अकेला न समझेंगी। बेचारे सुरेन्द्र भैया अब वहाँ बम्बई से—वो भी अपनी नयी-नयी नौकरी में बाधा डालकर—कहाँ इतनी दूर अपनी बहन की इज्जत-हतकी की लड़ाई लड़ने आवेंगे ? अब यह सब हम लोगों का फर्ज है।"

"मैं आप लोगों की हमदर्दी को हमेशा अपने साथ महसूस करती हूँ। देखिये, इसी के सहारे पड़ी हूँ—बाकी सारे लोग बिखर गये। यहाँ से चल देना, मेरे लिये डॉक्टर साहब को अंतिम रूप से छोड़ जाना होगा। इस घर में उनकी आत्मा बसी है।"

भुवनमोहिनी देवी के बोलने में कहीं मीना वाले प्रसंग को उठाने की इच्छा न देखकर, शारदा पंडित को सिर्फ खीझ हो रही थी।

अपनी खिन्नता से उबरने की कोशिश करते हुए, शारदा पंडित बोले—"जब लोग आदर्शों के प्रति उदासीन होने लगते हैं, तो यह व्यक्ति नहीं राष्ट्र की क्षति है। मैं कहूँगा, मानव जाति की क्षति है। इस शहर में आखिर आपका भी गौरवपूर्ण अतीत बीता है, जो स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास अमर पृष्ठों में अंकित रहेगा...."

"श्रेय इतना ही देना-लेना चाहिये, शारदा जी, जितना सँभल जाए। वह वक्त ही ऐसा था। गाँधी-पटेल-नेहरू-सुभाष-जैसे महान् नेताओं की एक पुकार पर मुझ-जैसी लाखों औरतें आन्दोलन में हिस्सा लेती थीं और अपने-आपको धन्य समझती थीं। आप एक दिन मेरे स्वतंत्रता-संग्राम में

हिस्सा लेने के दिनों की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाये पूछना चाहते थे। शायद, 'स्वदेश' मे छापना भी चाहते थे। आज दो घटनाएँ बता रही हूँ, लेकिन छापियेगा नही।....एक बार हम लोग 'सरकिट-हाउस' के घेराव पर गई थी—लगभग तीस-पैंतीस औरतें होंगी और कुछ बच्चे। पुरुष साथ नही लिये गये थे। आपको तो, शायद, इस घटना की कुछ स्मृति भी हो? तो मैं कह रही थी कि अंग्रेज कमिश्नर जिस तरह बाहर आया, जिस तरह उसने गोरे पुलिस वालों को एक तरफ हटने का आदेश दिया और फिर जिस सभ्यता और विनम्रता के साथ उसने कहा कि 'मैं आप-जैसी आदर्श महिलाओं की इतनी इज्जत करता हूँ कि आप लोगों के सामने अपने-आपको तुच्छ समझता हूँ। लेकिन फर्ज से लाचार हूँ। मुझे आप लोगों को गिरफ़्तार करना पड़ेगा, लेकिन कोई पुलिस वाला आप लोगों के नजदीक नहीं जायेगा। आप लोग खुद गिरफ्तारी देंगी।'....यकीन मानिये, वैसी प्रसन्नता जीवन मे न कभी पहले और न फिर बाद में—कभी मिली ही नहीं और एक बार यह तय कर लेने के बाद कि अपना मंगलसूत्र कांग्रेस को चंदे में दे दूँगी, उसे बाद मे मैंने छिपा लिया था, जैसे उसे कोई चुरा ले जाएगा और अभी पिछले महीने मीना की शादी पर उसे दे दिया—यह ग्लानि भी अब, शायद, कभी नहीं जाएगी। अपनी ऊँचाई और नीचाइयो का मानव-मन सिर्फ खुद ही साक्षी होता है। अच्छा, आप लोगों का बहुत वक्त लिया मैंने...."

"मैं समझ रहा हूँ, बहन जी, आप इस कटु प्रसंग को टालना चाहती है, लेकिन आपके गौरवपूर्ण अतीत को देखते हुए, मैं आपसे चंद बातें अपनी तसल्ली के लिए पूछना चाहता हूँ।....आपके मन मे अपनी बेटी, अपने जामाता और अपने भी इस भीषण सामाजिक अपमान के प्रति कोई भावना नहीं? उस नर-पिशाच के लिए आपके भीतर इतनी उदासीनता का आखिर कोई तो कारण होगा?"

"कारण तो है। इसे मैं बता भी दूँ। इस सब मे मीना की गलती भी कुछ कम नही। वह लड़का पहले भी उसके पास आया-जाया करता था

और मैं खुद समझती हूँ कि शायद, दोनों की कुछ इस तरह की 'अण्डर-स्टैंडिंग' भी बन गई हो कि शादी कर लेंगे। आप लोग जानते हैं, मेरे जीवन और विचारों पर गाँधी जी के पाँवों की आहट तक का असर पड़ता था। मैं तो अगर वह हरिजन से भी शादी करती, तो भी आशीर्वाद देती.... लेकिन बीच में एक बार मथुरा वाले देवर जी का परिवार आया था और सुरेन्द्र भी अपनी वहू के साथ आया हुआ था। मेरा अनुमान है, उन लोगों ने उसे कुछ समझाने की कोशिश की थी। अब मैं नहीं कह सकती कि उन लोगों के कहने का कुछ असर पड़ा, या मीना का ही मन कुछ बदल गया— इसके बाद रात देर तक चिट्ठियाँ लिखती वह दिखाई नहीं दी। कमरा उसका वह अलग है, लेकिन रोशनी इस कमी मे भी झाँकती है।....मैं नहीं जानती उस लड़के का क्या इरादा है, उसका चरित्र क्या है....लेकिन शारदा जी, मैं भी लड़की रही हूँ। मैंने भी उम्र देखी है। इतना कह सकती हूँ कि लड़कियों को भी कुछ एहतियात बरतना चाहिए। बात कभी इतनी दूर तक नही जानी चाहिए कि किसी के लिए जीवन-मरण का प्रश्न बन जाए। दूसरे पक्ष का ध्यान न रखना ठीक नहीं होता।"

शारदा पण्डित अपनी अपेक्षाओं के बिल्कुल विपरीत स्थिति को सह नहीं पा रहे थे। उन्हें एकाएक लगा, जैसे सारे शरीर कुछ में लार-सी रिस रही है। चेहरा कुछ सख्त करते हुए बोले—"बात इतनी ही नही है। मैं बताकर आपको दुःखी नहीं करना चाहता था, लेकिन शर्मिंदा हूँ कि नौबत आ चुकी थी....हालाँकि मै जानता हूँ, यह महज एक आदर्श और गौरवपूर्ण परिवार की सुशील कन्या पर मिथ्या लांछन लगाना है....आपने ही कहीं कहा है, उसके बारे में आप कुछ नहीं जानतीं। वह कहता है कि आपकी बेटी और आपके जामाता की हत्या करने के बाद ही वह शहर छोड़ेगा....उसका कहना है कि एक वक्त 'अबार्शन' कराया जा चुका...."

भुवनमोहिनी देवी भीतर-भीतर बहुत आहत हुईं, लेकिन दूसरे ही क्षण उन्होंने अपने-आपको संतुलित कर लिया। किंचित् सख्त स्वर में बोलीं—"अच्छा, आप लोग अब चलें। फिर कभी आइएगा। मुझे कुछ

जरूरी काम करने हैं।...सिर्फ इतनी प्रार्थना करना चाहती हूँ, आपका जीवन और व्यक्तित्व, दोनों बहुत प्रेरक हैं लेकिन इस प्रसंग में अपने आदर्शों को अपने तक ही सीमित रखें, तो कृपा होगी। मैं बेहतर जानती हूँ कि इस प्रसंग को तूल देने में किसी का हित नहीं है। प्रोफेसर का भी नहीं...."

शारदा पंडित यह कल्पना करके कुछ सहम गये कि कहीं बुढ़िया यह न कह दे कि 'सिर्फ आपके सिवा' और उठ खड़े हुए—"चलिये, पार्वती बहन! विपत्ति में आदमी का विवेक धुँधला हो ही जाता है। उसे अपने-पराये की पहचान नहीं रहती। लगता है, श्रीमती दुबे बहुत आतंकित हो गई है। डर रही है कि कहीं वह सचमुच इनकी बेटी-जामाता की हत्या न कर दे।...अरे साहब, गोरखाराज थोड़े ही चल रहा है। मैं कल ही सी० एम० साहब को चिट्ठी लिखकर, वहां की पुलिस 'अथॉरिटीज' को हिदायत दे देने की सलाह देता हूँ। अच्छा, बहन जी, हम लोग चलें। आप फिक्र न करें, परमात्मा सब ठीक करेगा।"

सीढ़ियाँ उतरते-उतरते ही शारदा पंडित बोले, "लगता है, प्रोफेसर को भी इसी बुढ़िया ने सनकाया होगा। 'डिफेमेशन' और गुण्डागर्दी के लिए मैं पचास प्रत्यक्षदर्शी गवाह उसके पक्ष मे देने की तैयारी कर चुका था, लेकिन वह डरपोक बाँभन यह कहकर टाल गया कि 'इन सब बातों को ज्यादा तूल देना उचित नहीं है।' ये मास्टर किस्म के लोग स्वभाव से ही कुछ कायर होते है।"

"तुम कही बातों को जरूरत से ज्यादा तो नही बढ़ा रहे हो?"—पार्वती बहन ने दबी हुई-सी आवाज मे कहा, तो शारदा पडित की त्यौरी चढ़ गई। लाठी को पूरी ताकत से टिकाते हुए, बोले—"देखो, तुमको मैं आजादी से भी पहले के दिनों से यही समझाता चला आ रहा हूँ कि मेरे किसी काम मे मीन-मेख निकालना तुम्हे शोभा नहीं देता। औरतें सिर्फ

अपने आस-पास की चीजें देखती है, पुरुष गगनविहारी होता है। वह दूर-दूर तक के भविष्य को देखता है और अपना कर्त्तव्याकर्त्तव्य स्वयं तय करता है।....उधर फार्म की तरफ से अपने विपिन की कोई खबर नही आई ? अब तो गन्ने की कटाई हो चुकी होगी ?"

पार्वती बहन का माथा थोड़ा नीचे झुका हुआ देख, उन्होंने संतोष की साँस ली और यह कहते हुए, आगे बढ़ गये—"इस बार सोच रहा हूँ, विपिन के लिए कही लड़की देखी जाए। तुम भी ध्यान देते रहना।"

चुपचाप चलते दोनों बस स्टेशन वाली नुक्कड़ पर पहुँच गये, तो शारदा पडित बोले—"अच्छा, तुम आश्रम की ओर जाओ जब शाम को भेंट होगी। मैं जरा सामने पान लेता हुआ, सिद्दीकी के पास जाऊँगा और वही से प्रेस चला जाऊँगा। सम्पादकीय भी लिखना है और चेयरमैन साहब के अभिनन्दन की योजना का विवरण वगैरह भी छापना है। तुम शाल वाले ऑर्डर तैयार करवा लेना। सर्दी पूरी तरह आ चुकी है।"

● ●

८

पार्वती बहन के पास से अलग होकर, शारदा पंडित, कुछ देर यों ही छड़ी ठकठकाते टहलते रहे, जैसे अपने भीतर बिखरी चीजों को इकट्ठा कर रहे हों। अपने दृढ़संकल्पी होने की प्रतीति उन्हें सदैव ही रही है और बीते समय ने जितना, जो-कुछ उन्हे दिया है, उससे उनके दांत कुंद नहीं, तीखे ही हुए हैं। इस शहर में उनका पीपल के पुराने पेड़ की तरह एक महिमामंडित अस्तित्व है और यह सब इसी बात की कमाई है कि जिस कार्य को हाथ में लिया है, तो कर छोड़ा है।

एकाएक ही उनकी नजर ध्यानी पान भण्डार की तरफ पड़ी और लाठी को हवा मे उठाते हुए बोले "कहो भई, ध्यानी मास्टर, किधर ध्यान है ? इस वक्त यह सन्नाटा कैसा है दुकान में ?"

"जै हिन्द सरकार, पांव लागी। आप तो जानते ही है, पहाड़ के लोगों को दिन में सोने की आदत होती है और इस शहर को तो अब कुम्भकरन की नींद निकालनी है। अब तो बस, कहीं अप्रैल-आखिरी में इसकी नींद खुलेगी। लेकिन महाराज, यहाँ के लोगों की काहिली के लिये सिर्फ़ यह ठंडा मौसम ही जिम्मेदार नहीं है। मैं तो कहूँगा, सरकार, आपका अखबार भी है। एक अखबार बम्बई से 'ब्लिट्ज' भी निकलता है। क्या बात है साहब ! बड़े-बड़े सेठ-साहूकारों और मिनिस्टरों की टोंटी हिलाकर रख देता है। बड़े शहर की बड़ी बात है, बकरा हगेगा, तो ससुरा लेंडी ही तो निकालेगा....।"

"ध्यानी बाबू, आज लगातार मुहावरे हगे जा रहे हो, बात क्या है !

ब्लैकमेलर किस्म के अखबारों का और अपने 'स्वदेश' का मिलान क्यों करते हो ? 'स्वदेश' के पीछे स्वतंत्रता-संग्राम का लम्बा इतिहास है। अंग्रेजों की डाँड़ी पहाड़ से नीचे रवाना करवाने में तुम्हारे इस वलिदानी अखबार का भी हाथ रहा है। 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' के नारे पर जिस वक्त फाँसी की सजा थी, तुम्हारा यह अखबार एक तरफ के 'वॉक्स' में इसे और दूसरी तरफ के 'वाक्स' में 'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है!' छापता था। दायीं ओर महात्मा जी की तस्वीर का ब्लाक छपता था और वायीं ओर तिलक का।"

"लेकिन, महाराज ! एक दिन इस वात का जिक्र चलने पर वह 'क्रांतिकारी उत्तरांचल' वाला, 'विश्रांत' होटल के मैनेजर वर्मा का बेटा श्यामलाल कॉमरेड कह रहा था कि आप जो अखबार 'लोकल इस्केल' पर बाँटते थे, उसमें ऊपर मुन्ने मियाँ के खमीरा तमाखू और 'हिमांचल मिष्ठान्न भण्डार' के इश्तहार छपते थे और जो अखबार कांग्रेस के बड़े-बड़े नेताओं के पास दूर-दूर के शहरों में भेजते थे, उनमें गांधी महात्मा और तिलक बाबू वगैरह की तस्वीरें हुआ करती थीं ? यहीं दुकान के आगे पान खाता हुआ लोगों से कह रहा था, लेकिन हम चुप लगा गये कि लुच्चों का कहा क्या और कौवे का बीटा क्या।"

कुटिलता ध्यानी पनवाड़ी की ऐंठी हुई मूंछों में केंचुओं की तरह रेंगती दिखती है। कपाल में वायीं तरफ का गहरा घाव अक्सर अपनी ही जगह हिलता है और एक विचित्र-सी अतिरिक्तता उत्पन्न करता है, क्योंकि घाव के गड्ढे के साथ उसकी कंजी आँखें भी हिलती हैं।

'तुम्हारी आँखों को देखकर, पेड़ पर वैठे रात का इंतजार करते उल्लू की आँखें याद आती हैं।' कहने की इच्छा को अपने ही भीतर दवाते हुए, शारदा पंडित आगे बढ़ गये और धीमे से कंधे पर हाथ रखते हुए, बोले—"वह कामरेडवा ससुर कितना नीच और काँइया है, तुम खुद जानते हो, ध्यानी ! उस साले से कभी पूछो कि साले, जब बयालीस की क्रांति हो रही थी, उस वक्त तुम विना चड्ढी पहने हगने-मूतने वैठते रहे

होगे....बड़े हुए तो 'चाइनीज एजेन्ट' बन गये हो । औरतों का लगाने का कपड़ा पेड़ पर टाँगने से क्रांति थोड़े आती है ? उसके लिये जीवन-भर की साधना चाहिये । तप और त्याग...."

"महाराज, ये सब बातें ध्यानी ठाकुर को बताने की जरूरत क्या है ? मैं तो सिर्फ इसलिये छेड़ रहा था कि शायद, आपको नजर नहीं पड़ी ? वह अभी-अभी चन्ना पजाबी के 'शबनम इस्टोर्स' से निकलकर, मल्लीताल की तरफ गया है ! चेयरमैन साहब की हिप्पीकट लड़कियाँ उसे बहुत दिलफेक नजर से देख रही थीं ।....आप तो कह रहे थे, बस, आज-कल में भाग जाएगा ? मगर जहाँ तक ध्यानी समझ पा रहे हैं, वह तो शहर का 'हीरो' बनता जा रहा है । लड़कियाँ उसको दिलीपकुमार-देवानन्द बनाने में लगी हुई हैं । पूरे शहर में शिवजी महाराज के नंदी की तरह आजाद घूम रहा है । सरकार, साँड़ जब गैया को सूँघता हुआ गुजरता है सामने से, तो शहर में दूध की उम्मीद बढ़ती है, इसलिये उसे सब 'हुरो-हुरो' कहते है ।....इस साले से आखिर क्या उम्मीद लगा रखी है शहर वालों ने, जो इसे लगातार छाती पर लेफ्ट-राइट करने दे रहे हैं ? इस फौजी भगोड़े की तो बगल के ही कैन्टोमेन्ट वालों से मुश्कें कसवा लेनी थी ?"

"अरे भई, ध्यानी ठाकुर ! शहर वालों की क्या कहते हो, खुद जिनकी पूँछ में आग लगी थी, वो ठंडे पानी के घड़े में पूँछ डाले बैठे हैं । वह जो मुहावरा तुम अक्सर कहा करते हो कि 'हगने वाले को नहीं, देखने वालों को शरम'—वही सामने आ रहा है । मै नहीं चाहता कि जिस शहीद अखबार के पन्नों पर आजादी की लड़ाई का महान् इतिहास छिपा हुआ है, उसमें इस तरह की हग्गो-मुत्तो को जगह दी जाय ! नहीं तो 'स्वदेश' मे ही वो हंगामा खड़ा कर देता...."

"लेकिन आप ही, पंडित जी, अक्सर मिसाल दिया करते थे कि जिस जल से आचमन किया जाता है, उसी से पिछाडो भी धोयी जाती है ? एक मिसाल हमने भी सुनी थी कि जब गाँव सो जाए, तो कुत्तों को जागना

पड़ता है। यहाँ और तो और, आप भी नींद में ही पड़े लगते हैं।"

"तुम्हारा जवाब नहीं, ध्यानी ठाकुर! तुमसे बातों में पार पाना कठिन है। चार बीड़े बढ़िया लगाकर, लपेट देना। मैं तुम्हारी इस बात की ताईद करता हूँ कि आदमी को अपना फर्ज नहीं भूलना चाहिए। ठाकुर होकर भी तुम न्याय के पक्ष मे हो, लेकिन यहाँ पाराशरियों के कपाल पर ही नहीं, चूतड़ों पर भी चंदन लगा है।"

"मैं तो महाराज, निहायत नाचीज़ हूँ। शिवजी महाराज ने यह दुकान भी ऐसी जगह बख्शी है, शहर का द्वारपाल बना दिया है। आने और जाने वाले, दोनों पर आँख पडती है। कल रात कुँवर साहब की कार यहीं से होकर गुजरी थी। सुना है, चेयरमैनी का चुनाव लड़ना चाहते हैं?"

"ध्यानी ठाकुर, तुम साक्षात् शिवजी के गण बलभद्र की तरह हो। तुम्हारी आँख से कुछ छिप नहीं सकता। पार्वती बहन जी से तुम्हारी कुछ बातचीत हुई थी क्या?"

"पार्वती बहिन जी को इतनी फुर्सत कहाँ है? वही बीबी वर्मा बतला रहा था कि मोहल्ले की औरतों में कुछ इस तरह की हवा बह रही है कि पार्वती बहन जी चेयरमैनी के लिये खड़ी होने वाली हैं....? लेकिन श्यामू कामरेड एक दिन गप्प हाँक रहा था कि अपने अखबार के किसी 'इश्यू' में वह आपके और पार्वती बहन जी के बारे में....वह हरामजादा तो कुछ पोल-बोल खोलने-जैसी बातें कर रहा था? कहता था कि हल्दिया में जो फारम आपने पार्वती बहन को सरकार की तरफ से दिलवाया है.... सरकार, हम तो सिर्फ़ इतना चाहते थे कि साला जो यह डेढ-इंची घाव हमारे कपाल में लगा है, किसी काम आ जाता, तो अच्छा ही था। सर्दियों में भैंसें सिर्फ़ मूतने के मतलब की रह जाती हैं, ठंड के मारे। कहीं एकाध टुकड़ा तराई की तरफ हमारे हिस्से में भी आ जाता, तो नेहरू महाराज की आत्मा को दुआ देते। आप तो हम गरीबों का दुःख-दर्द खुद समझते ही हैं। और, सरकार, मालिक बकरा खाने बैठा हो, तो कुत्ता हड्डी की उम्मीद करता ही है।"

शारदा पंडित को लगा, मुंह में भरा पान बेजायका हो गया है। जल्दी-जल्दी बोले—"बयालीस के मूवमेन्ट के क्रांतिकारियों की लिस्ट मेरी फाइल में पड़ी रह गई है। चीन ने जिस तरह से हमला करके देश को संकट में डाल दिया, और हमारे पासवान नेता अमर पंडित जवाहरलाल नेहरू को ले बैंठा....मुझको लगा, यह वक्त माँगने का नहीं, देश के हाथ मजबूत करने का है।....लेकिन अब स्थिति धीरे-धीरे हमारे पक्ष में होती जा रही है। तुम तो जानते ही हो, ध्यानी ठाकुर, कि बड़े-बड़े नेताओं से हम लोगों के रसूख इसी बात से बनते हैं कि अपने समाज पर हमारी पकड़ कितनी है। पार्वती बहन जी चेयरमैन हो जायें, तो तुम्हारे भी बहुत-से काम हो सकते हैं। खास तौर से मिलिट्री कैम्पों की सप्लाई देखी जा सकती है। लोगों को उस लाल लंगूर की बातों से गुमराह होने से बचाने का काम तुम्ही को करना है। तुम्हारी दुकान ही इस शहर का सबसे बड़ा 'इन्फार्मेशन सेंटर' है।....आजकल उस साले के यहाँ उस फौजी भगोड़े की आवत-जावत बहुत दिखाई दे रही है....जरा नजर रखे रहना। खैर, लद्दाख के कमांडेंट को जवाबी तार कर दिया है, उसकी गिरफ्तारी का वारन्ट आता ही होगा। क्रांतिकारियों वाली फाइल के बारे में मैं शास्त्री जी को खुद डाइरेक्ट खत लिखने वाला हूँ।"

ध्यानी पनवाड़ी के चेहरे पर आई हुई चमक को शारदा पंडित ने अपने सम्पूर्ण अस्तित्व मे अनुभव किया और विदा होने की उतावली महसूस करने लगे।

पान लगाने की डण्डी से संकेत करते हुए, ध्यानी पनवाड़ी ने झील की दीवार से लगे रिक्शे वाले को बुलाया। रिक्शे वाला आ गया, तो डंडी से ही मल्लीताल की तरफ संकेत करता हुआ बोला—"नेताजी को स्वदेश प्रेस ले जाओ। अच्छा, पंडित जी, पाँवलागों!"

काफी दूर निकल आने तक शारदा पंडित ध्यानी पनवाड़ी की कंजी आँखों के बोझ को अपनी पीठ पर अनुभव करते रहे। आँखों से ओझल होने की राहत अनुभव करते ही, बोले—"स्वदेश प्रेस बाद में चलना, पहले जरा थाने तक चलो।"

● ●

१

उन चारों की वापसी के बाद, श्रीमती मैठाणी लगातार शेखर की प्रतीक्षा में थीं। रात के सन्नाटे मे सुनाई देने वाली दीवाल-घड़ी की टिक्-टिक्, टिक्-टिक् को दोपहर-भर सुनना निरंतर असुविधाजनक लगता रहा।

श्रीमती मैठाणी के वाल ज्यादा सफ़ेद नहीं हैं। चेहरे पर सामान्यतया गढ़वालो या अन्य पर्वतीय औरतों के चेहरों पर सघन रूप से उभर आने वाली झुर्रियाँ भी नहीं। दाँतों की ऊपर वाली पंक्ति में से दो टूट चुके हैं—वीच के कुछ को छोड़कर, अलग-अलग पार्श्व में। दाँतों का यह अंतराल वाला खालीपन, जव भी वो हँसती हैं, पारम्परिक वल्कि कहा जा सकता है कि किंचित् पौराणिक किस्म के आभिजात्य से मढ़ी महिला के काल्पनिक 'पोर्ट्रेट' की सी गरिमा उनमें उत्पन्न करता है। और कदाचित् वृद्धावस्था की अच्छी-खासी शुरुआत में पहुँचकर भी, उनकी मुखाकृति में से उनके अतीत के सौंदर्य को प्रतिविम्बित कर सकने की क्षमता झाँकती है, तो इसकी वजह, शायद, यही होगी।

उनके व्यवहार, उनकी भाषा और उनके सम्वोधनों में भी एक कलात्मक किस्म का संतुलन भी साफ़-साफ़ दिख जाता है।....लेकिन, इस सवके वावजूद, उनके चेहरे पर—खास तौर से आँखों में—वनी रहने वाली तरलता को कोरी भावनात्मक स्निग्धता समझ लेना ठीक नहीं। शायद यह वात उनके सम्पर्क मे आने वाले संवेदनशील व्यक्तियों के लिये स्मरण रखे जाने की चीज हो सकती है, कि किंचित् कठिन और जटिल किस्म की यह

तरलता उनके चेहरे पर अतीत की घटनाओं को नहीं, बल्कि उनके परिणामों को प्रतिबिम्बित करती है।

जो लोग अपनी जिंदगी मे संघर्ष करते है कि जीवन उन पर अपने नियत-क्रम से नहीं, बल्कि उनके अपने फैसलों के हिसाब से घटित हो— इस तरह के आग्रही किस्म के लोगों का बुढ़ापा अगर किसी ने देखा हो— या खुद इससे गुजरा हो—तो वह श्रीमती मैठाणी की आँखों में प्रायः ही विद्यमान रहने वाली इस खास किस्म की तरलता को समझ सकता है।

चेहरे पर—और खास तौर से आँखों में—लगभग एक अमूर्त्त किस्म की तेजस्विता का अहसास कराने वाली इस तरलता का जिक्र यहाँ सिर्फ़ इसलिये कि बिना इसके श्रीमती मैठाणी के बारे मे बातचीत करना, लगातार यह महसूस करने की असुविधा से गुजरना हो सकता है कि नहीं, बात बनी नहीं।

कोहरा आज, प्रायः, दिन-भर अपनी उपस्थिति बनाये हुए था। अगरबत्ती के सिरे पर से किंचित् वर्त्तुलाकार होकर ऊपर उठती हुई धुएँ की लकीर की तरह, कोहरा देवदारु के ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की चोटियों पर से आकाश की ओर उठता साफ़-साफ़ दिख जाता था। ओकवुड काटेज-जितनी ऊँचाई पर से तो अपेक्षाकृत ज्यादा सुविधा से। और अपेक्षाकृत अधिक मोहक, हालाँकि एकांत-प्रेम की चित्तवृत्ति से वंचित लोगों को शायद, निर्जनता की उदासी में जकड़ लेने वाला।

लगभग एक फर्लाङ्ग की दूरी तक, चारों ओर, कोई दूसरा घर नहीं है। सिर्फ़ 'आँउटहाउस' की पद्धति में बना, काटेज के भीतर आती पगडंडी से लगा एक छोटा-सा कमरा है, लेकिन वह तब भी घर होने की प्रतीति नहीं देता, जब उसमें चौकीदार किसनराम रहता होता है। इसके बावजूद—या, शायद, इसी कारण—ओकवुड कॉटेज अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक दिखने लगता है, तो इसकी वजह क्या सिर्फ श्रीमती मैठाणी की

इसमें उपस्थिति ही नहीं मानी जाय ? सम्भवत: ऐसे मकान बहुत कम होते हैं, जो बाहर से ग्राने वालों को तत्काल ग्रात्मीयता का ग्रहसास कराने लगें।

ग्रोकवुड काटेज, ग्रपने ग्रास-पास की विरलता में, इस तरह की दुर्लभता को उजागर करता है। ग्रौर इसे सिर्फ़ संयोग मानकर भी चला जा सकता है कि श्रीमती मैठाणी के व्यक्तिगत जीवन में भी यह खास किस्म की विरलता प्रत्येक क्षण उपस्थित रहती है।

·

श्रीमती मैठाणी, ग्रब इस वक्त, घर के सामने वाले हिस्से के बिल्कुल किनारे पर थीं। खुबानी के पेड़ को नीचे ढह पड़ने से बचाने के लिये चिनी गई दीवार के ऊपर, वो ग्रक्सर छोटी-सी फोल्डिग कुर्सी लगा लेती है। जिन लोगों ने इस शहर को कल्पनाशील ग्रथवा स्वप्नदर्शी व्यक्ति की सी ग्राँखों से देखने की कोशिश की है—वो सभी इस कथन को स्वीकार कर लेने में, शायद, ग्रापत्ति महसूस न करेंगे कि शाम को जब बत्तियाँ जला दी जाती हैं, यहाँ से झाँकने पर यह छोटा-सा शहर पाँवों की पहुँच में रख दिये गये किसी मायालोक की प्रतीति कराने लगता है।

लगभग बर्फीली हवा के प्रवाह में कहीं झीने, कहीं गाढ़े होते जाते कोहरे की नमी पेड़ों की त्वचा ग्रौर पत्तियों पर भी ग्रनुभव की जा सकती है, हालाँकि ग्रब ग्रोकवुड काटेज के ग्रासपास के ग्रधिकांश वृक्षों पर—विशेष रूप से सेब, ग्रालूबुखारे ग्रौर नाशपत्तियों के—ग्रासन्न पतझड़ के पहले का पीलापन हावी होने लगा है।

श्रीमती मैठाणी ने चश्मे को, ग्रादतन, शाल के कोने से पोंछकर ग्राँखों मे लगाने के बाद, दूर-दूर तक देखने की कोशिश की ग्रौर ग्रनुभव किया कि बाहर बढ़ते हुए धुंधले की ही तरह ग्रब भीतर भी ग्रवसाद

गहरा होता जा रहा है। उन्होंने कोशिश की कि कोई गीत गुनगुनाना शुरू कर दें—विशेष रूप से सांध्यकालीन राग यमन की बंदिश में—लेकिन होठों पर सिर्फ एक बुदबुदाहट उभरकर, बैठ गई।

प्रतीक्षा अब खिन्नता की हद तक पहुँच गई है, यह अनुभव करते ही श्रीमती मैठाणी उठ खड़ी हुई और कुर्सी को मोड़ कर, घर के बारामदे की तरफ चली ही थीं कि छोटे-से फाटक के खोले जाने की चिरपरिचित चरमर आवाज़ उनके कानों में पड़ी और उन्होंने खूब डटकर नाराजी व्यक्त करने का फैसला कर लिया।

शेखर का मफलर में आबद्ध चेहरा दिख जाने के बावजूद, उन्होंने अपना रुख सीधा, बारामदे की ओर रखा। कुर्सी एक कोने में रखी और बरामदे में बिखरी हुई चीजों को बटोरने में व्यस्त दिखने की कोशिश करने लगी। चाय की प्याली-तश्तरियाँ दोपहर से अभी तक ज्यों-की-त्यों पड़ी देखकर, एक बार फिर उन्हें उन चारों अध्यापिकाओं की याद आई और उन्होंने अनुभव किया कि भीतर द्वन्द्व हो, तो आदमी अपने से बाहर की चीजों के प्रति कितना लापरवाह हो जाता है।

शेखर को अपनी थकी हुई-सी आँखों में किंचित् विषादपूर्ण हँसी के चमककर बुझ जाने की अनुभूति हुई। सामान्यतया छोटे-छोटे, आत्मीय लगते हुए वाक्य कह देना और बात न बनने पर अपनी कारुणिकता को धीमे से उजागर कर देना कि 'मैं तो, मम्मी, अब नाराजी के नहीं, सिर्फ़ दया के योग्य रह गया हूँ।'—इतना काफ़ी होता है।—लेकिन, उसने अनुभव किया, इस वक्त इतना पर्याप्त नहीं होगा। कहकर निकल गया होता, तो भले ही आधीरात लौटता अथवा कल—हालांकि आजकल की असामान्य स्थिति में कहकर जाने के बाद भी इतना विलम्ब श्रीमती मैठाणी को परेशानी में डाल सकता है।

एकाएक उसने तय किया और चाय की प्यालियाँ बटोरती श्रीमती मैठाणी की कमर में अपनी बाँहे डाल दीं और उन्हे सीधा खड़ा कर दिया।

वह, श्रीमती मैठाणी की, पीठ की ओर था, लेकिन उन्हे लगा, बिलकुल सामने है और उन्हे उसके चेहरे को देख लेने की सी प्रतीति हुई।

"मम्मी, आज तुम मुझे पीटोगी ? लेकिन सिर्फ़ थप्पड़ मारना और वो भी ज्यादा नहीं—सिर्फ एक सौ एक !"—अपनी बात पूरी करते न करते, उसने श्रीमती मैठाणी को अपनी ओर घुमा लिया।

मकान चूंकि काफ़ी अकेला-सा है, इसलिये उन्होंने बरामदे में अपेक्षाकृत तेज रोशनी देने वाला बल्ब लगा रखा है और श्रीमती मैठाणी को साफ़-साफ़ दिख गया कि अपने विलम्ब से लौटने के तनाव को बच्चों की-सी नाटकीयता के साथ तोड़ने की कोशिश के बावजूद, शेखर के चेहरे पर गहरा विषाद उभर आया है। उन्होंने एकाएक उसे अपने गले से लगा लिया और उनके रोने की आवाज ने वातावरण को चीर-सा दिया।

ऐसा, इस हद तक, इससे पहले कभी हुआ नही। कब इस आकस्मिकता से उबरना हो पाया, इसे स्मरण रखना सम्भव था नहीं। कमरे में पहुँचने पर, भावुकता के अतिरेक के बाद अपने-आपको संतुलित करने की कोशिश में, उसने अपने भीतर थोड़ी असुविधा अनुभव की।

श्रीमती मैठाणी, उसके ठीक से बैठते ही, रसोईघर की तरफ मुड़ गईं—"ठंड बढ़ चुकी है। पहले तू कॉफी पी ले एक प्याली। खाना बाद में गरम कर दूँगी। इस वक्त मैं कुछ बना नहीं पाई ताजा कोई सब्जी, लेकिन आमलेट बना दूँगी...."

उसने अनुभव किया कि श्रीमती मैठाणी के बोलने में किसी चट्टान के तड़कने के बाद का सा सन्नाटा है।

"मम्मी, मैं इस वक्त काफी नहीं पिऊँगा। सूरज भाई के यहाँ कई बार चाय पी ली थी।"—कहते हुए, वह भी उनके पीछे चल पड़ा—"भूख तो लगी है, लेकिन खाऊँगा कुछ देर से। तुमने कहा था ना, ममी ? मैं मीट लेता आया हूँ।"

है। खासतौर से एकांत में और सोते हुए मैं अपने-आपको बदहवास पाता हूँ और महसूस करता हूँ, फांसी का फंदा कस दिये जाने के बाद का सांस लेते रहना कितना भयानक होता होगा।....''

''अब तुम फिर बहकने लगे हो। मौत, खून और जेल-फांसी—जैसे फालतू शब्दों से तुम 'आब्सेस्ड' हो गये हो। अक्सर जब हम किसी चीज को सही तौर पर नहीं पहचान पाते, तो उसे गलत नाम देने लगते हैं। तुम्हारे भीतर जिंदगी बिल्कुल नयी करवट ले रही है और तुम फिलहाल पहचान नही पा रहे हो।''

''ममी, एक अजीब बात है। सूरज भाई और तुम्हारी बातों में अद्भुत समानता होती है।''

''कौन, वह पगला कामरेड श्यामलाल वर्मा ? वह तो चूतिया है।''

कहने को तो कह गईं, लेकिन अच्छा नही लगा। बोलीं—''माफ करना, राजशेखर ! असभ्य भाषा इस्तेमाल करते देखना, खास तौर पर पढ़ी-लिखी बूढ़ी औरतों को, अच्छा नहीं लगता।...लेकिन जिस क्षण तूने मेरी कमर में बांहे डाल दी, मुझे लगा, कोई रही-सही पुरानी दीवार ढह गई है। आज से मैं तुझसे उसी भाषा में बातें करूँगी, जिसमे अपने-आपसे किया करती हूँ। चंद्रशेखर के साथ किस दुनिया मे क्या हुआ करती थी मैं ? कैसा खिलंडरे बच्चों का सा बोलना होना था हममे ! ओह,....तू कुछ पूछ रहा था, बात कही भटक गई। सुबह वो औरतें दरअसल तेरे साथ-साथ चंद्रपाल का भी मजा लेने आयी थीं। बेवकूफ औरतें !''

बात पूरी करके, श्रीमती मैठाणी ने इतनी जोर का ठहाका लगाया कि क्षण-भर को पूरा वातावरण छत तक ऊपर उठकर, फव्वारे के पानी की तरह नीचे झर गया।

वह विस्मित था।

''चंद्रभाल कौन, मम्मी ?''

"तेरा बड़ा भाई रे ! अभी पिछले ही साल तो मैंने उसे दफनाया था उधर, जहाँ किसनराम वाली कोठरी की बगल में छोटी-सी क्यारी है। वहीं इस बार मैंने पालक वोई है। पालक की पत्तियाँ खाने का बड़ा शौक था। जब तक जिंदा था, कई बार पालक चुराकर चरने में ही पिटा मेरे हाथों से।"—शरारत और अवसाद से उनका पूरा चेहरा भर गया।

अब एकाएक शेखर को याद आया कि कामरेड सूरज के मुँह से श्रीमती मैठाणी-द्वारा बकरा पाले जाने की वात सुनी थी।

"तुम दाढ़ीवाले वकरे की वात तो नही कर रही हो, ममी ? वाप रे, तुम तो पूरी करतार वुढ़िया हो। मुझे उसका छोटा भाई वता रही थीं तुम ?"

"तुम्हारी आदतें उससे वहुत मिलती-जुलती हैं ना, राजशेखर ! वह भी दूर-दूर जंगल में निकल जाया करता था और अँधेरे में वाघ उसका शिकार कर सकता है, इसकी परवाह वह भी नहीं करता था। तुझे भी मैंने मना किया था कि शाम होने से पहले ही घर वापस आ जाया करेगा। जिस तरह तू प्रतिहिंसा मे भरा फिर रहा है, तू क्यों यह मानकर चल रहा है कि अपमान और विश्वासघात की तकलीफ़ को सिर्फ़ तू ही महसूस कर सकता है ? कभी बेचारे तिवारी की भी कल्पना करने की कोशिश करो कि उस पर क्या वीत रही होगी ? तू तो सरे-वाजार उसकी फजीहत करके और थप्पड़ मारकर, वहुत कुछ हल्का हो गया—उसकी यातना की तेरे लिए कोई कीमत नहीं ? शादी हुए महीना-भर नहीं हुआ कि पत्नी का दावेदार सरेवाजार अपमान और मारपीट-जैसी गंदी हरकतों पर उतर आया है....आखिर तू आत्महत्या या कत्ल कर सकता है, तो वह क्यों नहीं ? राजशेखर, इस गलतफहमी मे आदमी को कभी नहीं रहना चाहिए कि 'इमोशंस' सिर्फ़ उसमें है और प्रेम सिर्फ़ वही कर सकता है। ऐसा करना 'इनह्यूमन' होना है।"

शेखर अब गोश्त की वोटियाँ छोटी करने लगा था, उसका हाथ रुक गया। श्रीमती मैठाणी का एकाएक का यह आरोप उसे अपमानजनक

लगा या सिर्फ़ एक आत्मीय का झिड़कना-भर, वह तय नहीं कर पाया। उसने अपने-आपको काफी भीतर तक हतप्रभ होता अनुभव किया और एक खिन्न चुप्पी में डूब गया।

स्टोव जला चुकी थीं और कुकर में तेल छोड़ दिया था। तेल ठीक से गरम हो जाने की प्रतीक्षा में, कटी प्याज हाथ में लिये-लिये ही श्रीमती मैठाणी बोलीं—"देख, राजशेखर! तूने जो रवैया अपनाया हुआ है, वह स्वाभाविक है और स्वाभाविकता की हद तक ही जायज भी है।....लेकिन मैं भी तेरी ही तरह सारी बातें सोचने लगूँ, तो यकीन जान, अपनी सद्-भावनाओं के बावजूद, मैं तेरा हित कर नही पाऊँगी। मेरे बेटे, मेरी तक-लीफ़ अभी तू समझ नहीं पायेगा। जब किसी आदमी का अस्तित्व अपने-आपसे बँध जाता है, तो बहुत बड़ी बाधा आ जाती है। तू कभी इस तरह से सोचने की कोशिश कर, इस बुढ़िया की जान खतरे में हो और तू मुझे हर कीमत पर बचाना चाहता हो....? आत्महत्या या हत्या के जरिये अपने प्रेम को साबित करने का तेरा सारा शहीदाना उत्साह राख हो जायेगा ना? कम-से-कम उतने वक्त के लिये, जितने में मै मौत से उबर या खत्म नहीं हो जाती हूँ! तुझे यह बात मै बताना नहीं चाहती थी कि उन औरतों ने यह कहकर मेरा मजाक उड़ाने की कोशिश की थी कि 'मिसेज मैठाणी, आपके बारे में कई लोग यह कहते सुने गये है कि—'मिसेज मैठाणी को बकरे पालने का शौक बहुत है और बकरे की माँ की मनाई हुई खैर'.... तू समझ सकता है कि लोगों का इशारा किस तरफ है?"

"मैने तो एक नजर में अनुभव कर लिया था कि उनका इरादा नेक हो नहीं सकता। चारों निहायत चोट्टी किस्म की औरते दिखती है। यह तुम्हे पहले भी बताया था कि मै जब सड़कों पर से गुजरता हूँ, तो कुहनियों से एक-दूसरे को ठेलती है।....लेकिन मेरे साथ बदतमीजी करना और बात है, तुम्हारे साथ और। मै उन लोगों का झोंटा पकड़ कर खीच लूंगा।

मेरे लिये अब 'लोग क्या कहेंगे वाला' डर बिल्कुल बेमानी हो गया है। अब मैं सिर्फ...."

बोलते-बोलते, वह तैश में आ गया।

श्रीमती मैठाणी ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया—"तुझमें, बस, यही कमी है, राजशेखर! तेरे जिस्म में फौजी किस्म का जोश है और तू यह समझने की कोशिश नहीं करना चाहता है कि जिस 'सिचुएशन' में तू गिरफ्तार है, उससे मुक्ति का रास्ता 'फिज़ीकल-एक्साइटमेंट' में नहीं है। तू स्वस्थ और कद्दावर नौजवान है, लेकिन प्रेम में उत्सर्ग-जैसी 'डेलीकेट' बात को जिस्म के बूते पर निबटाने की कोशिश सिर्फ़ जाहिल लोग ही कर सकते हैं। कभी-कभी अखाड़े में प्रतिद्वन्द्वियों को पछाड़ने वाले पहलवान से ज्यादा गहरा प्यार अपने शरीर में बीमारी से जर्जर, प्राण त्यागते हुए व्यक्ति में होता है। गहरा और शक्तिशाली।....तूने मुझसे उस रात क्या कहा था, जब मीना के 'हस्बैंड' से उलझकर नफरत और 'गिल्टी-कांसेश' में डूबा हुआ मेरे पास लौटा था? तू अपने सच्चाई पर होने और इसके लिये अपना बलिदान देने के जोश से भरा हुआ था न? और अब भी तो है?....लेकिन, राजशेखर, जिनको सच्चाई का असली रूप समझ में आ जाता है, वो जिंदा रहने के लिये सामान्य लोगों से कही ज्यादा बड़ा संघर्ष करते हैं। जीवित रहने के लिये उनमें 'पैशन' के दर्जे का मोह आ जाता हैं। वो अपनी सच्चाई को अपनी आँखों के सामने आकार लेते हुए देखना चाहते है। मरने-मारने की तैयारी में तू काफी वक्त लगा चुका, राजशेखर! अब जिंदा रहने के लिये वक्त निकालने की बात सोच।....नहीं तो तुझे कभी एकाएक यह पता चलेगा कि तू सिर्फ़ जिंदा रह गया है और जिंदा रहने का अर्थ तेरे हाथों से कही छूट गया है।....अच्छा, जा गोश्त धोकर, इधर ला और ये बता कि पुलाव खायेगा या मीट-रोटी? पुलाव बनना हो, तो मसाला कम छोड़ा जाय। हालाँकि ठंड बहुत है और रात का वक्त, लेकिन लौग पड़ा गर्म-गर्म मीट-पुलाव—हाय, जीभ में लार आ गई!"

"ममी, तुम बोलती कैसे हो? मुझे लगता है, जैसे कोई चिड़िया है,

जो वार-वार आसमान को ऊँचाइयों में उड़ जाती है और दूसरे ही क्षण अपने घोंसले मे आ बैठती है।...."

एक क्षण रुककर, बोला—"वल्कि मेरे कंधों पर।...."

"और पंख उगने से पहले घोंसले में पड़े अपने वच्चों को चुग्गा चुगाती है। है न? अरे, राजशेखर! तूने कभी एक दृश्य देखा है कि गौरैया का वच्चा घोंसले से गिरकर भटक गया है और कौवों का झुण्ड उसको चारों ओर से घेर लेता है।....हम जो 'फील' करते हैं, उसको शब्द मिलते-मिलते कितना वक्त गुजर जाता है! मैं दोपहर-वाद कितना अजीव डर महसूस करने लगी थी कि अगर एकाएक कोई यह खवर ले आया कि तूने किसी का कत्ल कर दिया है या किसी ने तेरा....तो क्या होगा? तेरे साथ जो होना था हो चुकेगा, अव मेरे साथ क्या घटित होगा?....मैं भी अजीव चूतिया औरत हूँ। वकवकाती रहूँगी और प्याज तो जलेगी ही, तेरा जी भी उदास हो जाएगा।....अच्छा, अव खाना शुरू करते वक्त तक चुप रहने की जगह जैसा कि मैं वार-वार कह चुकी हूँ—तुम्हें उन वेवकूफ, लेकिन किसी हद तक प्यारी औरतों का किस्सा सुनाऊँगी।"

थोड़ी देर प्याज भूनते मे अपने को एकाग्र किये रहने के वाद, श्रीमती मैठाणी फिर उसकी ओर देखने लगीं। वोलीं—"वो सालियाँ मेरा फाख्ता उड़ाकर गई है, तो क्यों ना उनका भी भोग लगाया जाए? एक वेवकूफ तो यहाँ तक उतर आई थी कि 'लोग कहते है कि जब आपका वकरा दूसरी की वकरियों के पीछे-पीछे दौड़ता था, तो आप 'इनज्वाय' करती थीं?'....वह जो खूसट-सी दिखती है न उनमें—कवूतरों के बीच की चील-जैसी, मिसेज शर्मा—वह उन सव मे कुछ 'एजेड' है ना? इसी वात का 'वेनिफिट' ले रही थी मुझसे।....लेकिन मैंने भी उसको ऐसा रगेदा, भूलेगी नहीं।"

वह चुप था। श्रीमती मैठाणी ने ही अपने कहे में पूँछ लगाने की तरह कहा—"लेकिन उनमें जो दो जवान टीचरें थीं—प्रभा और गीता—उनका रुख तेरे प्रति हमदर्दी का दिखाई दे रहा था, रे!"

बात समाप्त करते ही ठहाका लगाते और ठहाका थमते ही शेखर के हाथ से गोश्त लेकर, उसे कुकर में छोड़ते हुए, श्रीमती मैठाणी ने जैसे अब तक के सारे वातावरण को, बिछी हुई चादर की तरह उठाकर, एक कोने में डाल दिया।

पुलाव बनने और खाने बैठने तक में वो उन चारों अध्यापिकाओं के बारामदे में पहुँचने से लेकर, ढलान उतर जाने तक का पूरा किस्सा ऐसे बखानती चली गईं कि कई बार शेखर के गले में कौर अटक जाने से, जूठन बाहर छिटक गई।

खाना और किस्सा खत्म हुआ, तो श्रीमती मैठाणी बोलीं—'तू चल कर कमरे में बैठ। मैं कॉफी लेकर आती हूँ।'

● ●

१०

शेखर के दूर निकल चुकने पर, कामरेड ने सीढ़ियों के नीचे झाँका, तो पाया कि वह अकेली है। कुछ क्षणों को वो चुपचाप देखते रह गये। तीन-चार बार पहले भी वह अकेले-अकेले आई है, मगर इस बार एकाएक यह प्रतीति हुई है कि जैसे उन्होंने बुलौवा भेजा हो और वह यह पूछती खड़ी हो कि—'कहो, कैसे बुलाया?'

कामरेड को लगा, इस औरत को लेकर पिछले कुछ दिनों में जो कुछ भी उन्होंने सोचा है, वह इन कुछ ही क्षणों में उनके अस्तित्व–मात्र के इर्द-गिर्द इकट्ठा होता चला गया है।

वह आज बिना किनारी की केशरिया धोती मे थी।

सीढ़ियों के ऊपर से उसके मुण्डन किए सिर का सिर्फ ऊपरी हिस्सा दिख रहा था। उसके हाथों में थमा कमण्डलु, कलाई में पड़े कड़े। गले में रुद्राक्ष की माला। केशरिया रंग की ही कुरती।

इस औरत के सिर मे कदाचित् घने बाल होते और लट कमर से काफी नीचे तक झूलती होती। कदाचित् यह संन्यासिनी नहीं, सुहागिन होती और इसकी सीमंत-रेखा में सिन्दूर गहरे तक भरा होता—तब भी, शायद, इस केशरिया वेश-भूषा में ही यह ज्यादा सुन्दर दिखती!.... हालाँकि इसके मुंडन किये सिर पर सिंदूर की कल्पना करते हुए, जुगुप्सा को अनुभूति ज्यादा होती है।

यह बात दिन-दिन कामरेड सूरज को जाने क्यों और ज्यादा 'हांट' करती जाती है कि अगर कहीं सरस्वती माता की शादी हो जाती, तो यह

एक गृहस्थिन के रूप में कितनी मोहक लगती । उसके साथ दूसरी माइयाँ भी आया करती थीं, मगर उनमें से किसी को लेकर इस तरह की कोई जिज्ञासा कामरेड को कभी महसूस नहीं हुई ।

कामरेड ने चारों ओर देखकर, संकेत किया, तो सरस्वती कम्पोजिंग वाले कमरे और फिर वहाँ से काठ की सीढ़ियों पर होती, ऊपर चली आई ।

"मैं अगर दरवाजा बाहर से बंद कर लूं, तो तुम्हे डर तो नहीं लगेगा ?"

"नहीं ।"

कामरेड ठीक से ध्यान नहीं दे पाये कि उसने कहा है या कि 'न' की मुद्रा में सिर्फ सिर हिलाया है ।

कामरेड पीछे मुड़े, आले में पड़ा ताला उठाया और बाहर आकर दरवाजे में साँकल चढ़ाकर, ताला लगा दिया । अत्यन्त सावधानी से नीचे कम्पोजिंग वाले कमरे में होकर, दरवाजा भीतर से बंद करके, काठ की सीढ़ियों पर होते, ऊपर आ गये ।

वह फर्श पर यों ही बैठी हुई थी । सिर उसने घुटनों पर दे रखा था, जैसे अपनी नियति को अंगीकार करते में उघड़ने की ग्लानि और तकलीफ को छिपा लेने का सिर्फ यही उपाय हो । घुटनों के बीच में उसका केश-विहीन सिर प्रार्थना में झुकी बौद्ध भिक्षुणी की सी प्रतीति दे रहा था ।

कामरेड सूरज ने अँगुलियों में अभी तक थमी बीड़ी को, लम्बे और तेज कश खींचकर, फर्श पर यों ही पडी 'एशट्रे' मे डाल दिया । आगे, सरस्वती माता की तरफ बढ़े, तो लगा, शरीर में भालुओं की सी खाल उभर आई है ।

अपने-आपको [illegible], सरस्वती माता की बाँह को उन्होंने प[illegible]
ही था कि खुद ही [illegible] सात-आठ सालों के बाद का यह [illegible]
—अचानक बर्फ [illegible] की सी सिहरन महसूस हुई ।

तब कामरेड सूरज अपने गीले कुएँ में जा पड़े, जैसे कोई जंगली पशु, टहनियों और फूस से ढँके गड्ढे में आ गिरा हो।

वह भी, जाने क्यों, तालाब में डूबी सी घुटनों में ही पड़ी रही, जैसे उनका सारा हौसला घुटे सिर पर की त्वचा पर सेंवार की तरह सिमटकर रह गया हो।

'तुमने तो नववधुओं को भी मात कर रखा है, सखी!' कहने को मन हुआ तो, मगर खुद अपनी ही आर्द्रता में डूबकर रह गये। तभी एकाएक ही स्मृतियों में सीढ़ियाँ उतरती-सी आती गईं। क्यों, उदासीन और काठ किस्म के कामरेड को उस निहायत अपढ़ और नासमझ किस्म की लड़की ने धीमे-धीमे कैसे यह साक्षात्कार कराया था कि उसका स्त्री होना-मात्र उनके सारे किताबी ज्ञान के ऊपर पलथी मारकर बैठ जाने को पर्याप्त है? और वह उल्लू का पठ्ठा फरहाद अभी कुछ देर पहले यहीं बैठा कैसे प्रेमोपाख्यान बघार रहा था, जैसे वह गुरु हो और कामरेड चेला! ....अबे, ये कौन-सा प्रेम है, जिसमें आदमी भीतर-भीतर कुत्ते के ताजा पिल्ले की तरह गोल-मटोल, लिबलिब और चिकना होता जाय! आँखें बंद पड़ी हों और कूँ-कूँ कूँकते, कभी इधर लुढ़के, कभी उधर!

कहीं होता इस वक्त यहीं और फर्श पर घुटनों में सिर दिये बैठी इस मुण्डिनी को देखता और इसकी बाँह थामे-थामे समाधि में हो गये-से कामरेड सूरज को....तो शायद इस सचाई के रुबरू हो पाता कि स्त्रीवंचना को चुपचाप सह ले जाना आदमी को कैसे, और कितना, परिवर्तित करता जाता है।

साफ लगता है कि इसके नितान्त अरक्षित, दिशाहीन और धर्माडम्बरों से विक्षत तारुण्य में जब भी ऐसा अवसर उपस्थित होता होगा, यह यों ही घुटनों में सिर दिये बैठ जाती होगी—अपने पास खड़े नर को उसकी पशुवृत्तियों के लिए स्वतंत्र छोड़ती हुई। ....और जब यह अंततः

अपनी वापसी में होती होगी। पोटली में चंद सिक्के याकि चावल-आटा बाँधती हुई ?

क्या बता रही थी यह पिछली वार कि संन्यास में हुए दस-ग्यारह वर्ष हो गये, जवकि कुल जमा उम्र सत्ताईस वता रही थी ? और इतने वर्षों में धर्म और संन्यास ने क्या वना दिया है इसे—स्त्री से गाय ? और जव यह साक्षात् भूत-पिशाच दिखाई देते कनफटे जोगियों के बीच होती होगी ? राजशेखर होता इस वक्त तो जरूर धर्म पर वहस करते कामरेड और वताते कि इस भिक्षुणी को देखें और बताये कि यह अपने लिये क्या माँगती है—धर्म और संन्यास ?

कितना कम वार्तालाप हुआ है इसके साथ ? पहले शुरू-शुरू में, कई-एक प्रौढ़ा और शातिर किस्म की माइयों के साथ आया करती थी। अकेले कितनी बार आई होगी, इन तीन-चार महीनों में—कुल तीन-चार वार ?

पिछली वार ही शायद विस्तार से सारी वातचीत हो चुकी होती, मगर तभी वह छोकरा आ उपस्थित हुआ था। और इस आशंका में कि माई के वहाँ एकांत में बैठे होने का ढिंढोरा पीटते देर नहीं लगायेगा छोकरा, उन्होंने उसके सामने-सामने ही विदा कर दिया था।

अपने लिये खिचड़ी राँधने के इरादे से थाली में उरद-चावल कर रखे थे। उलटने लगे जोगिया धोती के छोर मे, तो इसका भिक्षुणी माई होना भूल गया, औरत होना याद रह गया। सिर्फ इतना ही मुँह से निकला—'जल्दी ही आना और जरा देखने वालों से नजर वचाकर।'

•

जव कामरेड ने दरवाजा वन्द कर लेने की वात की थी, तव इसकी कल्पना में क्या आया होगा ?

राख मलते-मलते इसकी कल्पना कर सकने की वृत्ति का काफी क्षय हो चुका होगा। यह कहाँ कल्पना कर सकेगी कि कामरेड ने किस तरह के इरादे में से वाँह पकड़ी है ?

एकाएक ही उसने अपना सिर ऊँचा किया। सिर उठाने में काठ की मुंदरिया पड़े कान हिले, तो वह सचमुच किसी पालतू पशु की सी निरीहता में भर गई। बड़ी देर तक बाँहें पकड़े ही रह गये कामरेड को वह शायद एक झलक देख लेना चाहती थी।

कामरेड सहसा चौंक उठे। उनको लगा, अपनी पशुओं-जैसी निरीहता से भरी आँखों से सरस्वती माई ने उनके सम्पूर्ण अस्तित्व को स्पर्श किया है।

उनको एकाएक बीड़ी की तलब महसूस हुई, लेकिन जब तक मे वो टुटहा किस्म की मेज पर पड़ी बीड़ियों की तरफ आगे बढ़ते, उसने उनके पाँव पकड़ लिये।

जाने क्यों ऐसा होता है कि स्त्रियों के प्रति किसी हद तक रूखा-रूखा और उदासीन ही रहने के अभ्यासी कामरेड को ऐसे अवसरों पर संकोच किसी मायावी पाश की तरह जकड़ लेता है। शायद, स्त्रियों का संकोच तो सामने वाले को जकडता है, मगर कामरेड खुद अपनी गिरफ्त में हो जाते है। अब वो क्या करें सिवा इसके, कि चुपचाप यों ही खडे रहे ?

राजशेखर ससुर होता, तो देखता, इस फिल्मी किस्म के दृश्य को और थोड़ी देर को मीना दुबे के खब्त में से उबरता हुआ, जोर-जोर के ठहाके लगाता। दस-बीस तीसमारखाँ इकट्ठा ही टूट पड़े कामरेड पर और देखा जाय कि बाजी किसके हाथ रहती है। जैसे-तैसों को तो कामरेड वेदों से लेकर 'रेडबुक' तक के कोटेशनों से ही दाब देते है।....लेकिन अब इस वक्त क्या करें ? इस दयनीयता पर उतर आई औरत को किन किताबों के सहारे समझायें कि यह तुम गलत कर रही हो ! जिस परिस्थिति मे यह है—और जिस मनःस्थिति में कामरेड—कितना बड़ा फासला है। मीलों दूर तक हाथ आगे बढ़ाने पड़ेंगे, तब कहीं जाकर, इसके फुटबाल-जैसे सिर को अपने घुटनो पर से अलग किया जा सकेगा।

अचानक ही कामरेड को याद आया कि जब वो शहर के यूनियन

क्लब की तरफ से फुटवाल खेला करते थे, तो 'सेंटर हाफ' की पोजीशन पर खेलते थे।

सहसा कमरे के किसी कोने में बिल्ली के छोटे वच्चे के उदित होने की सी प्रतीति हुई और कुछ ही क्षणों में पता चला कि यह सरस्वती माई की रुलाई है।

अचानक ही 'अब रोती ही रहोगी या मेरे लिये चाय-चाय भी वनाओगी?' कहते हुए, कामरेड ने अपेक्षाकृत सधे हाथों से सरस्वती माई को अलग किया और तेजी से मेज पर से वीड़ी और दियासलाई उठाने के वाद, एक कोने में रखे स्टोव को लिये, खुद भी फर्श पर बैठ गये। महसूस हुआ कि स्टोव अभी भी कुछ गर्म ही है।

·

कामरेड ने तय किया कि स्टोव जलते ही, खुद उठेंगे और केतली में पानी लेकर, चाय वनाने की तैयारी करेंगे। शायद, इतने में मन में यह सुलझ जाय कि क्या-क्या और कैसे कहना है, लेकिन तभी उनके कानों में सरस्वती माई का खड़ा होना हाथ से किये गये स्पर्श की तरह पहुँचा। उन्होंने देखा, उसने अपनी धोती ठीक की है। एक वेधक-सी नजर उन पर डाल कर, वह आगे वढ़ी है और पास में ही पड़ी केतली को उठाया है।

स्टोव की आँच को धीमा करके, कामरेड चुपचाप वीड़ी पीते रहे। कहने को मन हुआ कि 'तुम्हारा औरत होना तो जोग में भी नहीं छूटा है।'....मगर यही तो वाधा है कितावी भाषा इसके साथ के वार्तालाप में खुद ही निरर्थक प्रतीत होने लगती है।

पिछली वार कामरेड ने कहा था 'वैराग ने तो तुम्हें और भी सुन्दर कर दिया है!' और यह पगली वताने लगी थी कि शादी हुई थी, तव सिर्फ ग्यारह वर्षों की थी और सत्रहवाँ लगते-लगते विधवा हो चुकी। पति फौज में था, वहीं किसी लड़ाई में मारा गया। घर पर तार पहुँचा था, तव यह नजदीक के किसी मेले में गई हुई थी और ढेर सारी रंगीन चूड़ियाँ,

कंघी, रेशमी डोरे और सिन्दूर की शीशी साथ लिये घर लौटी थी। सधवा होती, तो अब तक चार-पांच बच्चों वाली गृहस्थी होती।

लेकिन तब इसने अपने अज्ञान में ने ही कैसी मर्मवेधी बात कही थी ?

"भैया जी, हम पहुँची हैं और सासू ने पहले तो कसके कई झापड़ मारे, फिर हाथ की पोटली छीनकर फेंक दी और बेलने से हाथों में ताजा-ताजा पहनी चूड़ियों को तोड़ते, चीत्कार करते हुए कहा कि—'खा गई, रांड़, तू मेरे बेटे को खा गई !'....तो, राम जी ! हमें लगा, हम कांच का बर्तन हो गई हैं और सासू ने सिर से ऊपर तक उठाकर, पत्थरों पर पटक दिया है हमें !"

कहते-कहते, अपने भावावेग में इसने तेजी से अपने हाथों को हवा में ऊपर उठाया था, तो ढीली सिली कुर्ती में से स्तन लगभग पूरे-पूरे बाहर निकल आये थे और सकोच के मारे कामरेड ने आँखें नीचे झुका ली थीं।

हाथ नीचे करके, जब 'अच्छा, भैया जी, हम चलती हैं।' कहती यह चलने को हुई थी, तो कामरेड के द्वारा देख लिए जाने का अहसास इसके सारे चेहरे में भरा पड़ा था।

"ले, भैया जी !"

कामरेड को लगा, जैसे किसी ने कंधों से पकड़ लिया हो।

केतली अब वैसी कहाँ थी। कितनी जल्दी और कैसी साफ माँज दी गई थी—ढक्कन से लेकर टोटी तक।

"संध्या होने को आ आई, भैया जी ! अब हम चलें डेरे तक जाते अँधेरा न हो जाय। सुबह की वेला आई होतीं, तो अच्छा होता, माइयाँ घेरे रहीं। कीर्त्तन हो रहा था गढ़ी में आज। अब हम चलती हैं, भैया जी ! जरा दरवाजा खोल दीजिए तो...."

कामरेड ने अब पहली बार महसूस किया कि उनकी अन्यमनस्कता ने इस औरत को काफी हतप्रभ कर दिया है। केतली को वह माँज लाई

थी, मगर उसके मुँह पर धीमे-धीमे रोने के बाद का विषाद गहरा होता गया था।

एकाएक ही कामरेड, चाय की केतली को स्टोव पर चढ़ाते हुए, झटके के साथ उठ खड़े हुए, तो घुटनों पर के नसों के चटकने की आवाज कमरे में भरे सन्नाटे में साफ-साफ सुनाई दे गई।

जैसे कुछ देर पहले के असंमजस और संकोच में पड़े आदमी की जगह, यंत्रचालित मानव हो गए हों—नितांत सधे हुए हाथों से कामरेड ने सरस्वती माई को कंधों से पकड़ लिया और अपनी आवाज उन्हें खुद ही अजनबी के बोलने-जैसी महसूस हुई—'बैठो, सरस्वती, अभी तुम वापस नहीं जाओगी।'

वह जैसे आपाद मस्तक प्रश्न-चिह्न हो गई।

"बाहर जोरों की बारिश हो रही होती, तो भी तुम्हें रुकना ही पड़ता ना ?'—कामरेड ने मुस्कुराने की कोशिश की, तो लगा, अपने को संतुलित करने की कोशिश कर रहे हैं।

"आप तो, भैया जी, बस, बच्चों की सी हरकतें करते रह जाते हो।" —उसका चेहरा अब हल्के, उसकी उम्र को देखते किंचित् अल्हड़ किस्म के व्यंग से भरा था, मगर आँखें काफी आत्मीय हो आई थीं।

"खैर, फिलहाल तुम बैठो। एक प्याली चाय पियो मेरे साथ। कुछ बातें करो। कौन तुम गृहस्थिन हो अब कि सास-ननद पूछने लगेंगी कि अँधेरा पड़े कहाँ से चली आ रही हो ?...."

मात्र इतना कहना भी, कामरेड को, अपना रसिक हो उठना-सा लगा। अपनी खिसियाहट को छिपाने की कोशिश में उनका मुंह बच्चों की तरह खुला हो आया। कामरेड अब जल्दी-जल्दी चाय बना लेना चाहते थे, मगर सरस्वती माई का कहना—कि 'भैया जी, आप बीड़ी बहुत पीते हो।'— उनके कानों में धँस-सा गया और वो कुछ क्षणों को स्टोव पर झुके ही रह गये।

स्टोव बत्ती वाला है, आवाज नहीं करता, मगर केतली में भरे पानी

में तब बँधने लगी थी। कामरेड जब तक से उठें, 'कहाँ रखी है पत्ती-चीनी' कहतीं, सरस्वती माई उठ खड़ी हुई और कामरेड के संकेत की दिशा में आगे बढ़ती, चाय का सारा सामान करीने से बटोर लाई।

"ये प्यालियाँ-तश्तरियाँ आप क्या संक्रांति पर ही धोते हो, भैया जी ?"

वह अब पहले से काफी सहज भाव से मुस्कुरा रही थी और कामरेड ने महसूस किया कि इस बीच उनके किताब होते चले जाने को वह पढ़ भले नहीं पा रही हो, मगर टोह रही है।

"मुझे तुमसे कई बातें कहनी थी...."

"वो तो मैं समझ रही हूँ, भैया जी ! एक ही कहनी होती, तो अब तक आप कह चुके होते और मैं विदा हो चुकी होती।....भैया जी, आपके कपड़े आवारागर्दों के जैसे, मगर बाल साधुओं के जैसे हैं। चेहरा और आँखें भी। बरसों हो गये हमें जोग लिये हुए, आप सरीखा बच्चा बाबा नहीं देखीं हम। बोलो ना, क्या कहना चाहते हो ? अब यहाँ सिवा आपके-हमारे और राम जी के—सुनने वाला ही कौन है ? दस साल बीत गये, भैया जी, जोग लिये हुए। कान-आँख, सब बेकार हो गये। आप बोलते हो, तो ताल में कंकरों का पड़ना होता है।"

"हम क्या बोलें। बोलने को होते हैं, खुद ही डरते हैं। दरअसल हम अखबार वाले आदमी हैं। नीचे से आते वक्त छापाखाना देखा होगा तुमने ? छापने वाली मशीन तो नहीं है, मगर अक्षर खड़े करने वाली सामग्री है। इनको खड़ा करके पहले पेज तैयार होते हैं, फिर फर्मा तैयार होता है। जैसे कि तुम समझो जब तुम जोगन न हुई थीं, गाँव में थीं। घास काटा करती होगी ? पहले तिनकों से पूले बाँधती होगी ? और फिर पूले एक जगह बाँधकर, गट्ठर तैयार करती होगी ?"

"भैया जी, अब आप कुछ कहेंगे भी कि बस, यों ही फालतू बातों के गट्ठर बाँधा करोगे ? रात हो गई हमें, तो बूढ़ी भगतन लोग बहुत फजीता

करेंगीं।—भैया जी, मर्दों का तो कुछ नहीं विगड़ता, मगर कहीं औरत गड्ढे में गिर गई, तो उसे हाथ कौन देता है।"

उसका चेहरा हलका-सा विवर्ण हो आया था। सिर घुटा होने से माथा अपेक्षाकृत चौड़ा और, गौर से देखने पर, किंचित् असुन्दर प्रतीत होने लगता है। हालांकि सिर्फ आँखों, होठों और नाक पर आँख केन्द्रित करें, तो वह रत्ती-भर की प्रौढ़ता में हुए स्त्रीत्व से भरपूर लगती है। सुडौल बाँहें और सुगठित वक्ष रुद्राक्ष की कंठी की संगत में किंचित अधिक मांसल ही दिखते हैं।

कामरेड को लगा कि इस बार अनायास ही सरस्वती माई की सम्पूर्ण देह को अपेक्षाकृत स्थिर और एकाग्र आँखों से देख गये हैं।

बोले—"हाँ, जैसे कि मैं तुमसे यही पूछ लेना चाहता था—एक अखबार-नवीस के तौर पर—कि सत्रह साल की उम्र में विधवा और फिर उन्नीस की उम्र में ही जोगन बन जाने के बाद से अब तक—यानी कि फिर कभी तुम्हारे मन में दुबारा गृहस्थी कर लेने की बात आई ही नहीं?"

"कोयला, भैया जी, दाँतों में घिसिये, तो उज्जर करता है—माथे पर घिसिये, तो काला। दाँतों में घिसिये और कुल्ला करके, अलग होइये।.... गृहस्थी की तो बात ही दूर, चकलेखाने पहुँचने से बच गई है हम, इतनी हो रामजी की दया बहुत है।....बाप की आँखों के सामने होती है औरत, तो बेटी के तौर पर देखी जाती है। भाई की आँख बहन और खसम की आँख जोरू के बतौर देखती है। बेवर औरत को जो देखता है, सो जिस देखता है।...."

"हमने तो नहीं देखा...."—कामरेड ने चाय की एक लम्बी-सी घूंट भरी।

"आप तो, भैया जी, हमने पहले हो जान लिया—आदमी नहीं हो, देवता हो। आपका हुलिया बहुत रूखड़ है, मगर आँखें सरोवर है। मेरे सताप के मारे चित्त को कितना शीतल किया है इन्होंने।....मगर एक ठौर का अन्न-जल जोगनों के नसीब में कहाँ!"

"हम तुमसे यही कहना चाहते थे कि जोगनों की तरह मारा-मारा फिरना तुम्हें शोभा नही देता। वस मे रहे, तो परेशानी महसूस होते ही जानवर भी पीठ पर का बोझा पटक फेंकता है। हम तो अखबारनवीस आदमी है। जोग मे नही, कर्म में विश्वास रखते है।....और जोग तो क्या है, सो मन का धोखा है। कर्म बड़ी चीज है, हकीकत है। उसमें जिन्दगी का स्वाद है। दुख है, और समस्यायें-परेशानियाँ है, सो तो आदमी के जीवन मे लगी ही है। मन है, वह सफेद चादर है। रंग जो है, सो अपना बुद्धि-विवेक है। यों तो दूर का फासला है। मानो तो सव कुछ करीब है। आदमी को अपने इरादे का मजबूत होना होता है, बाकी सब-बातें बाद की चीजें है। हम जो कहना चाहते थे, शायद, ठीक-ठीक या साफ-साफ कह नही पा रहे है।—और हो सकता है, हम ना-उम्मीदो से भी वचना चाहते हो, हालांकि हम अखबार-नवीस आदमी है और ये हमारा रोज का धन्धा है कि सिद्धांतों की खेती करते हैं और जिदगी के संघर्षो से टकराना जानते है। हमने तो उस पागल लड़के से भी यही कहा था—शायद, तुमनें उसको हमारे पास से जाते देखा होगा ? दरअसल यहाँ जो चाय की जूठी प्यालियाँ पडी हुई थी—"

वह जोर से खिलखिला उठी। उसके मुँह से चाय के छींटे काफी दूर तक चले आये। वह जंगल में की हिरनी-सी हो आई। जैसे निमिप-भर में ही उसने चाय की जूठी प्याली-तश्तरियाँ उठाईं और धोकर, करीने से रख दिया। वाल्टी मे से पानी लिया और अपना मुँह छपछपा कर, इतमीनान से धोती-पोंछती वापस लौटी और बिल्कुल पास में आकर बैठ गई और सिर फिर पूर्ववत् घुटनों के बीच कर लिया। वहीं से उसका बोलना चिड़ियो की तरह उड़ा और आकर कामरेड के कन्धों पर पंजे जमाकर बैठ गया।

अब कही जाकर, अपने बोलते-बोलते असंतुलित, बदहवास और गड्ड-मड्ड होते जाने का इतनी गहराई से अहसास हुआ कामरेड को, और सरस्वती माई का घुटनों के बीच सिर डुबोकर यह कहना उनके सम्पूर्ण

अस्तित्व में कौंध गया कि—'आप क्या हमको अपने घर बिठाना चाहते हो?'

कामरेड को लगा कि अब एकाएक ही वो सहज हो आये हैं। धीमे से उठकर, सरस्वती माई के पास, उसकी पीठ से लगकर बैठ गये। बोले कुछ नहीं। अत्यन्त कोमल हाथों से उसके केशविहीन सिर को अपनी ओर किया, कुछ क्षण देखते रहे और फिर उसे सम्पूर्ण रूप से आलिंगनवद्ध कर लिया।

शाम गहरी हो जाने पर जब कामरेड टेबिल-लैम्प जलाने बैठे, तो उन्होंने इस बात को लक्ष किया कि सरस्वती ने इस बात को गौर से देखा है कि घर में बिजली के बल्ब और तार लगे पड़े हैं।

कुछ देर-बाद ही कामरेड डोलची हाथ में लिये बाजार की तरफ निकल पड़े। उन्हें लग रहा था, शायद, एकाएक ही आस-पास के परिदृश्य में कुछ परिवर्त्तित हो गया है। चलते में का वह फक्कड़पन जाने कहाँ गायब हो गया है और आकाश में छाये बादल कन्धों पर बोझ डालते-से अनुभव हो रहे हैं।

एक किलो आटा, पाव-भर आलू, सौ ग्राम टमाटर, एक गड्डी धनिया और थोड़ी-सी मिर्च तथा एक पुड़िया तैयार मसाला—खरीदारी का इस तरह का कोई अभ्यास कत्तई नहीं, लेकिन जैसे अवचेतन में से कोई सुझा रहा हो।

जब तक में उसने खाना बनाया, कामरेड पुरानी पत्रिकायें उलटते-पुलटते रहे! जब देखा कि रोटी-सब्जी थाली में लगाकर, उसने बोरे को तहाकर बिछा दिया है, तो उठे और बिना हाथ धोये ही खाने बैठ गये।

"हालांकि पूड़ियों से मुझे नफरत है, मगर शायद आज बननी चाहिये थी।....लेकिन, सरो, तुम अब फिक्र न करना। इस उजाड़ में सिर्फ तुम्हारी

कमी थी। सब्जी तुमने कहा बढ़िया बनाई है। कभी माँ और भाभियों-बहनों के हाथों ऐसी सब्जी मिला करती थी। अब तरसों हो गये।"

"कल सुबह कुछ बनाऊँगी।"—उसका नन्हा-सा कहना और स्टोव की नीली लौ में फुलका सेंकना, नामदेव को लगा, उसकी आँखें हलके से आर्द्र हुई हैं और यह सम्पूर्ण आकस्मिक है।

"मैं, तुम विश्वास करो, अपनी पूरी ताकत से तुम्हें गढ़ूंगा—जैसे कुम्हार कच्ची मिट्टी को। एक न एक दिन तुम्हें माँ के आगे करूँगा, अगर वो जिन्दा रही। मैंने लगातार अपमान और उपेक्षा की, तंग-दस्तियों की जिन्दगी जी है, मगर तुम्हारे साथ लापरवाही नहीं बरतूंगा। मैं भीतर ही भीतर घुट रहा था। कोरे सिद्धान्त मुझे प्रेरणा दे नहीं पा रहे थे। अब मैं पूरी कोशिश...."

"इस वक्त कुछ खा लेने की कोशिश करो ना।...कैसी भुतहा-सी तो शक्ल निकल आई है। गालों पर की हड्डियाँ दिखने लगीं। मेरी फिक्र मत करो। सुबह मुँह-अँधेरे ही वापस चल देने को कह दोगे, तो भी चुपचाप चल दूँगी। मैं सिर्फ तभी यहाँ रहूँगी, जब तुम जी से रखोगे और देखूँगी कि मेरा रहना कम-से-कम तुम्हारे लिये अकारथ नहीं जा रहा।...."

सिर्फ तीन-चार घन्टों में ही यह औरत 'भैया जी' और 'आप' से सिर्फ़ 'तुम' पर आ गई है। ऊपर का ही नहीं, नीचे प्रेस में तक का कूड़ा बटोर कर कोनों में इकट्ठा कर दिया है। 'रात को कूड़ा बाहर नहीं फेंकना चाहिये,' कहते हुए इसकी आवाज कैसी हो आई थी, जैसे बरसों यहीं रही हो और एक छोटे-से अन्तराल के लिये अलग हटकर, अब वापस लौटी हो। कहती है, सुबह मुँह अँधेरे ही चल देने में भी कोई एतराज नहीं होगा, मगर एक-एक चीज को अपने हाथों से किस अनुराग के साथ स्पर्श कर चुकी है।

"तुम्हारे डेरे में हल्ला जरूर मचेगा।....और बहुत सम्भव है, वो बूढ़ी

माइयाँ सबसे पहले यहीं धावा बोलें ? किसी वक्त अगर मेरे न रहते में वो लोग आयें, तो घबराना मत और सख्ती से मना कर देना कि यहाँ घर में भीड़ लगाने की जरूरत नहीं। हम लोग कल-परसों में ही आर्य समाज में शादी कर लेंगे। तुम बालिग हो और तुम्हारी मर्जी के खिलाफ कोई तुम्हें इस घर से हटा नहीं सकता।"

"तुम भी नहीं ?....खैर छोड़ो कल की कल देखी जायेगी।...हे राम, तुमने कैसी गत कर रखी है। बिस्तर पर तक बीड़ियों के टुकड़े पड़े हैं।"

खाना खत्म करके, कामरेड ने फिर बीड़ी सुलगा ली थी। सरस्वती का कहना सुनकर हाथ में लिये ही रह गये। वह बिस्तर ठीक से बिछाने में व्यस्त हो गई थी।

"बहुत थक न गई हो तुम, तो मुझे एक प्याली चाय और देना। मेरा दिमाग आज जेल से छूटे कैदी की जैसी थकान में हो गया है।...."

"जेल में बन्द कैदी कहते अपने-आपको, तो ज्यादा ठीक होता।" तकिया ठीक से लगाते हुए, वह प्रगाढ़ आत्मीयता के साथ हँसी और फिर धीमे से बोली—"तुम बिस्तर पर लेट जाओ, मैं चाय बना देती हूँ।

•

सुबह, सरस्वती से भी पहले, कामरेड की आँख खुली। देखा, खाट से थोड़े ही फासले पर चटाई बिछाये और कम्बल ओढ़े सोई है वह। मुँह उघड़ा था, मगर कमरे में अभी इतना उजाला नहीं था कि साफ दिख जाता। कामरेड के मन में तेजी से इच्छा जागृत हुई कि नींद में डूबे उसके चेहरे को देखें।

सँभल कर, कामरेड पूर्व की ओर पड़ने वाली खिड़की की तरफ आगे बढ़े। सिटकनी खोलकर, खिड़की के दोनों पल्लों को एक साथ खोला, तो बादलों के छंट जाने से खुला आकाश जैसे एकाएक आँखों में भर आया। अभी सुबह हुई-भर थी और ठंडी हवा के झोंकों में एक अपूर्व ताजगी भरी थी। रोशनी-भरे कमरे में कामरेड मुड़े ही थे कि उन्होंने देखा, वह जाग चुकी है और पूर्वाभिमुख होकर, प्रभु-स्मरण में डूबी है। ● ●

११

लेकव्यू पेलेस होटल पहुँचे कामरेड, तो उन्हें यह देखते ही हताशा ने दबोच लिया कि काउण्टर पर चचेरे भाई गिरीश की जगह, दामू ताऊ बैठे हैं। आमना-सामना न हो गया होता, तो कामरेड चुपचाप वापस लौटे चले होते।

सामने पहुंच कर 'पांवलागी' कहते हुए कामरेड थोड़ा-सा झुके, तो दामू ताऊ हलका-सा मुस्कुराये—"जीते रह, श्यामू ! तेरी कमर को थोड़ा-सा लचकते देखकर, मुझे संतोष हो रहा है। यार, तूने यह क्या गत बना रखी है अपनी ? तेरा हुलिया देखकर कौन कहेगा, तू उस वर्मा खानदान का रतन है, जिसके एक दर्जन होटल इसी शहर में चलते हैं ! ये झोले में क्या लिये हुए है ?"

उन्होंने काउण्टर पर से नीचे को झुकने की कोशिश की, तो कामरेड ने झोला थोड़ा और पीछे कर लिया—"ऐसे ही कुछ सब्जी—वब्जी है।"

"अच्छा, मैं समझा था, तूने सोचा होगा मुद्दतों के बाद बड़े बाबू के यहाँ जाना, तो खाली हाथ क्यों जाना !"—दामू जी जिस तरह मुस्कुराये, गले में खराश आ गई।

"यह घर नहीं, होटल है और आप जानते हैं, घर पर मैं जाता नही।"

"ठीक ही करता है, मगर एक बात तू ठीक नहीं कर रहा है। संगत तेरी बहुत गुण्डे और आवारा किस्म के लोगों की हो गई है।"

कामरेड ने कोई जिज्ञासा व्यक्त नही की। वो अब किसी बहाने तुरन्त

चल देना चाहते थे। सुबह-सुबह गलत आदमी के साथ फँस जाने की कड़ुवाहट उनको विचलित करने लगी थी।

"अब तेरी उम्र शोहदों और गुण्डों की सोहवत करने की नहीं रही। खानदान के उसूलों से चला होता, तो आज तेरी दो-चार बच्चों की गृहस्थी होती और किसी छोटे-मोटे होटल का मालिक नहीं भी होता, तो अपने बाप की तरह मैनेजर तो कम-से-कम होता !....अरे अखबार ही निकालना था, शारदा पंडित की शागिर्दी करते। मूवमेन्ट के दिनों में भी एक तरफ गाँधी-नेहरू की फोटो, दूसरी तरफ कलक्ट्रेट-तहसील के इश्तिहार छापता था। आजादी आई, तो बलिदानियों में शुमार है। तराई में फार्म मार लिया। पेन्शन अलग से झाड़ रहा है। तुझे दस-बीस रुपये के लोकल विज्ञापन नहीं मिलते, वह दिल्ली दरबार को दुह रहा है। पाँच सौ छापता है, बीस हजार का कागज का कोटा पास करा रखा है। शाबाश, गाँधी जी की बकरी ! तेरी पूँछ जिस-जिसने पकड़ी, उसी के घर में दूध की गंगा बहा दी तूने।....एक तेरा अखबार है, चाहे तीन महीने में आठ पन्ने छपें, मगर लाल रंग मे 'क्रांतिकारी उत्तरांचल' जरूर छपना चाहिये। आज तक तेरी लाल क्रांति से किसी का एक बाल भी उखड़ा नहीं। तू बुरा मान रहा होगा, श्यामू ! मगर, याद रख, बुजुर्गो का कहना आँवले का दाना होता है। अरे, ओ किसन, कहाँ मरे हो तुम लोग ? श्यामू के लिये जरा कुर्सी तो लगा दो।...और एक कप चाय बनाओ रे ! मैंने तो अभी पी है, श्यामू ! कप-तश्तरी यहीं पडे हैं। तो मैं तुझे बता रहा था कि अभी पिछले अगस्त में शारदा पंडित का 'स्वदेश' आया था—मार इश्तहार-ही-इश्तहार ! वा रे पदरा अगस्त, छब्बीस जनवरी ! इश्तहार-ही-इश्तहार हगती है सरकारें !....तेरा मई में मजदूर-अंक निकला था—एक इश्तहार तेरे भाई गिरीश ने दिया होगा, एक क्लासफैलो हलवाई किशोरी लाल ने। यार, उसी इलाहाबाद युनिवर्सिटी से हमने भी ग्रेज्यूएशन किया था, मगर तेरी तरह लाल झण्डी हाथ में थमाकर घर वापस नहीं आये।....मैं कहता हूँ, अब भी सँभल, श्यामू ! फटीचरी छोड़ कर, कुछ इन्सान बन, यार !"

"यानी आपकी सलाह है कि हरामी बनूं ?" कामरेड ने अपनी पूरी वितृष्णा के साथ कहा, तो दामू वर्मा को लगा, किसी ने चिकोटी काट ली है। गरदन थोड़ा आगे निकाल कर ऊँट की तरह बलबला उठे—"क्यों रे, श्यामू, तेरी निगाह में क्या वह हर आदमी हरामी है जो कमा-धमा के ठाठ, शान और इज्जत के साथ अपने दिन निकाल रहा है ? तेरी निगाह में शारदा पण्डित हरामी है ? लेक-व्यू पैलिस होटल का मालिक यह दामू लाल जी वर्मा, भूतपूर्व चेयरमैन डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड हरामी है ?"

"आप तो हमारे बुजुर्ग हुए, बड़े बाबू !....मगर मेरी नजर में वह हर आदमी हरामी है, जो दूसरों का गला काट करके अपना घर भरने की कोशिश में लगा है। मैं तो उस हर इंसान को हरामी समझता हूँ, जिसे इस मुल्क की समाजी जिन्दगी में कोई दिलचस्पी नहीं है। जिसे इस चीज से कोई वास्ता नहीं है कि जब उसके होटल में लोग शराब के नशे में धुत्त नंगा नाच दिखा रहे होते है, ठीक उसी वक्त, इस गरीबों के मुल्क में हजारों दुध-मुँहे बच्चे रोटी और दवा के बिना दम तोड़ रहे होते है।....मेरी निगाह में वह हर आदमी चोर और हरामखोर है, जो लोगों की जिदगी में हाथ बँटाने की जगह गद्दियों पर बैठा पाद रहा है। ऐसे ही लोग इस शहर को सारे हिंदुस्तान और दुनिया से काटकर कोढियो की जैसी बस्ती बनाये हुये है। यह शहर एक महान् देश की समाजी जिन्दगी का हिस्सा बनने की जगह, मुल्क-भर के हरामखोरों की सैरगाह बनकर रह गया है।....और अगर आप समझते है कि कामरेड सूरज चंद इश्तहारों की गरज में इजारेदारों और काला-बाजारियों की खिलाफत करना छोड़ देगा, तो मैं यह कहने की इजाजत चाहूँगा कि आप अपने भतीजे को बहुत गलत समझ रहे है।"

"आज, यार, सबेरे-सबेरे जाने किस चोट्टे का मुंह दिख गया हमको। होटल का सीजन साला वैसे ही चला गया। कहाँ इस वक्त एडवांस बुकिंग से ही फुर्सत नहीं होती, और कहाँ पागल कुत्ते-जैसी तेरी लाल क्रांती घुस आयी है।....अरे ओ, किशना रे, कहाँ हो गया रे तू अपनी महतारी का

खसम !....एक कप चाय ला कहा था, श्यामू बेटे के लिए !....और, यार, जहाँ तक हमारे होटल के इश्तहार का सवाल है, तू अपने हर 'इश्यू' में छाप लिया कर। एक बीस-पच्चीस रुपये महीने का फालतू खर्च ये भी सही। तू घर का आदमी है। घी गिरा, खिचड़ी में।...,मगर, बेटे, रेट जरा ठीक लगाया कर। हिमांचल मिष्ठान वाला तो, शायद, सिर्फ दस-पंदरा रुपये देता है ? वैसे तो, खैर, मैंने गिरीश से भी कह दिया था कि इश्तहार-फिश्तहार की कौन जरूरत है, भाई का रिश्ता है। दस-बीस रुपये ऐसे ही जेबखर्च के लिए दे दिया कर। इश्तहार दिए का तो दिये में भी शुमार नहीं।....अरे ओ किसना !...."

बातें करते हुए दामू वर्मा इस तरह अलग-अलग मुद्राओं में हो रहे थे, जैसे लगातार चीटियाँ काट रही हों। कामरेड समझ गये कि अब उनकी उपस्थिति दामू को काट रही है। वो बिना कुछ कहे बाहर निकल आये और बाहर पहुँचते ही रामू से हुए वार्तालाप की उत्तेजना राख की तरह अपनी ही त्वचा पर चिपक गई-सी महसूस हुई, और वो तेजी से नगर-पालिका के दफ्तर की तरफ चल पड़े।

चेयरमैन राय साहब का इन्तजार उन्हें ज्यादा नहीं करना पड़ा।

कामरेड पहुँचे, तब बैठक में कुछ लोगों के साथ बैठे होने की सूचना नौकर ने दी थी, मगर जैसे ही उनके नाम की चिट लेकर, नौकर भीतर गया, वो जल्दी ही बाहर आ गये और 'कहिए, कामरेड बंधू, सुबह-सुबह घर पर धावा कैसे बोल दिया ?' कहते, उनके कंधे पर हाथ रखते, बगल के छोटे कमरे में लिवा ले गये—"बैठक में 'मल्टी परपज़' लोगों का जमा-बड़ा है। आपसे एकान्त में बातें करके जल्दी निकल जाऊँगा।"

"जी, राय साहब, ऐसा है कि कुछ बहुत परेशानी की स्थिति मे हूँ। एकाएक कुछ जरूरी खर्च आ पड़ा है। नवम्बर-अंक अभी तक निकल नहीं

पाया है। कम्पोजिटरों को पैसा देना था। इस्यू निकले, तो कुछ राहत मिले। मैं सामान्य तौर पर यहाँ कोठी में न आता, मगर..."

"इश्तहार चाहते हो ?"

"जी, मेहरवानी होती—"

"ऐसी क्या बात है, बंधू ! आप ही लोगों की नगरपालिका है। मैं तो, वस, एक अदना गुमाश्ता हूँ। इस जिले के अंग्रेज कलक्टर को जब मैंने रायबहादुरी का खिताब लौटाया था, तो भी मेरे लफ्ज यही थे कि 'साहब बहादुर, गांधी का चवन्निया सिपाही होना इससे बड़ा ओहदेदार होना है, इसलिए बड़ी पोस्ट पर जा रहा हूँ।' टोडी बच्चा हक्का-बक्का मेरा मुँह देखता ही रह गया।" अतीत की गौरवपूर्ण स्मृति से राय साहब का मुखमण्डल अनायास ही गुलाबी हो आया था और महसूस हो रहा था, उन्हें पान की तलब लग गई है।

कामरेड ने अपने भीतर की खीझ को दबाते हुए, पुनः विनयपूर्वक कहा—"सो तो, राय साहब, कौन आपकी गरिमा से नावाकिफ है।.... जी, मैं एक आवेदन-पत्र लाया था। वहाँ दफ्तर में आप बहुत लोगों से घिर जाते हैं, इसीलिये घर पर तकलीफ दी है। इसी आवेदन पर आदेश कर दें और अग्रिम भुगतान के लिए भी दो शब्द...."

'अग्रिम भुगतान ?....बंधु, यह कैसे हो पायेगा। अभी पिछले ही हफ्ते तो खुद शारदा पण्डित आये थे। मैंने कह दिया, पंडित जी, आप इस देश की बलिदानी परम्परा के स्वतंत्रता सेनानी हैं, आपके सामने मेरी हैसियत क्या है, मगर नियम की बंदिश में हूँ। बोर्ड के मेम्बरों ने यह कायदा बना दिया है कि अग्रिम भुगतान नहीं होने चाहिए। अब मेरा खुद का कायदा हो, तोड़ भी दूँ—मगर जनता के प्रतिनिधियों का बनाया हुआ कायदा..."

'का-य-दा' पर जोर देते हुए, राय साहब रुक गये और वापस जाने की तैयारी में दिखने लगे, तो कामरेड ने बुझे हुए स्वर में कहा—"तब, ठीक है, आप विज्ञापन दिये जाने का आदेश ही कर दें...."

'जरूर-जरूर !' कहते हुए राय साहब ने शेरवानी की जेब से कीमती बॉलपेन निकाल लिया—आजकल पालिका-चेयरमैन की तरफ से 'वार फण्ड' की सहायता के लिये जो इश्तहार दिया जा रहा है, वही आप भी छाप लें। वैसे उसका मैटर आपने 'स्वदेश' के पिछले इश्यूज में देखा ही होगा। अब इस ऑफ सीजन में चुंगी मिलनी भी तो बंद हो गई। राष्ट्र इस वक्त बहुत गहरे संकट में फँसा हुआ है। चीनी अजगर हमारे देश की महान् सीमाओं को निगलता चला आ रहा है...."

"माफ कीजिएगा, राय साहब, उस इश्तहार को मैं छाप नहीं पाऊँगा अपने अखबार में।"

"क्यों ?"—राय साहब का चेहरा ऐसा हो आया, जैसे घोड़े की पीठ पर मक्खी बैठ गई हो।

कामरेड सिर्फ पैसों की तलाश में ही घर से निकले थे। अग्रिम भुगतान की बात को जिस शातिर और झूठे तरीके से टाल दिया गया था, उससे उन्हे सिर्फ विक्षोभ हुआ। ऐसे अवसरों के लिए 'रिजर्व' में रखी रहने वाली मुद्रा में अपने-आपको करते हुए, नितान्त सटीक ढंग से बोले—"क्योंकि इस तरह के इश्तहार अश्लील, राष्ट्र तथा समाज-विरोधी और जनता के साथ दगाबाजी के अलावा और कुछ नहीं होते। चंदा उगाहने वालों ने इस देश की आत्मा को बेचकर रख दिया।"

"अफसोस ! अफसोस की बात है, कामरेड, कि इस राष्ट्र-सेवा के परम पुनीत कार्य को आप इतने गन्दे किस्म के लफ्जों में तौहीन कर रहे हो।....जिस वक्त चीनी दरिन्दों के हमले के खिलाफ सारा राष्ट्र आपसी मतभेदों को भुलाकर तन-मन-धन से जूझ रहा है...."

"माफ कीजिएगा, राय साहब ! यह देश सचमुच ही अपने दुश्मनों से अपने पूरे तन-मन-धन से जूझता होता, अगर इस देश के पॉलिटिकल धूर्तों और कालाबाजारियों ने ऐसा मुमकिन होने दिया होता।"

"यानी चीन और पाकिस्तान के साथ पूरी ताकत से लड़ने से जनता को हम पालिटिशियन लोग रोकते हैं ?"

को एक साकार मुहिम की तरफ मोड़ा है। इसमें विफल हो जाना जिन्दगी में अन्तिम रूप से आकांक्षा-विहीन हो जाने की दिशा में भी धकेल सकता है। लक्ष्मी की टूटन से सँभलते-सँभलते इतना वक्त लग गया और यह खिसियाहट भीतर से उजाड़ कर देगी। अपने भीतर जिस आर्द्रता में से तमाम बाहरी तकलीफों को सह ले जाना सम्भव होता है, वह भीतरी सोता ही सूख गया, तो फिर मुश्किल होगा। झख मारकर, यह शहर छोड़ भाग जाना पड़ेगा और पीठ पर लोगों की व्यंग्य-भरी नजरों से गहरे घाव होंगे, जो जिंदगी-भर नहीं भरेंगे।

कामरेड कुछ क्षणों को खाली पड़ी सड़क के किनारे थमे ही रह गये। उन्होंने महसूस किया कि आंखों में तेज जलन हो रही है और रिशन हो आई है।

थोड़ी देर विश्राम करके, कामरेड उत्तरी छोर वाली बाजार की तरफ मुड़ गये। हिमांचल मिष्ठान भण्डार में पहुँचे, तो किशोरीलाल वहाँ मौजूद नहीं था। किसी तरह उन्होंने गल्ले पर बैठे मदन लाल ने कहा कि आधा किलो मिठाई बाँध दे, तो उसने यों ही पूछ लिया—"उधार तो नहीं चाहिये, कामरेड साहब ?"

कामरेड बुरी तरह विचलित हो गये और एक क्षण भी रुके बिना तेज कदमों से अपने डेरे की दिशा में मुड़ गये। उन्हें लगा कि भीतर से उन्हें हौलदिली अनुभव हो रही है। दम फूल रहा है। कहीं ऐसा न हो कि चक्कर खाकर गिर पड़े।

अनियमियत भोजन और रहन-सहन तथा लगातार चाय और बीड़ी के सेवन ने शरीर को भीतर से खोखला कर दिया है। एक वक्त था, जब अपनी पूरी ताकत से घण्टों बोलते और तेज कदमों से दूसरों का साथ चलना मुश्किल कर देते थे और फिर भी सांस नहीं फूलती थी। अब, आदतन तेज चलना और जोर से बोलना, जानलेवा मालूम पड़ने लगा है।

इस वक्त उन्हें सिर्फ इतना सूझा कि किसी भी तरह घर पहुँच लेना चाहिये। सड़क से नीचे उतरकर, घर के नजदीक पहुँचे ही थे कि सीढ़ियों पर से नीचे उतरता राजशेखर दिख गया।

'हैलो, कामरेड दद्दा! सुबह-सुबह भाभी जी को घर में अकेले छोड़कर कहाँ निकल गये थे आप?' कहते हुए नजदीक पहुँचा, तब उसका चेहरा प्रसन्न था, मगर पसीने में लथपथ, लगभग बदहवास कामरेड को देखते ही उसे चिंता ने जकड़ लिया। वह तेजी से आगे बढ़ा। कामरेड ने कोशिश की कि 'हैलो, शेखर, घर से चले आ रहे हो, भाई!' कहें, मगर सिर्फ मन में ही सोचकर, रह गये। हाँफ चढ़ी होने से बोला नहीं गया।

शेखर ने उनके हाथ में थमा झोला अपने हाथ में लिया, तो पाया कि अपने आकार के अनुपात में काफी भारी है, और कामरेड की हथेली पर खून की झाँई-सी उतर आई है।

कामरेड को सहारा देकर, कमरे तक लाया और बिठाया, तो सरस्वती का चेहरा उन्हें देखते ही विवर्ण हो गया—"हाय राम जी, इन्हें क्या हुआ है?"

उसने अपने आँचल से कामरेड के माथे और मुँह पर का पसीना पोंछा। जल्दी से पानी लेकर, बड़े जलन और हलके हाथों से मुँह और माथा धो-पोंछ दिया। बड़ी तेजी से मन में आया कि चाय बनाकर देनी चाहिये, मगर तुरत सिर्फ उदास होकर रह गई।

शेखर ने कामरेड को ठीक से बिठाकर, थैला एक कोने में रख दिया था। दिन खुला होने से धूप के टुकड़े कमरे में जगह-जगह चटाई के टुकड़ों की तरह बिछे हुए थे।

कामरेड ने जैसे ही कुछ शांत होकर, 'माफ करना, यार शेखर, जरा दूर तक चक्कर लगा आया और आदतन तेज चला—एकाएक थक गया। बुरी तरह। खैर, अब ठीक हूँ।' कहा ही था कि 'नहीं, अब परेशानी की कोई बात नहीं। मैं बड़ी देर से यहाँ बैठा भाभी से गप्पें लड़ा रहा था और मुझे बहुत देर हो चुकी है। मम्मी ने कुछ जरूरी सामान मँगाया है

और मैं अब चलूंगा। शाम या कल सुबह किसी वक्त फिर जरूर आऊँगा—भाभी के हाथ की चाय पीने।' कहता शेखर तेजी से उठ खड़ा हुआ और दीवार के साथ टिके कामरेड की बुशशर्ट की ऊपरी जेब में कुछ ठूंसता, निहायत तेज कदमों से सीढ़ियां उतरता—सामने सड़क की ओर चल पड़ा। कामरेड ने बैठे-बैठे ही गर्दन मोड़कर बाहर की तरफ देखा, वह देखते-देखते आंखों से ओझल हो गया।

सरस्वती परेशान और चिंतित बगल में बैठ गई थी। अपने मुंडे सिर पर अब वह हर वक्त धोती का पल्लू किए रहती है। कामरेड ने अत्यन्त आत्मीय ढंग से उसकी तरफ देखा और फिर जेब में हाथ डालकर शेखर ने जेब मे क्या ठूंस दिया जल्दी-जल्दी में, इस जिज्ञासा से देखने की कोशिश की—सौ रुपये का नोट था।

कुछ क्षण कामरेड उस नोट को देखते ही रह गए और फिर अपना सिर दीवार से टिका लिया। गहरी थकान मे डूब जाने की सी अनुभूति में उन्होंने अपनी आँखों को बन्द किया, तो आंसू झर-झर बहते ही चले गए।

● ●

१२

माताओं की टोली रामगढ़ी की दिशा में जा रही थी।

अभी वो लोग थोड़े फासले पर ही थी कि ध्यानी ठाकुर ने छड़ी टेके खड़े शारदा पण्डित की ओर झुककर, आवाज थोड़ा दबाकर, कहा—"सम्पादक महाराज, कुछ पता है आपको, ये भगवतियाँ कहाँ से वापस लौट रही हैं?"

शारदा पण्डिल ने पान के वीड़े को एक कोने मे करते हुए, जिज्ञासा व्यक्त की, तो उसने रहस्य-भेदन की सी मुद्रा में कहा—"भगतनें कामरेड श्यामू के डेरे से लौट रही हैं!"

"कुछ खुलासे में कहो, ध्यानी! तुम्हारे कहने से बात गहरी लग रही है, मगर हमें सचमुच कुछ इल्म नहीं कि इन भगवतियों पर तुम्हारी नजर क्यों गड़ी है?"

"सम्पादक शिरोमणी जी, मैंने उस दिन भी अर्ज किया था कि जब मालिक सोते हों, कुत्ते को जागना पड़ता है। मै गरीब आदमी ठहरा। मेरी नजर तो हर वक्त सिर्फ चूने-कत्थे की इन घंटियों में गड़ी रहती है। .... मगर, शिरोमणी जी, ये हद ही है कि आपके बिरादर श्यामू कामरेड ने सरस्वती माता को घर बिठा लिया है और आपको अभी तक हवा नहीं लगी?

शारदा पंडित के हाथ से छड़ी फिसलकर, नीचे गिर गई। जैसे छड़ी गिरने की आवाज में से ब्रह्म बोला हो, शारदा पंडित ने अपने-आपको चैतन्य अनुभव किया।

जब तक में ध्यानी पनवाड़ी से शारदा पंडित ने सारा मामला समझा, तब तक मे माताओं की टोली आगे निकल गई। शारदा पंडित उन्हें बहुत गौर से देखते रहे, जैसे गोधूलि मे वापस लौटती गायों के झुण्ड को देख रहे हों। संख्या में वो कुल पांच थी, मगर अपने जोगिया वस्त्रों में संघबद्ध होने की प्रतीति दे रही थीं।

माताओं की तरफ से आँखें हटाकर, शारदा पंडित बोले—"आजकल कुंवर साहब शहर मे आये हुए है। आज शाम को 'विश्रांत' मे 'डिनर' है कुछ लोगों का। कुंवर साहब को जिला परिषद् के लिए खड़ा करने का निश्चय किया है हम लोगों ने। वही इन लोकल मसलों पर भी बातचीत हो जायेगी।"

"आज मुद्दतों के बाद फिर आपके चेहरे पर रूप उतर आया है। यह छवी आपकी सिर्फ पंदरा अगस्त सैंतालिस को देखी थी हमने। इस शहर को आप-जैसे तपस्वी और त्यागी सुधारकों की ही जरूरत है। आपकी जगह कोई दूसरा होता आजादो की लड़ाई का इतना बड़ा बस्ता पीठ पर लादे, तो खुद चेयरमैनी का इलेक्शन लड़ता।"—कहते हुए, ध्यानी पन-वाड़ी ने प्रणाम की मुद्रा में मस्तक झुका लिया।

शारदा पंडित ने अनुभव किया, चुपचाप आगे निकल चलना चाहिए।

यह लगभग दोपहर-बाद का वक्त था। सर्दी कम थी। शारदा पंडित अपने 'स्वदेश' कार्यालय की ओर चले जा रहे थे कि उन्हें शेखर सामने से आता दिखाई दिया। शारदा पंडित, पीक थूकने के बहाने, एक किनारे हो गये।

राजशेखर पहुँचा, तब कामरेड अपनी पुरानी मेज के सामने बैठे कुछ लिखने मे लगे थे और वह उन्हीं के नजदीक गेहूँ बीनने मे लगी थी।

दरवाजा खुला पड़ा था, मगर फिर भी वह बाहर ही रुक गया। शेखर का रुकना कामरेड को तो नहीं, मगर उसे मालूम पड़ गया और वह

असावधान रहते में सिर पर से खिसकी धोती के पल्लू को सिर पर करती, सँभलकर बैठती, धीमे से बोली—"सुनो जी, भैया जी, आये हैं।"

कामरेड लिखना छोड़ तुरन्त पलटे, मगर उठने से शेखर ने रोक दिया—"बैठे रहें, दद्दा!"—और पास मे ही पड़ी लोहे की कुर्सी पर बैठ गया। हाथ में थमा पैकेट उसने धीमे से मेज पर रख दिया—"भाभी जी के लिए है, आपके लिए नहीं।"

"यह क्या, शेखर भाई, बोझ से इस गधे को लादे ही चले जाओगे? ये तो हम खुद ही समझ गए होते, यार, कि इन्हीं महाशया के लिए होगा—हमारी औकात तो ज्यादा से ज्यादा एक बीड़ी के बण्डल और एक दियासलाई की बनती है।"

कामरेड ने कहा मुस्कुराते हुए ही, मगर मन का विषाद छिपा नहीं।

"मै अगर जानता, कामरेड दद्दा, कि इससे आपके—मेरे बीच फासला आ जायेगा, तो शायद, हिमाकत करता नही। मैं इस गलतफहमी में था कि आपके काफी नजदीक हो चुका हूँ।"

कामरेड समझ गये कि उसके कहने में आत्मीय किस्म का उलाहना—भर है। वो खुद महसूस कर रहे थे कि उनके बोलने में कुछ औपचारिकता आ गई है।

कलम एक ओर रखकर, उन्होंने स्नेह के साथ राजशेखर के हाथों को अपने हाथो में ले लिया। बोले—"शेखर मै शायद बहुत रूखा आदमी हूँ, मगर यकीन मानो, मैं अभी तक भी तुम्हारे प्रेम के बोझ से हलका नहीं हो पाया हूँ। मैं तुम्हें बता नहीं सकता कि कल कैसी तंगदस्ती की मनःस्थिति में घर से बाहर निकला था और कितनी फजीहतें उठाकर वापस लौट रहा था। तुम मेरी हालत देख रहे थे ना? लेकिन वह सिर्फ मीलों पैदल चलने की थकान नहीं थी। कभी-कभी जिन्दगी में ऐसे भयानक क्षण आ जाते है कि इन्सानियत पर से ही विश्वास उठने की नौबत आ जाती है। मुझे जितना ताऊ जी और राम के गलीज व्यवहार ने नहीं तोड़ा, किशोरी के छोटे भाई मदन के सलूक ने तोड़ दिया। पहली दोनों जगहों से मैं अपनी

खुद्दारी को बचा के लौट आया था, मगर दोस्त के भाई द्वारा सिर्फ आधा सेर मिठाई के लिए की गई फजीहत मुझसे बर्दाश्त नहीं हुई। जो आदमी खुद अपने माँ-बाप की 'इनह्यूमेनिटी' से गुजर चुका हो, उसे समाजी चोरों की हैवानियत नहीं तोड़ सकती, मगर मदन के क्रूर मजाक ने मुझे पहली बार इस चीज का अहसास कराया कि अपनी तंगदस्ती और बदहाली के चलते मैं फजीहत के किस शर्मनाक मुकाम तक पहुँच चुका हूँ। चाहता, तो मैं भी मौज की जिंदगी गुजार सकता था, शेखर, मगर मैंने अपने-आपको इस मुल्क के शोषित-पीड़ित आदमी की नियति के साथ जोड़ने का इरादा किया।...हालांकि मैं कल सचमुच बहुत बदहवास और विचलित हो चुका था। अपनी जिन्दगी को अपने ही लिये हिकारत की चीज महसूस करने से बड़ी तकलीफ और कुछ नहीं, शेखर!...और, मेरे भाई, मुझे इस बात के लिये अपना शुक्रगुजार होने दो कि इस तकलीफ में बौखलाकर अपनी ही नजर में खुद गिर जाने के हादसे से तुमने मुझे बचा लिया।...मैं जब तक एक रौ में बोलता जाऊँ, प्लीज, मुझे रोकना मत।...सवाल इस बात का नहीं कि तुमने मुझे सौ रुपये दिये। मेरे दिमाग में तुम्हारी तस्वीर उस वक्त भी कौंधी थी, जब मैं सोच रहा था कि आखिर इस नाजुक मौके पर कहाँ से मुझे कुछ पैसे मिल सकते हैं। मुझे तुम्हारी परेशानियों के बीच यह सब शोभनीय नहीं लगा, मगर यकीन मुझे था, तुम इन्कार नहीं करोगे।...मैं ईश्वरवादी कत्तई नहीं, मगर ये अपने अनुभवों से मैंने जाना है कि जिन्दगी में कई मौके ऐसे आते हैं, जब अपने पूरी तरह से परास्त हो जाने के मौकों पर एकाएक पता चलता है कि किसी ने अपनी संवेदना से हमारे प्राणों को स्पर्श किया है। कल तुम गये हो, मैंने अपनी जेब में हाथ डाला है—और मुझे एकाएक लगा, मेरी अँगुलियों में जैसे तपते रेगिस्तान में राहत देने वाला कोई पेड़ उग आया है। कल से मैंने दो कीमती बातों को जाना है। एक, कि जिस फजीहत और तंगदस्ती से मुझे गुजरना पड़ा है—उस हर आदमी की सिर्फ यही नियति हो सकती है, जो इस मुल्क की मिट्टी और समाजी जिन्दगी के प्रति अपना हक अदा करना

चाहता है और इससे घबराना, अपमान महसूस करना अपने-आपको एक सही इन्सान बना सकने के संघर्ष से काटना है।—और दूसरी यह, कि आदमी के भीतर की अच्छाई के साक्षात्कार से बड़ी कोई नियामत नहीं इस दुनिया में। और मुझे कहने दो कि मैं अपनी इस समझ के लिये तुम्हारा बहुत शुक्रगुजार हूँ और जो फासला तुमने मेरी बातों से महसूस किया है, वह तुमसे कुछ दूर हो जाने का नहीं, तुमको अपने समूचे अस्तित्व में महसूस करने लगने का है।....जिन्दगी में पहली बार मेरी आँखों से इतना जल बहा है कि उसमें मेरे भीतर तक की गर्द धुल गई है।"

कामरेड की आँखों से आँसू बह रहे थे, मगर चेहरे पर कहीं तनाव नहीं था। शेखर ने पाया कि उसके सिसकने की आवाज कानों तक आ रही है। वह अपनी ही जगह पर बैठी थी और मुँह पर पल्लू कर लेने से उसका सिर अधखुला हो आया था।

उसे लगा, वातावरण बहुत भारी हो गया है। एकाएक ही उसने कहा—"भाभी जी के लिये मैं धोती-ब्लाउज तो ले आया, मगर 'विग' लाना भूल गया।"

अब कामरेड भी पीछे मुड़े। अपना मुंह तौलिये से पोंछा और सरस्वती की ओर देखते बोले—"नहीं, इनके लिये 'विग' हर्गिज नहीं खरीदना है। तुम तो पहाड़ों पर काफी रहे हो, शेखर! यहाँ के तीज-त्योहार, सब तुमने देखे हैं। यहाँ टोकरी में मिट्टी भरकर हरियाली बोई जाती है ना? मैं चाहता हूँ, इस मिट्टी की हाँडी पर हरियाली के अंकुरों का उगना और बढ़ना देखूँ। जैसे मछुआरे अपने को डूबने से बचाने के लिये कमर में मूंज की रस्सी बाँधकर गहरे पानी में उतरते हैं, ठीक ऐसे ही, अपने-आपको खत्म हो जाने से बचाने के लिये मैंने इस औरत का सहारा लिया है। मैंने तय किया है कि एक पल को भी मुझे यह नहीं भूलना होगा कि मैं इस औरत का अहसानमंद हूँ। जानते हो, आज सुबह-सुबह इस औरत ने क्या कहा मुझसे मजाक में? कहने लगी कि 'तुम्हारे घर से जितने बीड़ी के टुकड़े निकले हैं झाड़ू लगाने में, इतने अनाज के दाने नहीं।'....और

यह सब कहते हुए इस औरत के चेहरे पर, इसकी आंखों में ठीक वैसा ही भाव था, जैसा खेत जोतते और सींचते, बीज बोते वक्त किसानों में होता है। बंजर में भी भविष्य को देखना—यह सिर्फ इंसान के ही हिस्से में है, शेखर !....और, प्यारे, मैं कहना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तानी औरतों का कोई जवाब नहीं है। जैसी मारक जिंदगी जीने के बाद भी ये रेगिस्तान के ऊँट की तरह अपने में करुणा बचाये रहती हैं—ये हद है।"

"सब औरतें नहीं।"

शेखर के इस संक्षिप्त-से कथन और एकाएक किंचित् सख्त हो आये चेहरे को देखते ही कामरेड ने समझ लिया कि बात क्या है। बोले—"बेशक, सभी औरतें नहीं।"

'भैया जी मैं चाय बनाऊँ। सुबह आपको चाय भी नहीं पिला सकी।' कहती, वह उठ खड़ी हुई और अब पहली बार शेखर ने देखा कि कमरे की बगल में जो छोटी-सी स्टोरनुमा, निहायत अपर्याप्त-सी जगह थी—और रद्दी सामानों की वजह से जो पहले यह प्रतीति भी नहीं देती थी कि जगह है—एक संक्षिप्त, किन्तु पर्याप्त रसोईघर का आभास दे रही है।

"मैं जब कल सुबह आया था, आप जा चुके थे। मैंने दरवाजा खट-खटाया, तो एकाएक चूड़ियों के बजने की सी आवाज सुनाई पड़ी।...."

"जब ये आई थीं, इनके हाथों में सिर्फ लकड़ी के कड़े थे। रात मुझे इनकी चूड़ियों के लिए शबनम स्टोर्स जाना पड़ा और झूठ बोलना पड़ा कि भाभी जी ने मँगवाई हैं।....लेकिन इनकी जिद थी कि नहीं, चूड़ियाँ आज ही पहनूंगी।....और सिन्दूर भी। देखा होगा तुमने, कैसी हांडी के ऊपर रांगोली रचे बैठी है।"

"मगर आप तो इन सब चीजों को गैर-जरूरी...."

"अपने लिये समझता हूँ। दूसरों पर जबरदस्ती अपनी रुचियों को लादना ठीक नहीं। इससे सिर्फ़ अप्रसन्नता पैदा होती है।"

"मैं आपसे यह कहने जा रहा था कि मैं बुरी तरह चकित हुआ। एक तो सुबह का वक्त, दूसरे मैं कल आपके यहाँ से वापस जाते में एक झलक

इन्हें बौद्ध भिक्षुणी की मुद्रा में बाहर खड़ी देख चुका था—और बड़ी बात ये कि इनके चेहरे, इनकी आँखों और दरवाजा खोलने के बाद की मुद्रा में एक सम्पूर्ण गृहिणी की सी गरिमा मौजूद थी।....मुझे कहना चाहिए कि मैं बाकायदे स्तम्भित हुआ। सन्ध्या-पूर्व की बौद्ध-भिक्षुणी को सुबह-सुबह ही गृहिणी के रूप में देखना सचमुच कुछ अलौकिक-सा लगा।....आप मेरा शुक्रिया अदा करने में लगे रहे और मैं आपको यह बताना चाहता था कि जिस तरह की मनःस्थितियों में मैं जी रहा हूँ, उसमें जीवन के इस स्वच्छन्द और मुक्त स्वरूप को देखना, और इसमें खुद थोड़ा-सा हिस्सा ले पाना, यह सब खुद मुझे कितना सौभाग्यपूर्ण लग रहा है। लगातार-लगातार की घृणा, आत्मग्लानि, प्रतिहिंसा और मानसिक हाहाकार के बीच एक मम्मी, और फिर आपका स्नेह—मैं अभी तक पूरी तौर पर खत्म नहीं हो चुका हूँ, तो ये ही वजहें हैं।....एक चीज कल मैंने भी जानी है, कामरेड दद्दा! देना अगर दूसरे पर अहसान करना है, खुद को उपकृत करना नहीं, तो फिर वह निहायत तुच्छ चीज है।"

"यार, तुम तो ऋषिवाणी बोलने लगते हो....।"

"सोहबत का असर है।...."

"किसकी? मीना दुबे की? यार, तुम मानोगे नहीं, मगर मैं कहना चाहता हूँ कि जितना तुम्हें उस लड़की के प्रेम ने नहीं दिया, उससे कहीं ज्यादा, बहुत ज्यादा उसकी बेवफाई और बेरुखी दे रही है। और जिसे तुम खुद विश्वासघातिन कहना ज्यादा पसंद करते हो,....उसके प्रेम ने तुम्हें क्या बनाया, सिर्फ आर्मीमैन?....और बेरुखी तुम्हे ऋषी बना रही है। तुम्हें, शायद, अहसास न होता होगा। तुम्हारी भाषा बिलकुल मँजे हुए लेखकों की जैसी होती जाती है।....वो जो व्यक्तिवादी लेखक कहा जाता है हिंदी का, अज्ञेय—उसकी कविता की एक पंक्ति है, 'दुख सबको माँजता है।'....और इस तरह की ऋषिवाणी आदमी में से तभी फूटती है, प्यारे, जब वह वास्तव में दुखों में मँजा हो।....हाँ, यार, तुम्हारी वो डायरी क्या हुई? मैं पढ़ना चाहता हूँ, अगर तुम्हें एतराज न हुआ।....और तुम्हें

सलाह देना चाहता हूँ कि तुम मैगज़ीनों में भेजना शुरू करो। सम्पादकों से कुछ तो पुराने रसूख तुम्हारे बाकी होंगे ही ? 'धर्मयुग' में मैंने तुम्हारे लद्दाख वाले 'ट्रैवेलाग' देखे थे।... काश कि मैं खुद किसी बड़ी 'मैग़जीन' में होता।....हालांकि, प्यारे, यह लिखने-पढ़ने का काम साला शुद्ध अंतः-प्रेरणा की ही चीज है।"

"आप खुद बहुत अच्छे लेखक हो सकते हैं....।"

"नही, भाई ! मैं अपनी सीमाओं को जानता हूँ। 'क्रिएटिव राइटिंग' मेरे बूते की चीज नहीं। मैं बहुत सोचने वाला और किताबी किस्म का आदमी हूँ। मेरी चित्तवृत्ति रचनात्मक नहीं है। मैं धुनकी टाइप का आदमी हूँ और चीजों को फानने में लग जाता हूँ। समाज की सोशियो-हिस्टारिकल पड़ताल की जो दृष्टि मैंने मार्क्सवादी लिट्रैचर से हासिल की है, वह हकीकतों पर कल्पना का रंग-रोगन चढ़ाने की छूट नहीं देती और 'क्रिएटिव राइटिंग' कहीं-न-कहीं कल्पना की माँग करती है। बल्कि बड़ी कल्पना हकीकत से ज्यादा मूल्यवान किस्म की चीज होती है, क्योंकि वह हकीक़तों को दिमाग का बोझ नही बनाती, उन पर आकाश बन जाया करती है—एक अनंत आकाश ! दुनिया के जितने भी 'क्लासिक्स' हैं, उनमें यह खूबी जरूर मिलेगी। हाँ, तुममें एक अच्छा 'क्रिएटिव राइटर'—बल्कि मैं कहूँगा कि फिक्शन-राइटर बनने की भरपूर गुंजाइश है। तुम्हारे भीतर प्रभूत संवेदना है, शब्दों की तमीज है और लबालब जिजीविषा है...."

"प्रार्थना करिए कि अगले जन्म मे ऐसा ही लेखक बनूँ।"

"क्या बात करते हो, यार ! तुम नामी लेखक बनोगे और खुदा ताला की मेहर से इसी जन्म में बनोगे।....मैं 'जर्नलिज़्म' कर सकता था, और काफी प्रभावशाली 'जनरलिज़्म' कर सकता था, मगर उस तरह के अखबार नहीं है। अखबार या तो पूँजीपतियों के हैं और या पार्टीबाजों के और इस मुल्क की नियति से इनमे से किसी का कोई सरोकार नहीं।"

"क्या यह बात अपनी कम्यूनिस्ट पार्टी के बारे में...."

"मेरी ? तुम्हारी जानकारी के लिए, शेखर, मेरा किसी कम्युनिस्ट

पार्टी से दूर-दूर का कोई वास्ता नहीं। मेरे 'एटीटयूड', मेरी बातों से यहाँ के चंद लोगों ने और मेरे घर वालों ने बातें जरूर उड़ा रखी हैं। हाँ, अपनी 'स्टूडेन्ट लाइफ' से ही मैं वामपंथी विचारधारा से लगाव महसूस करता रहा हूँ। उस तरह के मेरे दोस्त भी रहे हैं और मैंने शुरू के दिनों में डेली पेपर्स मे जनरलिस्ट की हैसियत से कुछ दिन काम भी किया है। खैर, इस लम्बे मसले पर फिर कभी बातें होंगी। पहले चाय पी लें। तुमने ये नहीं बताया कि वो मास्टरनियाँ ओकवुड गई थीं, उन्होंने मिसेज मैठाणी से क्या बातचीत की ?"

"कोई खास नहीं, फिर कभी बताऊँगा। भाभी जी को आपने मेरे बारे में आगाह कर दिया है न कि मैं बहुत गलत और खूंखार किस्म का आदमी हूँ ?"

"भई, शेखर, प्लीज ! तुम यह 'सेल्फ-टार्चरिंग' का सिलसिला बिलकुल बन्द कर दो। मेरे सामने तो बिलकुल नहीं।....ये बेचारी सीधी, गँवार औरत हैं। आधी उम्र दिशाहीन भटक कर, इस कंगले के घर आई हैं। इसे नाक-भौं सिकोड़ने का वक्त है ? मैंने आज तुम्हारे चले जाने के बाद कुछ बातें बताई थीं, मोटे तौर पर।—और जानते हो, ये क्या कह रही थीं ?"

"................"

"ये कह रही थीं, भैया जी अभी पौदा हैं, उन्हें पेड़ होना है।"—कहते-कहते, कामरेड ने उसके सिर पर हाथ रख दिया। वह संकोच के मारे अपने में सिमटकर रह गई।

कामरेड बोले—"प्यारे, यह बात भी 'क्लासिक्स' के आस-पास की चीज है। ज्ञान सिर्फ़ किताबी चीज नहीं है, ये जिन्दगी से गुजरने पर ज्यादा हासिल होती है।"

"खैर, इतना तय है कि ये सामान्य औरत नहीं हैं। सुबह थोड़ी ही देर में इन्होंने मुझे बेबाक कर लिया। कहने लगीं, 'भैया जी, हम जिन्दगी-भर प्यासी चलती आई हैं। पहले हमने अपने को होम करने का फैसला

कर लिया है, तब यहां टिकी है ।'...ईश्वर को न मानिए, प्रकृति को तो मानना ही पड़ेगा। जैसी आपकी 'पर्सनेलिटी' है और जो आपकी परिस्थितियां है, मानसिक बनावट है—लगता है, प्रकृति लगातार देखती रही है और तब यहीं बहुत सावधानी से गढ़कर, और पूरी तरह 'इक्जेमिन' करके इनको आपके करीब भेजा है ।"

"तुम ठीक कहते हो, शेखर ! शायद, ये मुझे और मेरे साथ रहने की तकलीफों को बर्दाश्त कर ले जायेंगी ।"—कामरेड के कहने में गहरी संसक्ति थी और उनका इस वक्त का चेहरा देखकर, यह कल्पना करना कठिन था कि सुबह यही व्यक्ति था, जिसके चेहरे पर मौत के वक्त का सा स्याहपन पसरा था ।

"कहो, चाय कैसी लगी ?"

"नशीली महसूस हो रही है—लगता है, भाभी जी ने बौद्ध धर्म की अफीम मिला दी है इसमें ।"

"अरे, भई, ये सनातन धर्मी संन्यासिनी रही है—बौद्ध भिक्षुणी नहीं !"

"अपने बाहरी 'आउट-लुक' में तो ये बिलकुल बौद्ध भिक्षुणी लगती है । कल शाम ये मांगने वाली की तरह खड़ी थीं सीढ़ियों के पास—और आज सुबह देने वाली की तरह दरवाजा खोला था इन्होंने !"

"तुम्हे भी कुछ दिया ?"—कामरेड का सामान्यतया रूखा दिखने वाला चेहरा मजाक की कौंध से भर गया—"हमको भी ये 'भैया जी' ही कहती थीं और हमें बहुत-कुछ दिया है !"

"बहुत-कुछ कहकर, आप दिये हुए को कम करके बता रहे है, कामरेड दद्दा !........बहुत-कुछ नहीं, सब-कुछ कहिये । स्त्री में यह गरिमा सर्वस्व देने के बाद ही आ सकती है, कि वह भूखी-नंगी रहकर भी पुरुष के संघर्ष में हाथ बँटाने को तैयार खड़ी दिखाई पड़े । ऐसा अपूर्व प्रेम अगर मीना से मुझे मिला होता........"

"तो तुम्हारा कुछ होता-जाता नहीं, शेखर ! ज्यादा से ज्यादा तुम

अब तक एक-दो गोल-मटोल बच्चों के बाप बन गये होते। वह एक बड़ी औरत की लड़की है, मगर माँ पर वह गई नहीं।"

"खैर, मैं भी उसको ऐसा सबक सिखाऊँगा........"

"शेखर, प्लीज़, इस वक्त तुम यह चर्चा छोड़ दो। हम लोग कभी देर तक आपस मे बातें करेंगे और मैं कोशिश करूँगा कि अपनी बात को अंतिम रूप से कह सकूं। उसके बाद फिर कभी तुम्हारे इस अफेयर में दखल न दूंगा।"

"मुझे अफसोस है। मैं बहुत जल्दी उत्तेजित होने लगता हूँ। आप कुछ लिख रहे थे, मैं अब चलूं। डिसटरबेन्स होगी—।"

कामरेड ने उसका हाथ पकड़ लिया—"अरे, यार, कौन ऐसा दस्तावेज लिखना है। हर बार किसी 'टॉपिक' को लेकर 'एडीटोरियल लिखने बैठता हूँ और पता चलता है कि वक्त निकल गया, मगर अखबार जहाँ-का-तहाँ। तुमसे कुछ छिपा तो है नहीं। आज जो 'टाइप' मैं ले गया था थैले में, दो कम्पोज किये गये पेज भी उखाड़ ले गया था।....और कुछ सूझा ही नहीं, हालाँकि घंटों सिर्फ बोझ ढोकर रह गया। बेचने की हिम्मत नहीं पड़ी। लगता रहा, जैसे किसी दूसरे की अमानत चोरी कर लाया हूँ। आज से लगभग आठ साल पहले जब मैंने 'उत्तरांचल' शुरू किया था—कैसा उत्साह था मेरे मन में। तब ट्रेडिल भी लगाई थी। आखिर मशीन बिक गई, सिर्फ कम्पोजिंग रह गई। टाइप दुबारा खरीदा नहीं जा सका, घटता ही चला गया। जनवरी के लिये 'प्लान' किया गया 'इश्यू' अगस्त-सितम्बर में निकलने लगा। डिक्लियरेशन, कागज का कोटा, पोस्टल रजिस्ट्रेशन, डी० ए० वी० पी०, प्राविंशियल गवर्नमेन्ट के कभी-कभार मिलने वाले विज्ञापन—सब बन्द हो गये। कुछ अरसा कासगंज-बरेली, और लोकल किस्म के टुटहा विज्ञापन छापकर काम चलाया—अब वह भी ठप हो गया।—मगर जब भी कोई 'क्राइसिस' का पीरियड आया, मैंने टिप्पणियाँ जरूर लिखीं। जूट प्रेस के अखबारों में वो छप नहीं सकती थीं।—पार्टी-मेम्बर मैं था नहीं।....बल्कि मेरा विचार यह बन गया कि

हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी की सूची में सामाजिक क्रान्ति की दिशा में किसी भी तरह की कारगर पहल का दूर-दूर तक कहीं कोई वजूद नहीं है। मैंने कुछ दिन इलाहाबाद की 'सीप फ्लैश लाइट इंडस्ट्रीज' की मैगजीन 'मजदूर' में भी काम किया—मगर वहाँ नजदीक से देखा गया कि मार्क्सवादी ट्रेड यूनियन लीडरों का सारा उद्यम सिर्फ मजदूरों के इस्तेमाल तक सीमित है। ये हिन्दुस्तान के ट्रेड-यूनियन लीडरों और वामपंथियों का ही कमाल है, दोस्त, कि इस देश के मजदूर-वर्ग का अपने देश की समाजी जिन्दगी से कोई सरोकार बन ही नही पाया है। जैसे तांगे के घोड़े की आँखों मे झाप लगा दी जाती है—मजदूरों की सारी चेतना सिर्फ एक ही मुद्दे पर केन्द्रित कर दी जाती है—बोनस, मँहगाई और तनख्वाह में बढ़ोत्तरी। इस तरह ये ट्रेड-यूनियनिस्ट, सिर्फ इजारेदार और मजदूरों के बीच की दलाली को जनवादी क्रान्ति का नाम देने में लगे है। कोई इनसे पूछे कि लेनिन और मार्क्स के चेलो, मजदूर-वर्ग की चेतना को व्यापक समाजी जिन्दगी से काटकर, तुम कौन-सी मजदूर क्रांति यहाँ करना चाहते हो? अगर इस गरीब मुल्क में मजदूर का किसान से, किसान का क्लर्क से, क्लर्क का टीचर से, टीचर का राइटर से—किसी का भी किसी से कोई समाजी सरोकार बन ही नहीं पाया है, तो इसकी सबसे बड़ी जिम्मेदारी इस मुल्क के वामपंथी लीडरों की है, जो इजारेदारो के साम्राज्य मे दखल देकर, अपने लिये परेशानियाँ खड़ी करने से बचना चाहते है और मार्क्सवाद इनके लिये अमल की नही, इस्तेमाल की चीज......."

"मुझे अब इजाजत देगे?" कहते हुए, उसने कलाई हवा मे उठाई, तो कामरेड थोड़ा-सा खिसिया गये—"सॉरी, डियर! प्रेम के दीवाने के आगे क्रांति की लफ्फाजी झाड़ना सचमुच बेवकूफी का काम है।...."

तभी दरवाजे पर खटखट हुई। शेखर ही उठा। देखा—एक नौकर-नुमा लड़का था, 'विश्रांत' होटल की यूनीफार्म मे। उसने एक लिफाफा आगे बढ़ाया, उस पर कामरेड का नाम लिखा था।

खोला गया, तो उसमे एक छोटी-सी स्लिप थी। हाथ की लिखावट

में, सिर्फ दो-तीन वाक्य थे—'आज रात आठ बजे शहर के कुछ मित्रों को 'डिनर' पर आमंत्रित करने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। आप से भी विनती है, पधारकर कृतार्थ करेंगे। सामिष-निरामिष, दोनों तरह के भोजन की व्यवस्था है।—कृपाकांक्षी, अहिपालसिंह।'

कामरेड ने हलके से मुँह विचकाया—"ऊँह, बेकार की वला है। सुना है, इस बार डिस्ट्रिक्ट वोर्ड की चेयरमैनी के लिये खड़ा होना चाहते हैं। केविनेट मिनिस्टरी से लेकर, डिस्ट्रिक्ट वोर्ड—म्युनिसिपल वोर्ड की चेयर-मैनी तक—कर्णसिंह से लेकर कुँवर अहिपाल सिंह तक, हर राजा-महाराजा पालिटिक्स में रेस के घोड़े की तरह शामिल हुआ जा रहा है—हाँ भई, कौन है वाहर? कुँवर साहव से कहना, हम नहीं आ पायेंगे।"

"अरे, चले जाइये कामरेड दद्दा! सिंह साहव भले आदमी हैं। कम-से-कम दो लाइनें लिख ही दीजिये।"

'हाँ, ठीक कहते हो। शिष्टाचार का ख्याल तो रखना ही चाहिये।' कहते हुए, कामरेड ने प्रीति-भोज में शामिल हो सकने में अपनी असमर्थता और आमंत्रित किये जाने के प्रति आभार व्यक्त करते हुए, दो पंक्तियाँ लिखकर, चिट उसी लिफाफे में वन्द करके, नौकर को दे दिया।

कमरे में वापस मुड़ते हुए वोले—"जनरलिस्टों को अपने फेवर में करना चाहते होंगे। वह लोमड़ पंडित वहाँ जरूर मौजूद होगा। एक दिन तुम्हें लेकर वड़ी देर तक वहस कर रहा था। यार, इन गाँधीवादियों की चमड़ी वहुत मोटी होती है। और फिर दूसरी बात ये है, शेखर! तुम्हें मालूम तो है कि 'विश्रांत' में खुद हमारे वावू जी मैनेजर लगे हैं।.... सरस्वती वाली बात अव तक उनसे छिपी होगी, ऐसा मैं नहीं मानता। सुवह-सुवह इनके साथ की माइयाँ यहाँ आई थीं और कहो कि इन्होंने खुद इतना सख्त रुख अख्तियार किया कि गुस्से में पैर धमधमाती वापस चली गईं।....गई हैं, तो जरूर सारे शहर में गर्द फैलाती गई होंगी।"

"उन लोगों को कैसे पता चल गया इतनी जल्दी कि भाभी जी आपके यहाँ होंगी? कहकर आई थीं क्या।"

१३

जहाँ तक रिक्शा जा सकता था,कोई दिक्कत नही हुई, मगर मोड़ पर से नीचे काफी गहरी ढलान में रामगढी की ओर पैदल चलते, दोनों को ही असुविधा महसूस होने लगी।

"लौटते वक्त इस चढाई को पार करना और मुश्किल होगा।"—पार्वती वहन ने लम्बी सांस लेते कहा, तो शारदा पंडित भी कुछ क्षणों को छड़ी टिकाए रुक गये—"भई, आना जरूरी हो गया। सत्याग्रह और और धरनों के अनुभवों ने यही एक सबक दिया कि जिस भी काम को हाथ मे लो, बस, लग के करो। स्थगित करने से काम हाथों से छूट ही जाता है। शौकत को कह दिया है, रिक्शा रोके रखेगा। वीस मिनट जाते, वीस वापस लौटते और वीसेक वतियाते—वस! आप डेरे पर पहुँचकर विश्राम करना। मुझे कुंवर साहव के प्रीतिभोज में जाना होगा।"

"प्रीतिभोज में या डिनर मे?"—पार्वती वहन ने आँखें गड़ाकर देखा, तो शारदा पंडित पहले कुछ हतप्रभ हुए, मगर तुरत ही हँसते हुए वोले—"आप तो, वहन जी, मरते दम तक मजाक करती रहोगी।"

अपनी वात खत्म करके शारदा पंडित ने छड़ी को हवा मे ऐसे खेल-भाव से घुमाया, जैसे शुद्ध घुमक्कड़ी में निकले हों।

"निराले में भी 'वहन जी'-'वहन जी' रटने की कौन जरूरत है?"—अपने स्थूल शरीर के कारण थक चुकी पार्वती वहन को शारदा पंडित का उम्र की मार से उन्मुक्त दिखना इस वक्त शायद कुछ खल रहा था।

"अभ्यास आसानी से नहीं छुटता ना। आप इधर कुछ तेजी से बुढ़ा रही हैं। थोड़ा ही चलने में हाँफ चढ़ गई।"

"ब्रह्मचर्य का पालन न करने से बुढ़ापा जल्दी आ ही जाता है। सब लोगों से आपकी तरह यम-दम-नियम से रहना तो सधता नहीं। रामदुलारी भी बहुत तारीफ कर रही थी कि 'बाबू जी बड़े नियम से रहते हैं।'.... जाने कौन-सी जड़ी-बूटी खाई है तुमने। जंगली मृग हो गए हो।"

"गनीमत है, जनावर नहीं कहा तुमने।....लोगों के कान बुढ़ापे में कमजोर हो जाते हैं, कम सुनाई देता है। झंझटें बचती हैं। तुम्हें अब जवानी के दिनों से भी ज्यादा सुनाई देने लगा। तुम्हारे-जैसे कान मैंने भी कर लिये होते, तो कभी का सब मिट्टी में मिल गया होता।"

"आप तो, बस, वही एक पुरानी हड्डी जेब में धरे घूमते हो।....मगर खुद सोचो, अब इस उम्र में तुम्हें आश्रम की विधवाओं से सम्बन्ध रखना शोभा देता है? कहीं दूसरे का अबाल-बवाल किसी ने तुम्हारे गले मढ़ दिया, तो सारा स्वतंत्रता-सेनानीपन झड़ जायेगा।"

"ज्यादा मत बोलो, 'हार्ट अटैक' हो जायेगा। तुम्हारी बातें कोई सुन ले, तो शारदा पंडित की क्या 'इमेज' बने? अरे, भई, हम-तुम पति-पत्नी न होते भी, एक ही रथ के दो पहिये हैं। आज समाज में जो हम दोनों की जगह बनी है, दोनों के आपसी जोग से बनी है। इसी जोग को दम रहते बनाये रहना है।....कमअक्ली आदमी को कैसे ले डूबती है, खुद तुम्हारी आँखों के आगे है। जो क्रान्तिकारी विश्वबंधु, बस, फाँसी पर झूलते-झूलते बच गया, आज उसकी दुर्गति देखती हो? मर गया तो कोई मिट्टी उठाने वाला न मिलेगा। घरवाली उसकी ताँगेवाली बीबी की तरह बिना इलाज मर गई। लड़का इण्टर से आगे नहीं बढ़ पाया, म्यूनिसिपैल्टी में बाबूगिरी नही मिल रही है। हम लोगों का विपिन, देखना, जल्दी ही तराई के लैण्ड-लॉर्डों की गिनती में आ जायेगा।....तो ये सब चीजें आती हैं। मौकों को कल्पवृक्ष की शाखा की तरह पकड़ लेने से। आत्मसंकोची इंसान जीवन में कुछ हासिल कर नहीं सकता।....और ये छोटी बातें कि तुम्हारे कौन-से लोगों

से, किस तरह के ताल्लुकात थे, मेरे किस तरह के—ये सब मायावी जीवन की मृगछलना तो चलती रहती है। बुद्धिमान लोग खाये को पचा के रस बना लेते हैं। बेवकूफ उगलकर, अपनी भी गत बिगाड़ता है, देखने वालों का जी भी खराब करता है।...अब इसी भगवतिया के नालायक बेटे को देखो, उसके जैसा दिमाग वाला है कोई शहर में ?...मगर हँसिए में गला फँसाकर, हथौड़े से खुद के ही कपार को पीटता रह गया है।...हम मानते हैं कम्यूनिस्ट टांगे साहब को। तुम्हें याद तो होगा ? जब एक बार यहाँ आये थे तो पता चला उनके स्टैण्डर्ड का कोई होटल इस शहर में मिलना मुश्किल हो गया।...रद्दी बेचकर खाने वाले जनता की लड़ाई लड़ेंगे ? और अब देखो कि घरवालों ने जिनने कितने रिश्ते ढूंढ़े, मगर पहले किसी चपरासी की बहन से शादी करने पर अड़ा रहा—और अब जाने कितनों की जूठी विधवा भगतन घर में बिठा ली। घर जलाकर तापना और किसे कहते हैं। ज्ञानी जो जन होते हैं, सो अपने आदर्श को भी सम-विषम जांच के चलते हैं, मूर्ख अपने चूतियापे को भी गले में लटकाये घूमना चाहता है।"

"तुम क्या सोचते हो, भगतनों से धरना करवा देने से वह सरस्वती भगतन को घर से बाहर कर देगा ? और कर भी देता है, तो इससे हम को क्या मिलना है ?"

"ये सब तुम नहीं समझोगी, पारवती ! शत्रु पर आघात करने के मौके जो चूक गया, उसकी खैर नहीं। तुम क्या नहीं जानती कि वह कंगला हमारा जीना कैसे हराम किये बैठा है ? अपने सड़ियल अखबार के अगस्त इश्यू में हम लोगों को समाज का कोढ़ किसने घोषित किया था ? ...मगर ऐसे जाने कितने क्रान्तिकारियों को बेरी की तरह निगल गये शारदा पंडित ! अगस्त्य गोत्र है मेरा ! हाजमा रखता हूँ।...मैं भी जानता हूँ, बच्चू तुम एक ही जिद्दी हो—निकालोगे नहीं भगतन को, मगर मैंने भी गले का ढोल न बना दिया उस व्यभिचारिणी को, तो मेरा नाम शारदा पंडित नहीं !"

"आप तो क्रोध में भी होते हो, तो राम-नाम जपने की शांतता में

रहते हो। ये कला हमको नहीं आई।" कहती पार्वती बहन थोड़ा विश्राम करने बैठ गईं।

रामगढ़ी के आश्रम का भगवा ध्वज अब साफ दिखने लगा था और थोड़े-से अंतराल पर रह जाने से मंदिर और धर्मशाला के इर्द-गिर्द मँडराती माइयाँ भी।

एक माई की नजर इन दोनों की ओर गई, तो उसने सबको सूचित किया—'पार्वती बहन जी आश्रम में आ रही है।'

प्रीतिभोज-पूर्व की चहल-पहल शुरू हो चुकी थी, जब शारदा पंडित 'विश्रांत' पहुँचे। शाम हो चुकी थी और होटल मे की गई रोशनी काफी दूर तक वृत्त मे फैली थी और आस-पास के पेड़-पौदों के कारण वातावरण वनस्पति उद्यान का सा हो आया था।

भगवत् बाबू खादी का बढ़िया सूट पहने थे। देखते ही 'पंडित जी, प्रणाम!' कहते हुए झुके और 'कॉमन हाल' की तरफ संकेत करते हुए बोले—"पधारें। रायसाहब लोग भी आ चुके है। आपका इंतजार हो रहा है। मैं भी अभी-अभी बाहर से चला आ रहा हूँ। घर जाने का अवसर भी नही मिला। इस्टेट के काम से जाना पड़ा।"

शारदा पंडित समझ गये कि भगवत बाबू तक बात अभी पहुँची नही है। पता तो रायसाहब को भी है, कुछ और लोग भी जान चुके होंगे, मगर लगता है, संकोच में किसी ने जिक्र नही किया है।

"हाँ, खैर, होना तो इस वक्त आपको अपने घर मे ही चाहिए था। जब घर मे मंगल कार्य हो रहा हो, घर के बड़े का बाहर रहना परिवार वालों की खुशी कम कर देता है।...मगर कुँवर साहब भी यही सोचते होंगे कि यहाँ की व्यवस्था कोई दूसरा आदमी न सँभाल सकेगा।"—शारदा पडित प्रेमभाव से इतना कहकर आगे बढ़ने को ही थे कि भगवत बाबू ने चकित भाव से कहा—"हमारे घर में मंगल-कार्य? अच्छा, हो सकता है,

भरत की वहू....मगर अभी तो 'डिलीवरी' का वक्त काफी दूर चल रहा थी, भरत की मां !"

"अरे भगवत बाबू, मैं दूसरी 'डिलीवरी की बात कर रहा हूं।'....मगर आप तो ऐसे चकित भाव से मुझे देख रहे हैं, जैसे आपको खबर ही नहीं ? सारे शहर में आपके घर नई बहू आने की खबर है और...."

"क्या कह रहे हैं, पंडित जी, आप ? पहेली क्यों बुझा रहे हैं ?"—भगवत बाबू के चेहरे पर अभी भी सिर्फ चकित भाव की चमक थी।

"अब मैं क्या कहूं, भगवत बाबू, कुछ समझ नहीं पा रहा। शहर-भर में खबर है कि श्यामू बेटे ने आखिर शादी कर ही ली है और आप अनजान दिखा रहे हैं अपने को ?....भई, वैसे तो किसी के घरेलू मामलों में दखल देना नहीं चाहिए, लेकिन मैं इतना कहना चाहूंगा, भगवत बाबू, कि बच्चों से नाराज हो जाना बुरा नहीं, मगर छिमा बड़न को चाहिए...."

"मुझे सचमुच मालूम नहीं, पण्डित जी ! खैर, चलो, शादी कर ली उसने, इतनी ही संतोष की बात है। हम लोगों से कटा बैठा है, इसलिए खबर नहीं की होगी।" —अभी भगवत बाबू के चहरे पर सिर्फ हल्की-सी खिन्नता और कौतूहल तथा अवसाद की छाया-भर थी।

शारदा पण्डित ने उनके कंधे पर हाथ रख दिया—"खैर, वह सिद्धान्तवादी लड़का है और उसने अपने असूलों के हिसाब से ही क्रांतिकारी कदम उठाया है। रामगढ़ी की सरस्वती भगतन का पाणिग्रहण किया है श्यामू बेटे ने। आज समाज में ऐसे ही क्रान्तिकारी विचारों के नवयुवकों की जरूरत है। ...."

अपनी बात खत्म करके, शारदा पंडित ने एक नजर भगवत बाबू के राख हो आये चेहरे को देखा और यह कहते आगे निकल गए कि 'राय साहब वगैरा को आए काफी देर हो चुकी क्या ?'

कॉमन हाल के बीचोबीच बड़ा कालीन बिछा था और उसी पर बैठका

लगा था। मुख्य लोग मसनदों की टेक लिये पसरे पड़े थे। शारदा पण्डित के पहुँचते ही बातचीत में व्यतिक्रम उत्पन्न हुआ और थोड़ी-सी औपचारिक वार्ता के बाद ही कुँवर साहब के चैयरमैन—पद के लिए खड़े होने के मुद्दे पर बातें होने लगीं।

राय साहब ने चुरुट मुँह में लिये-लिये ही कहा—"कुंवर साहब का चुनाव तो निर्विवाद होना चाहिए। राजा साहब कालागढ़ की देश तथा समाज की सेवाओं से कौन अनजान है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ सत्याग्रह की लड़ाई में इस परिवार का जो योगदान रहा है—मुझे याद आ रहा है वह दिन, जब कलक्टरी के अहाते में रामजे-कमिश्नर के खिलाफ धरना देने स्व० राजा साहब चंद्रिकेश बहादुरसिंह जी एक ही चटाई पर हम लोगों के साथ-साथ बैठे थे। हीरे-मोतियों से जड़ी राजसी शेरवानी पहनने वाली शख्सियत चार आने गज की खादी का मामूली कुरता-पाजामा पहने गाँधी के मामूली सिपाही की हैसियत से हम जनता के मामूली नुमाइंदों के बीच बैठा था। वो दिन अब सचमुच सपने हो गए। आपको तो इस अविस्मरणीय घटना की स्मृति जरूर होगी, शारदा जी?"

"अरे, राय साहब, ये भी कोई भूलने की चीज है। वह वक्त ही और था। हमें याद आता है, एक वाकया। तराई में सत्याग्रही टोलियां को फैलाना था। बायालीस का 'मूवमेन्ट' नजदीक आ रहा था। पैसा हम लोगों के पास था नहीं। हम पार्वती बहन जी के साथ कालागढ़ पहुँचे, तो राजा साहब जीप पर मुख्य द्वार के बाहर ही मिल गये। हाथियों पर गुमाश्ता लोग तैयार बैठे है। सबके कंधों पर बन्दूकें और कारतूस-बुलेटों की पेटियाँ टंगी है। खुद राजा साहब 'हंटिंग सूट' पहने, ब्रिटिश मेक राइफिल लिए शिकार पर जाने की मुहिम में!—मगर, साहब, क्या बात है। सारा ताम-झाम संन्यासियों की तरह त्याग दिया और एक किट भरकर विक्टोरिया छाप चाँदी के कलदारों के साथ जीप हम लोगों को सौंप दी—'अब हिन्दुस्तान के आजाद होने पर ही शिकार खेला जायेगा!' क्या शख्सियत थी!"

"आजादी के पहले एक बात है, साहब ! हम लोग गुलाम जरूर थे, मगर तब लोगों के पास एक 'करेक्टर' हुआ करता था। कैसे गुल्ली-डण्डा खेलने की सी मौज में लोग फांसी के फन्दे पर झूल गए, ये हम लोगों की आंखों के सामने की वारदातें हैं, मगर लगता है, पुराण हो गईं सारी चीजें ! —आज कुरबानी के नाम पर कोई आदमी अपने नाखून कटवाने को तैयार नहीं, तब लोग सरफ रोशी की तमन्ना लिये फिरते थे।" अब तक चुप बैठे भू० पू० प्रजा समाजवादी, मौजूदा कांग्रेसी एम० एल० ए० भैया जी ने अफसोस जाहिर किया तो शारदा पण्डित थोड़ा सीधे बैठ गए— "बात ये है, भइया जी, आजादी के आने के साथ-साथ एक बुराई इस मुल्क में आ गई। त्याग और तपस्या का कठिन और लम्बा मार्ग अपना-कर, अपने लिये समाज में जगह बनाने के असूलों पर चलने वाले लोगों की जगह नयी 'जेनरेशन' कुछ ऐसे लोगों की आ गई, जो 'शार्टकट', हुड़दंग और 'ब्लैकमेलिंग' का रास्ता अख्तियार करके समाज में आतंक पैदा करना चाहती है। तब पत्रकारिता एक 'मिशन' हुआ करती थी, अब ब्लैकमेलिंग' हो गई है। गुण्डागर्दी हो गई है। अब लोग मुंह-मांगा विज्ञापन या चन्दा न देने पर 'करेक्टर एसासिनेशन' की धमकियां देने लगे हैं। आज सुबह ही एक क्रान्तिकारी पत्रकार ये यहां बैठे दामू जी-जैसे समाजसेवी और राय साहब-जैसी राजनैतिक हस्ती की इज्जतहतकी कर गया है।—एक वलियाटिक आवारा और है, जो सारे शहर में आतंक मचाए है और शरीफ घरों की बहू-बेटियों का सड़क पर चलना मुश्किल हो गया है। कालेज जाने वाले लड़के-लड़कियों के लिए यह शहर सिनेमा-स्टूडियो बन गया है। गंदी फिल्मे वैसे ही बच्चों के दिमाग खराब कर रही है, ऊपर से शहर में ही जब हीरो पैदा हो गए हैं—बड़े शर्म की बात है, साहब, खुद हम लोगों के लिये शर्म की बात है !—और इसीलिए मैं चाहता हूं कि कुंवर साहब-जैसा राजसी वृत्ति का आदमी चेयरमैन के पद पर आसीन हो ! इसमें कुंवर साहब की नहीं, इस जिले की, चेयरमैन-पद की गरिमा है।"

"आप राजशेखर की तरफ इशारा कर रहे होंगे ?"—कुंवर अहिपाल

सिह का स्वर नितांत सामान्य था—"श्याम लाल जी को तो मैंने बुलाया था, मगर आये नहीं।"

"ये तो, कुँवर साहब, आपकी शालीनता है, जो चमरई करने वालों को भी इज्जत बख्श देते हैं। —मगर कामरेड वहाँ भगतन के साथ रास रचायेंगे या इस रूखी-सूखी विचार-मण्डली में उपस्थित रहेंगे?"

थोड़ी देर हँसी-व्यंग के ठहाकों के बीच कामरेड सूरज के द्वारा सरस्वती भगतन को अपने घर में रोक लेने की चर्चा ही चलती रही और उसके बाद फिर मीना—प्रोफेसर तिवारी वाला सिलसिला चल पड़ा। इसी बीच ह्विस्की भी 'सर्व' हो गई। व्यवस्था देखने की औपचारिकता में भगवत बाबू कमरे मे आये जरूर, मगर कमरे में बैठे लोगों से नजर नहीं मिलाई।

भोजन के निमित्त कहने को गीता पाल हाल में आई, तब वह गहरे हरे रंग की खूबसूरत और कीमती बनारसी साड़ी पहने थी और गाढ़े सफेद रंग की पूरी बाँहों वाला ब्लाउज! हल्का, गहरे बैंजनी रंग का कश्मीरी शाल। गीता पाल की इस उपस्थिति से जैसे वातावरण एकाएक परिवर्तित हो उठा हो। हाल के बीचो-बीच टँगे फानूस की ऐतिहासिक किस्म की लगती रोशनी में वह सचमुच अत्यन्त रूपवती प्रतीत हो रही थी और देखने वालों के चेहरे जैसे हवा में टँग गए हों। शारदा पण्डित ने राय साहब को धीमे से कुहनी से ठेला। गीता पाल का शाल और साड़ी की ढँकन से मुक्त बायाँ उरोज सफेद ब्लाउज में अपेक्षाकृत ज्यादा उभरा दिख रहा था।

"राजनीति हो चुकी हो, तो भोजन भी ग्रहण कर लें आप लोग?" —कहते हुए, वह अत्यन्त शालीन ढंग से मुस्कुराई, तो उसका विगत होने की शुरुआत पर पहुँचता तारुण्य जैसे एकाग्र हो गया।

शारदा पण्डित, भइया जी, और राय साहब—जैसे बुजुर्गों के ह्विस्की

के सुरूर से तमतमाए चेहरों पर की त्वचा छिपकलियों की खाल की तरह गुलाबी दिखने लगी थी।

गीतापाल के डाइनिंग हाल की तरफ मुड़ते ही, वे सब लोग भी अपने को समेटते चले गए।

● ●

१४

हो सकता है, दरवाजे पर दस्तक कुछ देर से हो रही हो। बादलों का गरजना तो सब कहीं शोर करता ही है, मगर, शायद, खास तौर से पहाड़ों पर, जहाँ ये दैत्याकार गुरिल्लों की तरह छत पर कूदते-फाँदते-से महसूस होते हैं।

श्रीमती मैठाणी फादर परांजपे के घर जाने की बात कहकर गई हैं, तो इस बात को ज्यादा-से-ज्यादा घंटा-भर बीता होगा और दोनों जिस तरह की वार्ताओं मे होने के लिये अच्छा-खासा अंतराल देकर आपस में मिलते हैं—इस बात की कतई गुंजाइश नहीं कि वो लौट भी आई होंगी। और बड़ी बात तो ये कि श्रीमती मैठाणी के हाथों की दस्तक उसके लिये पालतू जानवर की तरह पहचान लेने की चीज हो गई है। और देखा जाय, तो इस वक्त, जबकि इस बन्द कमरे में मौसम अपनी भाषा में जाने क्या-क्या कह रहा है, उसके सोचने की सारी टेक सिर्फ इसी बात पर है कि आखिर कब तक। दोपहर के भोजन के बाद के एकांत में कम्बल ओढ़े पड़े रहना और वो भी ऐसे मौसम में, जबकि महसूस होता है कि ओढ़े हुए कम्बल के चारों कोनों को कोई पत्थरों से दाब गया है। जबकि चाहने पर भी बिस्तर छोड़ने में त्वरा बरती नहीं जा पाती है।

वह धीरे-धीरे उठा और कमरे में भरे नीम-अँधेरे को पार करता, दरवाजे तक पहुँचा।

वह गीता पाल थी।

इस बात को कैसे छिपाये कि उसने अनुमान लगने की कोशिश की थी कि राजशेखर का कमरा कौन-सा होगा। और इस वाक्य की रचना कर ली थी कि—'माफ कीजियेगा, मैं समझी कि, यह श्रीमती मैठाणी का कमरा होगा।'

और क्या यह भी सम्भव हो सकता है कि उसकी ओर से उत्तर आये कि 'जी नहीं, इस वक्त मम्मी घर पर नहीं हैं।'

"माफ कीजियेगा, मैं समझी, यह मिसेज मैठाणी का कमरा...."

"जी नहीं!"

वह खुद नहीं समझ पाया कि जवाब उसने मुँह खोलकर दिया है या सिर्फ तनाव-भरी आँखों को ज्यों-का-त्यों स्थिर रखकर।

गीता पाल, इस वक्त, सलेटी रंग की साड़ी पहने थी और सफेद ब्लाउज। ऊपर से उसने काले रंग का कढ़ा हुआ शाल ओढ़ रखा था, जिसके ने उसके स्त्री होने को किंचित् और भव्य कर दिया था।

वह उसी तरह दरवाजे के खुले पल्लों से टिका खड़ा था और वह समझ नहीं पाई कि उसके 'जी नहीं' का मतलब इस कमरे में श्रीमती मैठाणी के न होने से है या कि श्रीमती मैठाणी के घर मे ही न होने से।

"मैं जरा श्रीमनी उपाध्याय के यहाँ तक गई थी। लौटते में...."—वह अभी अपने बोलने को शक्ति-भर स्निग्ध, कोमल—वल्कि कहना चाहिये कि स्त्रीत्व-भरा भी—वनाने को कोशिश में ही थी कि राजशेखर ने इस आमने-सामने होने की स्थिति को खत्म कर लेने की सी मुद्रा में वात को काट दिया—"इस वक्त वो घर पर नही हैं।"

ऐसा नहीं कि यह रूखापन अप्रत्याशित था, मगर इसके वावजूद वह इसे एकाएक वहन नहीं कर पाई और 'अच्छा, नमस्कार, मैं चलती हूँ, वो आयें, तो वता दीजियेगा, मैं आई थी।' कहते हुए, पीछे हट आने के अलावा उससे और कुछ वना ही नहीं। इस वात को उसने पूरी तौर पर तव महसूस किया, जव पाया कि फाटक खोलने के लिये हाथ आगे बढ़ा चुकी है।

उसके भीतर अंधड़ की तरह यह बात उठी कि इतने दिनों से वह जिस वक्त को—या कहिये कि संयोग को—तलाश रही थी कि कहीं संपूर्ण एकांत के बीच उससे वार्तालाप हो सके—वह ठीक सामने था और अब भी पीठ-पीछे, सिर्फ चंद कदमों के फासले पर है।...लेकिन फाटक खोल-कर, बाहर पहुँच जाते ही जाने कितनी दूर हो जायेगा!

एकाएक उसने तय किया कि नहीं, यह अंतर्बाधा तो सदैव इसी तरह लगाम बनी रहेगी। बहुत सम्भव है, उसकी ओर से सिर्फ दोटूक बेरुखी ही मिले, मगर एक न एक बार उसे अपने भीतर की जकड़न से निबटना है और यह सब बिना जोखिम उठाये हो जायेगा, इस गलतफहमी में रहना ठीक नहीं।

वह अपने भीतर की अस्त-व्यस्तता से विमोहित-सी पीछे मुड़ी। देखा, वह ज्यों-का-त्यों था।

गीता पाल ने अब साफ-साफ महसूस किया, औपचारिकता बरतना अपने और उसके बीच दीवार चिनना होगा। वह सधे कदमों से आगे आई और अपने स्त्रीत्व की दीप्ति का आत्मीय किस्म की स्मिति में रूपांतरण करती-सी बोल उठी—"क्या मैं कुछ देर यहीं कहीं बैठकर इंतजार कर सकती हूँ।"

उसने कोई जवाब नहीं दिया, मगर उसका भित्ति बने रहना विघटित हुआ। वह धीमे से पीछे मुड़ा।

कुर्सी हाथ में लिये बाहर निकला, तो 'धन्यवाद' कहती वह आगे बढ़ी और उसके हाथों से लेने लगी, तो वह बोला—"रुकिये, आपको कष्ट करने की जरूरत नहीं।"

कुर्सी के लिए झुकते में उसका शाल उतरकर, कुर्सी पर बिल्ली की तरह कूद गया था। वह मय शाल के कुर्सी को अच्छी-खासी दूरी तक उठा ले गया। बरामदे के फाटक की तरफ अपेक्षाकृत करीब पड़ने वाले कोने में कुर्सी को रखकर, वह पीछे मुड़ा और सीधे अपने कमरे की ओर बढ़ चला।

"अकेले एक कोने में बैठी तो मैं बोर हो जाऊँगी। मैं क्या....अगर आप किसी तरह की असुविधा न महसूस करें...."

"मैं महसूस करूँगा। मुझे क्षमा करें।" कहते, वह कमरे के और निकट पहुँचने को हुआ, तो सही, मगर जाने क्यों थम गया। अब पहली बार वह उसे किंचित् परिवर्तित आँखों से देख रहा था।

गीतापाल की आँखों में हलकी-सी चमक आई। एकाएक ही उसे इलहाम-सा हुआ कि उसके पास एक अतीत है। पुरुष के साक्षात्कार में होने का उसके लिये यह कोई आकस्मिक क्षण नहीं है। घृणा और प्रेम, स्नेह और क्रुद्धता, प्रमोद और खिन्नता, विरक्ति और वासना—सब में उसने देखा हुआ है।

उसने कुछ नही किया। सिर्फ अपनी आँखों को अतीतमय कर लिया

उम्र कितनी होगी इसकी—तीस-इक्तीस? और इतना वजनदार तो गीतापाल के स्त्रीत्व को कम-से-कम होना ही चाहिये। इसको जितना अरसा प्रेम में हुए बीता होगा, उतना वह वंचना में व्यतीत कर चुकी होगी।

श्रीमती मैठाणी कैसी औरत हैं? अपनी वंचनाओं को व्यतीत कर चुकने की कैसी विपुल कोशिकायें हैं उनकी आँखों में? उनके निकट यह अपने पुरुष होने की नियति से ग्रस्त व्यक्ति कैसे, यानी कैसा रहता होगा?

"आप क्या मुझसे नाराज हैं?"

"आप से....मुझे किसी से भी नाराज होने का क्या हक़ है? वजह भी नही। अलबत्ता मुझसे नाराज होने का हक सबको है।...."

"आप खुद ही ऐसा क्यों तय किये बैठे है?"

"देखिये, जिस शालीनता से आप पेश आई हैं, मैं इसकी कद्र करता हूँ, मगर यह हम दोनों के, खास तौर से आपके हक में अच्छा होगा कि हममें ज्यादा बातचीत न हो।"

वह अब इस वक्त बरामदे के बीचोबीच ठीक वैसे ही खड़ा था। संग-

मरमर हुआ पटा-सा। चेहरे पर वन्य पशुओं की सी सावधानता। होठों में यत्नसाध्य स्तब्धता।

"मैं सोचती थी, आई हूं तो एकाध घंटा इंतजार कर ही लूं।"

"आपके पर्स में ऊन और सलाइयां जरूर होंगी। औरतों के पास वक्त-कटी के लिए ऊन-सलाई का होना पर्याप्त समझा जाता है।"

"आप तो 'औरतों' ऐसे कहते हैं, जैसे दुश्मनों का नाम ले रहे हों?" कहती, वह कुर्सी पर से उठ खड़ी हुई। बोली—"आप भी कुर्सी लेकर यहाँ बैठ जायें ना? मैं बैठी रहूँ और आप खड़े रहें...."

"इस शहर में मेरा इतना ख्याल रखने वाली सिर्फ एक है—मम्मी!"

"आपने ख्याल रखने वाली 'औरत' नहीं कहा?" कहते हुए वह इस बार अपेक्षाकृत प्रगाढता में मुस्कुराई और 'ठहरिये, मैं आपके लिये कुर्सी लेती आती हूँ।' कहती, तेज कदमों से कमरे की ओर बढ़ी और जब तक मैं वह कुछ तय करता, गीता पाल मोढ़ा हाथों में लिये कमरे से बाहर आ चुकी थी।

उसे कुछ भी कहने का अवसर न देकर, वह मोढ़े पर बैठ गई और बैठे-ही-बैठे कुर्सी पर से अपना शाल हटाती बोली—"बैठिये ना...."

"देखिये, मैं हद दर्जे बदमिजाज, खूंखार, बदतमीज और बेतहजीब किस्म का आदमी हूँ।....और आप लोग इस बात से अपरिचित नहीं हैं। मैं आपके अत्यंत भद्र व्यवहार के आगे मूढ हो गया हूँ। मैं कुछ तय नहीं कर पा रहा...."

"सब-कुछ अपनी ओर से, सिर्फ अपनी ओर से ही तय करते रहना—और यह भी हमेशा और हर एक के साथ—आप समझते हैं कि ये सचमुच कोई अच्छी चीज है?"

सफेद रूबिया की पूरी बाँहों वाले ब्लाउज में, इस लगभग सर्दी के मौसम में वह सचमुच बहुत सुन्दर लग रही थी। उसके सम्पूर्ण चेहरे पर स्निग्धता थी और उसे झील किये दे रही थी, जैसे सामने वाले को प्रतिबिम्बित होने के लिये पुकार रही हो।

वह अभी भी अपने पूर्वग्रह मे ही था, मगर कहीं भीतर ही भीतर पंगु पड़ता-सा।

"बैठिये ना।"

उसने अपने पाँवों को थोड़ा-सा पीछे समेट लिया, जैसे वे ही उसके मार्ग की बाधा बने हों। साड़ी के किनारे के थोड़ा ऊपर उठ जाने पर, उसके पाँवों के रंगीन नाखून जैसे एकाएक उजागर हुए। एकाएक यों देखने पर, सचमुच, प्राकृतिक रूप से रंगमय लगते हैं। पाँवों पर की त्वचा का रंग भी ऐसा है कि ऐसा होना असम्भव भले लगे, अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

"मेरे साथ बैठना आपके हक में..."

"उसकी चिंता सिर्फ आप ही क्यों करें ? मैं कोई नादान लड़की नहीं, सयानी औरत हूँ और वो भी टीचर !" कहते हूए, उसने अपने मुस्कुराने को थोड़ा और अधिक विस्तार दे दिया। वह साफ-साफ देख रही थी कि वह अभी भी ज्यों-का-त्यों खड़ा है और आखेट की आशंका में चौकन्ने किसी जंगली पशु की सी सावधानता और अस्वस्ति अभी भी उसकी आँखों में मौजूद है।

एकाएक ही उसके चेहरे पर का भाव कुछ बदला और बोला—"तब आप कुर्सी पर बैठें—मोढ़े पर मैं बैठूंगा। इस पर आप असुविधा अनुभव करेंगी।"

उसने विलम्ब नहीं किया। 'धन्यवाद' कहती उठी और कुर्सी पर बैठ गई।

"आप सोचते होंगे, मैं कौन होती हूँ—और मैं भी सिर्फ इतना ही कहूँगी कि अपनी खुद की ही जिज्ञासा के अलावा और कोई वजह नहीं। आप, शायद, जानते हों—एक वक्त था, जब मै खुद इसी तरह की फजीहत में पड़ी थी और लोगों में—"

"माफ कीजिएगा, मुझे सिर्फ फजीहत में पड़ा मान लेने के बाद आप मुझसे संवाद न कर सकेंगी।"....उसका स्वर किंचित् आहत था।

"जी...." वह कुछ हतप्रभ हो आई।

"आपका नाम पूछ सकता हूँ ?"

"जी, मुझे गीता पाल कहते हैं...."

"कहते हैं, या आप हैं ?"—उसका विनोद भाव से मुस्कराना गीता-पाल के भीतर तक उतर गया।

"चलिये आप में कुछ धूप निकली तो। अभी तक तो आप किसी शरारती लड़की को डराने के से गहरे 'मूड' में थे ?....मुझे महसूस हो रहा है कि आपके साथ झूठ बरतना ठीक नहीं। जानकर आपकी निगाहों में मेरी तस्वीर क्या बनेगी, आपका मेरे प्रति क्या रुख बनेगा—मैं कुछ नहीं कह सकती और शायद इसकी फिक्र भी मुझे करनी नहीं चाहिये, क्योंकि आपकी बेरुखी या नाराजगी मुझे सिर्फ वहाँ वापस पहुँचा देगी, जहाँ से आगे बढ़ने की हिमाकत मैंने की है।"

"आप तो बहुत सटीक जबान बोल रही हैं। तार्किकों की तरह। अपनी कालेज लाइफ में आप जरूर 'डिबेटर' रही होंगी।"

"जी हाँ, रही हूँ।....मगर यहाँ मैं आपके साथ 'डिबेट' करने नहीं आई हूँ—कहूँ कि 'डायलाग' करने आई हूँ।....और अब यह भी कह लूँ कि मैं जब यहाँ को चली थी, तो यह मानकर कि काश, आप एकांत में मिल जायें...."

"अपने-जैसे असामाजिक प्राणी पर आपकी अनुकम्पा की वजह समझ पाना, मेरे लिये मुश्किल होगा।"

"कभी-कभी, क्या आप ऐसा अनुभव नहीं करते, चीजों का आसान हो जाना नहीं, मुश्किल पड़ जाना ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है ? खैर, अपने तर्क में सिर्फ इतना कह सकती हूँ कि मैं चाहती थी कि आपके सामने पड़ूँ। बहुत-से लोग अपने जीवन के वीराने से ऊबे पड़े होते हैं और अपने बीते हुए में वापसी का चिड़ियों की तरह इंतजार कर रहे होते हैं। पहले

मैं भी समझती थी—सिर्फ कौतूहल है, मगर सिर्फ इतनी-सी बात न रही होगी।" उसका हँसी और संजीदगी मे साथ-साथ होना विलक्षण लग रहा था। वह धीरे-धीरे झील मे उड़ता पक्षी-दल होने लगी थी, जैसे औरतें हो।

"मैं जब आप लोगों के आमने-सामने पड़ा हूँ, सिर्फ मजाक का मुद्दा बनकर रह गया हूँ, और यह बात मुझे तकलीफदेह लगी है। पिछले रविवार आप लोग यहाँ मम्मी के पास आई थी...."

"शेखर, मैं आज अकेली आई हूँ—'कई लोग' होकर नहीं।....और मैं आपको बरसों पहले भी जानती रही हूँ, जब आप पढ़ते होते थे और मीना आपके साथ अपने औरत होने का साक्षात्कार कर रही होती थी। आप उम्र में मुझसे एकाध साल छोटे ही होंगे"—आपकी कितनी होगी? मेरा यह इक्तीसवाँ है।"

"लेकिन आपके मेरे बीच, गीता जी, वैसा कोई संदर्भ नहीं कि आपको औरत होने के नाते उम्र छिपा लेने की जरूरत महसूस हो—या कि मुझे यह कि आपने गलत बताई होगी। मैं उस तरह की मनःस्थितियों में नहीं हूँ—और शायद हक में भी नहीं—कि मेरा यह कहना शोभनीय लग सके कि आप अच्छी-खासी सुन्दर महिला है। सिर्फ खूबसूरत ही नही बल्कि खुद्दार और अनुभवी औरत। जिस तरह के लोकापवादों में मैं इन दिनों हूँ और कबूल करता हूँ कि विभ्रांत किस्म की चित्तवृत्तियों में भी—मम्मी के बाद सिर्फ आप ही वो औरत है, जो मुझे अपने साथ इस तरह की बातचीत मे कर पाई है। और शायद मुझे सिर्फ इतना ही कहना चाहिये कि यह आपका अनुग्रह है मुझ पर हालाँकि रेत मे डाला गया पानी....।"

'अनुग्रह?' उसने सिर्फ अपनी भृकुटि को प्रश्नवाचक कर लिया और इस इतमीनान मे हो गयी कि सामने बैठा व्यक्ति उसके एक अनुभवी औरत होने की प्रतीति में सचमुच हो चुका है।

"हाँ, जब हर आँख मुझे एक असामाजिक तत्व, एक अजूबा आदमी—

यहां तक कि सूनी की गलन में देख रही हो—आदमी तो आदमी, वह पेड़ तक मुझे अनुग्रही लगता है, जो मुझे अपनी छाया में बैठने दे।"

उसके चेहरे पर विषाद-भरी हँसी का फैलना गीता पाल को सचमुच मोहक लगा।

अब तक के वक्त में पहली बार उसने अंकवुड कॉटेज के बाहर की प्रकृति की ओर दे । तो लगा कि अपने-आपको भी ज्यादा विस्तार में अनुभव कर पा रही है।

कोहरा छँट चुका था। बादल ज्यादा घने होकर, गहरे सलेटी हो गये थे। हवा में सुइयों की तरह चुभने वाली ठंडक की जगह, सिर्फ मद्धिम शीतलता महसूस हो रही थी।

"मेरा अनुमान ठीक था। मैं आपसे उम्र में बड़ी ही हूं।"

"लगती नहीं है।"

"लगता है, शेखर, अब आपने धीरे-धीरे मुझे औरत समझना शुरू कर दिया है।" उसने खुद अनुभव किया कि उसके पूछने में कोशिश बल्कि कहा जाय कि आशा है। उसके चेहरे पर की प्रफुल्लता को कुछ क्षणों तक ज्यों-का-त्यों बनाये रख सकने की। उसने महसूस किया कि उसके देखने में, इस वक्त। आबद्ध कर लेने को फेंके गये पाश की सी कौंध है।

उसकी आँखों में का जतन से सवाँरा गया काजल, कोरों पर से नुकीला होता भवों को धुनषाकार करता गया है। माथे पर की बिंदी यह जानने वाले को भी कि गीता पाल अविवाहित है—निरंतर इसी प्रतीति में रख सकती है कि वैवाहिक जीवन की निष्णातता से यह आद्यंत आप्लावित स्त्री है। अब इसे चाहे तार्किकता के स्तर पर यों कह लिया जाय कि न सही श्रीमती होने को, मगर एक लगभग सम्पूर्ण स्त्री होने को गीता पाल अपनी मुद्राओं में, कम-से-कम इस वक्त, भरपूर प्रतिबिम्बित कर रही है।

"मैं आपको चाय के लिये भी नहीं कह पाया। मम्मी फादर परांजपे के यहाँ गई हैं। मेरा ख्याल है, जल्दी वापस नहीं लौटेंगी। बुढ़िया के वापस लौटने तक जरूर पानी बरस रहा होगा। रेनकोट ले नही गई हैं। आते ही खाँसना शुरू करेंगी...."

वह उठने की तैयारी में हुआ ही था कि गीता भी उठ खड़ी हुई—"चाय पीने को मन सचमुच है। चलिये, मम्मी की कमी मैं दूर करूँगी...."

"यह सम्भव नहीं है, मिसेज गीता !" वह एकाएक अपनी जगह पर रुक गया और उसका चेहरा एक तरह से आग्रही हो आया।

अभी वह अपनी हतप्रभता मे ही थी कि शेखर जोर देकर बोला—"कुछ लोग ऐसे होते है, जिन्हे कोई 'रिप्लेस' नहीं कर सकता।"

फिर एकाएक ही वह अत्यंत विनयी हो आया—"मैं भी कितना बेवकूफ हूँ। कहाँ की बात कहाँ जोड़ने लगता हूँ। विश्वास कीजिये, मिसेज गीता, पहले ऐसा कतई नही था। दो साल पहले जब मैं छुट्टियों में आया था, तब आप इस तरह आई होतीं मेरे सम्पर्क में, तो मुझसे आपको कोई शिकायत नहीं होती। तब मैं स्त्री-मात्र के प्रति विनयी हुआ करता था। बल्कि स्वीकार करूँ कि काफी भावुक। खास तौर से आप-जैसी सुन्दर और तरुण स्त्रियों के साथ वार्तालाप में मैं महसूस करता था कि मुझे निरंतर समादर बरतना चाहिये !"

'चाय बारामदे में ही अटक गई है, शेखर !' कहती हुई इस बार वह लगभग खिलखिला उठी—"और जैसा कि मैंने कहा, मैं आपसे उम्र में बड़ी जरूर होऊँगी—मगर मिसेज गीता नही हूँ !"

"आप, मुझे लगता है, सचमुच अच्छी औरत हं ! खूबसूरत और भद्र। खैर, खूबसूरत औरतों के संदर्भ में भद्रता से मेरा तात्पर्य क्या होता है, वह मैं आपको चाय पीते वक्त की फुर्सत में बताऊँगा। फिलहाल, इस वक्त मैं चाहूँगा कि आप कुर्सी पर बैठी रहे। मैं चाय बनाकर यहीं लेता आऊँगा।"

वह अब सहज था और उसके बोलने में न रूखापन था, न तनाव।

गीता पाल ने कुछ सोचा और धीमे से पीछे हटकर, कुर्सी पर बैठ गई।

जब तक मैं राजशेखर चाय बनाकर लाया, वह इस बात को गहराई से महसूस कर चुकी थी कि आखिर कौन-सी वजह उसे यहां, इस संगति में ले आई है। जल तभी बहता है, जब बहने या इकट्ठा होने-भर की जगह मिले। भीतर ही भीतर निरंतर एकत्र होता गया अतीत भी नये सिरे से वर्तमान की प्रतीति देने की गुंजाइश में होते ही मुंह देने लगता है।

मुद्दतों के बाद किसी पुरुष के साथ अपने-आपको फिर से अतीत की स्मृतियों में रखने की मनोदशा में से गुजरना हो रहा है, तो इसे साफ-साफ यह मान लेने में हर्ज क्या है कि वह व्यक्ति यही है। अपने एकांतों में साथ-साथ चलता, अपने-आपको व्यतीत करने के लिए खुद अपने हाथों से गढ़ा हुआ-सा—छाया-पुरुष! क्योंकि यह फिलहाल ठीक उसी तरह के वर्तमान में है, जो आगे चलकर अतीत बनता है....। और यह कहीं हत्या या आत्महत्या न कर बैठे, अपनी इस चिंता को वह स्त्री-सुलभ मानकर ही परितोष क्यों ओढ़ ले, जबकि वह इससे कहीं गहरे तक अपने अस्तित्व में इसे अनुभव करती है?

पिछले रविवार जब वो सब आई थीं, तब श्रीमती मैठाणी ने खास तौर से उसकी ओर केन्द्रित होते हुए क्या कहा था कि—कभी-कभी जिंदगी अपने लिये बहते पानी की तरह जमीन ढूंढती होती है?

कभी-कभी निहायत स्वाभाविक किस्म की बात भी संयोग प्रतीत होने लगती है। उस दिन श्रीमती मैठाणी ने चाय की प्यालियाँ तक उसी से धुलवाई थीं और श्रीमती सक्सेना ने मजाक भी किया था।....और प्रभा जायसवाल तक ने कह दिया था—'इट मे बी पासिबल।'

छोटी-सी ट्रे में उसे चाय लिये आते देखकर वह कुर्सी पर से उठकर, आगे तक निकल आई। उसने भी एतराज नहीं किया और ट्रे गीता पाल को पकड़ा कर अपने कमरे में चला गया। छोटी-सी तिपाई लाकर, चाय की ट्रे उस पर रखने के बाद वह बोला—"बताइयेगा, चाय कैसी बनी है।"

"मुझे जाने क्यों इस बात में दिलचस्पी होती गई है कि कहीं आप

सचमुच हत्या या आत्महत्या या कोई ऐसी बात न कर बैठें, जो आपको आखिरी तौर पर गलत स्थितियों मे डाल दे । मैं स्त्री हूँ । प्रतिहिंसा कील की तरह भीतर चाहे जितनी धँसती जाय हमारे, बाहर को उसका रुख आक्रामक नही ही होता । मसलन हम लोगों के लिये यह मुश्किल है कि लोकापवादों में हों और उसे चुनोती के तौर पर लें जूझें।....और इसीलिये, शायद, औरत अपने चुप हो जाने में से ज्यादा तकलीफदेह बन जाती है दूसरों के लिये । बेवफाई और बददयानती का अहसास कराते वक्त औरत सिर्फ अपनी मजबूरियों में भी हो सकती है, यह कल्पना करना पुरुषों के लिये, शायद, सम्भव न रह जाता होगा ? खास तौर पर तब, जबकि वे अपने अनंत प्रेम में होने के जुनून या कि मुगालतों में होते है ।....नहीं, नहीं, ये बात, आप विश्वास करें, शेखर—मीना की वकालत में मैं कत्तई नहीं कर रही हूँ ।"—उसके परिवर्तित होते चेहरे पर नजर पड़ते ही, वह तुरन्त सावधान हो गई—"मै फिलहाल सिर्फ एक मित्र की हैसियत से बातें कर रही हूँ आपसे ।....और, शायद, ऐसी बातें, जो हर किसी से नहीं की जा सकती । जैसी बातें कर सकने की तलाश में हम अपने सपनों तक मे होते हैं । मै सिर्फ यह बात आपके सामने रखना चाहती थी कि इकतरफा सोचते जाना हमेशा ही सही नहीं हुआ करता । इससे गलतफहमियाँ और तकलीफें बढ़ती है ।...मैंने एक लम्बा अरसा तकलीफों मे गुजरा है । मैं कोशिश करना चाहती हूँ कि आप मुझमें एक ऐसी मित्र को देख सकें, जो आपकी दिक्कतों और मानसिक यातनाओं को समझ सकती हो ।"

"मम्मी भी बता रही थीं, मगर आपका नाम मुझे पहले भी याद था । यों ही बहाने मे आपसे पूछा था । जिन दिनों आपको और दीपक जो को लेकर अफवाहे थी इस शहर मे, मै शायद बी० ए० फाइनल मे था ।.... मम्मी बतला रहीं थीं कि आपका रुख मेरे प्रति काफी सहानुभूतिपूर्ण था । ....मगर, गीताजी, मैं इस वक्त आपसे सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि बस, यही हद है आपके-मेरे बीच । शायद, ऐसी कोई गुंजाइश नही कि मैं

आपको जिन्दगी की गहराइयों में जा आप मेरे निहायत पर्सनल और वाहियात किस्म की मानसिकता में किसी तरह का हिस्सा बँटा सकें।... और यह बात मैं आपकी इतनी अच्छी और आत्मीयता-भरी बातों के बावजूद कह रहा हूँ। इसका मुझे खुद अहसास है—और तकलीफ।"

"क्यों, ऐसा क्यों मानकर चलते हैं आप?"

"गीताजी, आप मुझसे कहीं अनुभवी महिला हैं। आप जानती होंगी, औपचारिकता सबसे ज्यादा वहाँ दीवार बनती है, जहाँ प्रेम का प्रसंग होता है। मेरा ख्याल है कि प्रेम वार्तालाप की चीज नहीं है, जब तक कि यह हमारे सम्पूर्ण अस्तित्व में न हो। हवा की तरह बहता। मैं लाख चाहूँ मीना को लेकर, किसी भी तरह के 'डिटेल्स' में जाना मुझसे आपके सामने हो नहीं पायेगा और उन 'डिटेल्स' में गये बिना मैं आपको समझा नहीं सकूँगा कि मेरे लिए हत्या या आत्महत्या के आवेगों में होने का अर्थ क्या है। माफ कीजियेगा, मैं फिलहाल कुछ असंतुलित किस्म की मनोवृत्ति का हो गया हूँ। आपसे बातचीत करते वक्त मुझे अपने-आपको लगातार साधे रहना पड़ रहा है कि कहीं आपको मेरे व्यवहार से शिकायत न हो। अभी बेगैरत नहीं हुआ हूँ। आप चाय पीकर यहाँ से वापस जा चुकेंगी, बिना किसी तरह का अप्रिय अनुभव लिए—तब मैं संतोष अनुभव कर सकूँगा। मैं यों ही बहुत 'गिल्टी कांशस' की गिरफ्त में रहता चला आ रहा हूँ। कब मेरा 'बिहेवियर' 'एबनार्मल' हो उठेगा, मैं खुद नहीं जानता।.... लेकिन मैं, विश्वास कीजिए, इस बात से बचना चाहता हूँ कि जिन लोगों का मुझसे वास्ता नहीं, जो मेरी दुर्गति के तमाशबीन भले हों, मगर जिम्मेदार नहीं है—उनके प्रति किसी भी तरह का असभ्य बर्ताव मैं करूँ।.... जबकि मैं डरता हूँ कि बर्दाश्त करना मेरे लिए सबसे ज्यादा तकलीफदेह चीज है। देखिए कि अजब है। एक विशेष कोण पर आपकी, मम्मी की और कामरेड दद्दा की बातों में अद्भुत समानता है। वो भी इकतरफा न सोचने की सलाह देते हैं। उस रविवार को आप लोगों को यहाँ एकाएक आया देखकर, मैंने कितनी और किस तरह की तकलीफ अनुभव की, बता

नहीं सकता। अगर मुझमे इतना इतमीनान न होता कि आप लोग अगर मेरे विरुद्ध कुछ कहने-सुनने आई होंगी, तो आप लोगों की भी वापसी वैसी ही होगी, जैसी पहले आये हुओं की हो चुकी, तो शायद, मैं बौखला गया होता। पर चूंकि इतमीनान था, इसीलिए—मैं चुपचाप मफलर लपेटता निकल गया।....और अब इस वक्त मैं आपको वता सकता हूँ कि यह सब मुझे 'इनह्यूमन' होना लगता है। दूसरों की जिन्दगी मे इस तरह दखल देना।....जो अपने किये का जोखिम उठाने को तैयार न हो, उसके लिए शायद फर्क न पड़ता हो।....मगर जो सारे किस्मों के जोखिमों के लिए तैयार बैठा हो, उसे खामखा दखल देने वाले सोशलिस्ट किस्म के लोग सिड़ी और निहायत वाहियात लगते हैं!"

लगातार, एक रौ में वातें करते जाने से उसका चेहरा अब तनाव-भरा हो आया था और आँखें रक्तिम। गले की नसें उभर आई थीं। वह एकाएक असहज हो उठा था।

वह खुद नहीं समझ पाई, कि ऐसा वह कैसे कर पाई, मगर जाने क्यों उसे इसके अलावा कुछ नहीं सूझा कि अपना हाथ उसके हाथ पर रख दे!

कुछ क्षण, दोनों ही, कुछ नहीं बोले।

गीता ने देखा कि धीरे-धीरे उसकी आँखें डवडवाई हैं और उसने वायाँ हाथ आँखों पर कर लिया है।

वह कुछ तय करती, कि इससे पहले ही धीमे से हाथ उठाकर, वह रसोईघर की तरफ निकल गया। वापस आया, तव साफ था कि एहतियात से मुँह धोकर आया है।

प्याली मे वची चाय को खेत की ओर फेंकते हुए, उसने केतली में से दोनों प्यालियों में गरम चाय ढाली। सिर झुकाये ही वोला—"मिसेज गीता, मै पहले ऐसा नहीं था। इतना असंतुलित। कभी-कभी लगता है, पागल होने के करीव आ गया हूँ। फजीहत और तिरस्कार ज्यादा आसानी से वर्दाश्त कर ले जाता हूँ। सहानुभूति सहसा गला 'चोक' कर देती है। यकीन नही होता कि अभी भी मेरे जीवन में कुछ ऐसा वचा है, जो सहानु-

भूति के योग्य है। मैं एक तरह से रात हो चुका हूँ। मैंने इरादा किया था कि आपके आगे बदहवास होने से बचूँगा, मगर....आप मुझे माफ करेंगी। मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ।"

"शेखर, आपसे बातें करते वक्त मैं डर रही हूँ कि कहीं मेरे मुँह से ऐसी बात न निकल जाय कि आप बुरा मान जाएँ। यकीन कीजिए, मेरे मन में कहीं भी, किसी तरह की तुच्छता की भावना आपके प्रति नहीं है। मैं सिर्फ इतना कहना चाहती हूँ कि सिर्फ अपनी ही तकलीफ को लगातार देखते जाइये, तो वह बढती ही जाती है। ....और साथ ही, शायद, यह अहसास भी जमता जाता है कि हमारी तकलीफ दूसरों की समझ, दूसरों की हिस्सेदारी से परे है। ....मैं अब धीरे-धीरे समझ पा रही हूँ कि आपके करीब मुझे आपके प्रति सहानुभूति या दिलचस्पी नहीं लाई है, मेरे जीवन मे बीता हुआ ले आया है। मेरा ख्याल है कि वक्त को बीतते देना इस तरह की मानसिक स्थितियों मे सबसे बेहतर चीज है और अगर हम अपने को अकेला करते जायँ, तो वक्त बोझ बनता जाता है। मैंने तय किया है कि मैं आपके साथ बातें करूँगी। हम लोग, वक्त मिलने पर, इधर-उधर कही टहलने निकल जायेगे। ऐसी मनोदशा मे अपने भीतर सिकुड़ने की जगह प्रकृति में जाना अच्छा रहता है। हमे दिखाई देता है कि दुनिया में सिर्फ हम और हमारी तकलीफें ही नही है—और भी बहुत-कुछ है।" —अपनी बात खत्म करते हुए, गीतापाल धीमे से मुस्कुराई—"और देखिए, आप 'मिसेज गीता' न कहकर, सिर्फ गीता कहें। मिसेज न मैं हुई—न होने का इरादा है। अब वह वक्त बीत गया।"

"यह, शायद इस देश की मिट्टी की ही कुछ खासियत है कि यहाँ तीस के आस-पास ही औरतों को अपने बुढापे का अहसास होने लगता है। ...औरतें, शायद, खुद ऐसा मानती है कि सात से लेकर सत्ताईस के बीच ही उनकी शादी हो चुकी होनी चाहिए। विदेशों में औरतें सत्तर-पार पहुँचकर भी शादी के दस्तानों के लिये हाथ खुले रखे रहती है।"—वह कहता रहा—"हिन्दुस्तान मे शादी का मतलब ही, शायद, बच्चे पैदा

करना है। मेरी जिन्दगी वहुत खब्त हो गई है। हर समय 'टेन्शन' में रहने का आदी हो गया हूँ। आप माफ करें, मिसेज गीता, तो एक छोटा-सा मजाक कर लेना चाहता हूँ।....अभी आपकी माँ वनने की उम्र वीती नहीं है।"

उसने चाय को प्याली को थोड़ी देर होठों से लगे रहने दिया। नीचे रखते वक्त, धीमे से हँसी—"आपको प्रसन्न मुद्रा में देखकर, मुझे खुशी हो रही है। ....लेकिन, शायद, आपको न तो मेरी उम्र का ठीक अन्दाजा हो पा रहा है और न मेरी मानसिकता का।"

इस वार उसने सिर उठाकर गीता पाल की ओर देखा। पहली वार यह हुआ कि दोनों अपेक्षाकृत घनिष्ठता से एक-दूसरे को देखते रहे।

"मेरा 'टेम्परामेन्ट' ही अजीब हो गया है। मैं समझती हूँ, तीस के बाद हर औरत में वदलाव आ जाता है, खास करके गैरशादी-शुदा औरतों में। लगता है कि दूसरों के हिसाब से अपने-आपको 'एडजस्ट' करने का लचीलापन चुक गया। अपनी पसंद, अपने स्वभाव का आदी होते जाना औरतों के हक़ में शायद ठीक नहीं।"

"आप ऐसा क्यों मानती हैं कि अपने स्वभाव मे रहने की छूट या हक़ सिर्फ...."

"ऐसा है, राजशेखर, प्रकृति अपने नियमों मे वेहद सख्त है। उसने जिसको जिस नियति में वाँध दिया है, उसके विपरीत जाना हमेशा अकेला करता जाता है।....देखिये, आप कहेंगे, वेशर्मी वरत रही हूँ, मगर इससे शायद आपको मुझे समझने मे सहूलियत होगी। मैं कई-कई वीमार लोगों की तीमारदारी कर सकती हूँ, मगर मेरे लिये यह कल्पना करना भी मुश्किल है कि मैं माँ वनकर, छोटे वच्चों का पालन-पोपण कर सकती हूँ। मैंने कहा कि लचीलेपन का खत्म हो जाना एक मुश्किल किस्म की जिन्दगी मे हमें डाल देता है। आपको यकीन न आयेगा, यदि मैं कहूँ कि मैं खुद वरसों तक 'सुसाइड' कर लेने के 'मूड' में रहती चली गई।....सवाल यही है कि कौन कर लेता है, कौन नहीं।.......मगर फैसला जल्दी ही कर

लेना ठीक होता होगा, ऐसा मुझे लगता है। दीपक के मुराझ्ट कर लेने के बाद, खुद मुझे भी 'मुनाइट'—याकि शादी—दो मे से एक चीज कर लेनी चाहिये थी।........लेकिन उसमें अब दस साल लम्बे वक्त का फासला आ गया और अब, शायद, सिर्फ जिंदा रहना है........श्रीमती मैठाणी की तरह।........हालांकि उनकी तुलना में मैं निहायत तुच्छ औरत हूँ।"

"जिस तरह की वो है, ऐसी औरत होने मे उन्हें भी वक्त लगा होगा, गीता ! जैसी एक-एक ईंट चिनकर खड़ी हुई है वो।........मगर हो सकता है, आपकी उम्र मे वो भी सिर्फ........"

"नही, राजशेखर ! उनमें और मुझमे एक फर्क है। इन्होंने अपने उस वक्त को भी एक तरह के मिशन में खपाया है और मिशनरी लाइफ आदमी को भीतर से मजबूत करती है। मेरा वक्त निहायत वाहियात बीता है। लोग जितना कहते हैं, उसमें सचाई बहुत कम है, मगर यह हकीकत है कि मैंने पवित्र जीवन व्यतीत नहीं ही किया है। औरत के साथ यह बहुत बडी दिक्कत है कि अपने-आपको जिस्म के सहारे ठेलते जाने का वक्त उसके पास बहुत कम होता है और उम्र लम्बी। एक वक्त आता है, जब सारा रख-रखाव धूल की तरह बिखर जाता है...........और गहरा 'मेक-अप' औरत के बुढापे को, छिपाने की जगह, उघाड़ने लगता है।"—वह हँस पड़ी और फिर बातों का रुख तुरंत बदल लिया।

"हाँ, आपने बीच में अपने कामरेड दद्दा का जिक्र किया था....यह तो आपको मालूम ही होगा ..."

"हाँ, मुझे मालूम है, गीता जी ! ...और अभी मैं कह नही सकता कि आपका इस घटना के प्रति क्या रुख होगा, मगर मेरी नजर में यह एक ईश्वरीय किस्म की चीज हुई है। आपने प्रकृति का जिक्र अभी किया था। कई बार तो, साहब, वह ऐसे-ऐसे करिश्मे कर डालती है कि लगता है, लाखों वर्ष पुरानी औरत है।"

"ओफ्, आपने हद दर्जा खूबसूरत बात की है।"—कहते हुए, उसने गहरी आत्मीयता के साथ फिर शेखर के हाथ पर अपना हाथ रख दिया।

बोली—"मेरे मन में भी बहुत है कि उन्हें देखूं। यों कामरेड मुझे जानते हैं।....मगर क्या यह नही हो सकता कि कभी हम दोनों साथ-साथ उनके घर...."

अपनी बात खत्म करके वह उसकी तरफ देखने लगी, तो उसने सिर्फ़ इतना कहा—"आपको, शायद, यह बात ताज्जुब करने लायक लगे—या शायद, बदतमीजी !—वो आपको कल ही 'इंवाइट' करने की बात कर रहे थे। कह रहे थे, आप मुझ में 'इंटरेस्टेड' दिखती है।....बहुत मजेदार आदमी हैं। मजेदार, फक्कड़ और अद्‌भुत !....हाँ, कल, शायद, आप कुँवर साहब वाले 'डिनर' में बिजी रही होंगी ?"

उसने कोशिश की थी, मगर धीमी-सा विनोद भाव उसके कहने में आ गया, यह उसने गीता पाल के चेहरे में एकाएक हुए परिवर्त्तन से भाँप लिया। वह कुछ और कहता कि गीता पाल का मुस्कुराना उसके आस-पास मधुमक्खी की तरह मँडराता चला गया।

"ऐसा है, शेखर, अहिपाल मेरे बहुत अच्छे दोस्त है।....और मैं कहना चाहूँगी कि चूँकि बहुत अच्छे, समझदार और खुले दिल-दिमाग के आदमी है, सिर्फ़ इसीलिये।"—वह जैसे एक-एक शब्द को तौल-तौलकर बोला रही थी—"उन्होंने कामरेड को 'इनवाइट' तो किया था, मगर वो आये नही।....और मै समझती हूँ, ठीक किया। वहाँ उनके संन्यासिनी को घर में जगह देने का बहुत चर्चा था और वह सब प्रीतिकर नहीं ही था। आपसे मेरी बातचीत हो चुकी होती, तो मै आपको जरूर वहाँ बुला ले जाती।"

"मेरे पहुँच जाने पर वहाँ का माहौल कही और ज्यादा अप्रीतिकर—बल्कि कहना चाहिये मुझे कि बदतर हो जाता !"

बात को उसने जोर देकर लेकिन कुछ इतने मौजी भाव से कहा कि गीता पाल एक पल उसे देखती रही और जैसे अब तक की सारी संजीदगी को एक ही झटके में तोड़ डालना चाहती हो, जोरों से खिलखिला उठी।

हँसी थमी, तो वह चल पड़ने की मुद्रा में होने लगी, बोली—

खुद असंलग्न हो जाने वाली इस औरत को वह सबक जरूर देगा !........
लेकिन उस प्रसंग से अपने को अलग कर लेने की बातें सोचते ही पहले इस स्त्री के प्रेम और फिर विश्वासघात में होने की अपनी आज तक की सारी व्याकुलता निरर्थक मालूम पड़ने लगती है।....बल्कि, सिर्फ़ निरर्थक नहीं, हास्यास्पद और टुच्ची भी !....

कैसे थे, यहाँ पहुँचने के बाद के, कुछ शुरू-शुरू के दिन, जबकि यह अप्रत्याशित किस्म की स्त्री-वंचना की यातना प्रारम्भ हुई ही थी और ज्वालामुखी के लावे की तरह इकट्ठा होती चली गई।........और वह सिर्फ इस निहायत टुच्ची लेकिन पूरे अस्तित्व मे आंधी की तरह बहती व्याकुलता में होता ही चला गया कि सुबह, दोपहर, शाम, रात—किसी भी वक्त ! सड़क पर, बाजार में, एकांत मे, भीड़ में।....अकेली या उसके साथ।.... सिर्फ एक बार को वह दिख-भर जाय।

वह अब साफ महसूस करता है कि उन दिनो वह हत्या के नही आत्म-हत्या के जुनून से भरा था। कहा जाय कि वह उन दिनों विदीर्ण था। वह यहाँ तक कल्पना करता था कि उसके आने-जाने के रास्ते के किनारे के किसी पेड़ की टहनी पर फाँसी लगाकर, वह मर जायेगा और उसकी रस्सी के सहारे झूलती लाश को देखकर, वह चीखकर, बेहोश हो जायेगी।....और जब उसे किसी तरह होश में लाया जायेगा—या कि इस शहर के चप्पे-चप्पे में प्रत्येक क्षण मौजूद रहने वाली ठंडी हवा के स्पर्शों से वह खुद धीरे-धीरे आँखें खोलेगी—कैसा होगा उसका वह दारुण विलाप, जबकि वह उसके जमीन की ओर झूलते पाँवों को अपने हाथों में भरकर 'राजशेखर ! राजशेखर !' चिल्लायेगी और उसकी यह करुण चीत्कार इकट्ठा हो गई भीड़ के दिलो को दहला देगी ?

'अगर मैं जानती कि तुम इस हद तक....'—बस, यही सुनने को तो वह तरसता था और इसके लिये कोई भी जोखिम वह उठा सकता था।

अब कहीं, एक अंतराल के बाद, वह कह सकता है कि उन दिनों उसके लिए दिल और दिमाग, दो अलग-अलग इन्द्रियाँ रह नहीं गये थे। उन दिनों वह अपने पूरे शरीर से सिर्फ अनुभव करता था। अनुभव करता था कि अपने-आपको प्रेम और वंचना की अनंत ऊँचाइयों और गहराइयों में महसूस करने के अलाला और कुछ भी ऐसा नहीं है, जो उसके लिए शेष रह गया हो।.......और, साफ है, कि इस तरह के पागलपन की हद आनी थी।

पहले वह इस बात को ठीक-ठीक पहचान नही पाया कि आखिर वह आत्म-हत्या करने से बच कैसे गया। अब इतमीनान से बता सकता है कि क्यों।

लेकिन हद है कि जब वह दिखी, तब उसके रुख मे कैसी मादा पशु की सी असंलग्नता थी? जब संतुलन खो बैठने पर उसने प्रोफेसर तिवारी का गला पकड़ लिया था, तब भी कैसा ठंडा और आवेगहीन था उस औरत का चेहरा? सिर्फ किसी गुण्डे से साबका पड़ जाने की सी विक्षुब्धता में वह किस कदर 'स्नॉब्र' लग रही थी? बस, वही—और उसी क्षण—तो उसने एकाएक महसूस किया था कि—नहीं, आत्महत्या करके वह इस औरत में झील मे तिनका पड़ते-जितनी हलचल भी उत्पन्न कर नहीं पायेगा!

...और अब, जबकि वह खुद महसूस कर चुका है कि आत्म-हत्या कर लेने या हत्या करने की बातें करना, सिर्फ हवाइयाँ हाँकना रह गया है। ....सोचते-सोचते अपने-आपको अफीमच्चियों की तरह नशे में कर लेने के अलावा, अथवा बोलते-बोलते अब खुद को ही फालतू लगती-सी उत्तेजनाओं से भर लेने के अलावा स्त्रीवंचना के इस जुनून का कोई और हश्र बाकी दिखता नहीं है—तब और कब तक इस शहर में यों ही पड़े रहना सम्भव होना चाहिए? ....आखिर कब तक यह महसूस हो पाएगा कि अपने भीतर की व्याकुलता वह दूसरों के भीतर भी प्रतिबिम्बित कर पा रहा है? अंततः जब सारा आवेग पतझड़ के पत्तों की तरह झर चुका

होगा, तब निरे ठूंठ की तरह इस शहर से कहीं अन्यत्र वापस जाने और रोजी-रोटी की तलाश वाली खांटी व्यावहारिक—और जरूरी—जिंदगी की फिर से शुरुआत करना सचमुच कितना मुश्किल होगा ?

मुश्किल और तकलीफदेह ।

अचानक उसने अनुभव किया कि सोचते-सोचते वह किसी अंधकूप में होता जा रहा है। सिर में भारीपन और आंखों मे जलन महसूस होने लगी थी। वह उठा और बाहर बारामदे में निकल आया।

बाहर खुले में आते ही उसे लगा कि आस-पास फिर गीतापाल के साथ व्यतीत हुआ वक्त लौट आया है। वह दूर-दूर तक, ओकवुड की तरफ आती सडकों, पगडंडियों की ओर देखने लगा और यह साफ-साफ तय नही कर पाया कि किसको देखने की कोशिश कर रहा है—श्रीमती मैठाणी को या गीता पाल को !

कामरेड के घर के नजदीक वह पहुँचा, तब धूप जमीन पर नहीं रह गई थी। ऊँचे चीड़-देवदारु के वृक्षों पर थी। बिलकुल चोटी की टहनियों पर, पक्षियों की तरह उझकती-सी।

सड़क के किनारे उसने देखा, छः-सात माइयाँ बैठी थीं। किनारे की कम ऊँची दीवाल पर उन्होंने एक लम्बी, भगवा चादर बिछा रखी थी और उसी पर बैठी थीं सब।

उसने महसूस किया, माइयों ने आपस में एक-दूसरे को ठेला है।

वह आगे बढता कि एक माई बोल उठी—"सुबह से आई बैठी है हम सब—भूखी-प्यासी !"

उसने मुडकर देखा, कहने वाली लगभग चालीस के पार ही थी। घुटे हुए सिर के कारण उसका मुंह सिकुड़ा-सा लग रहा था। ओंठ मोटे, आंखें कंजी और फटे होने से नीचे लटक आये कानों मे वह जरूरी तौर पर संन्यासिन कर दिये जाने-योग्य स्त्री लग रही थी।

"ये वाली पसंद हो, तो इसी का हाथ पकड़ ले चलो, वेटा! ग्रम्मा का ग्राशीर्वाद तुम दोनों के साथ है!" —उसकी वगल में वैठी वुढ़िया के इस मजाक ने सवको ठहाकों में कर दिया।

एकाएक उसे ख्याल ग्राया कि कहीं ये सरस्वती की साथिनें तो नहीं? कामरेड ने उस दिन सुवह वताया तो था, वापस ले जाने ग्राई थीं। वह समझ गया कि उसके वारे में भी इन्हें जरूर पता है। उनकी ग्राँखों से व्यंग चू रहा था ग्रौर ग्रपनी इस ग्राक्रामकता में वो लगभग वीभत्स लग रही थी।

शेखर ग्रभी परेशानी, खीझ ग्रौर ग्रसंमजस में ही था कि उसने देखा, सामने से सरस्वती चली ग्रा रही है—लगभग दौड़ती। जव तक में वह कुछ सोचता, उसने हाथ में थमे सोंटे से तड़ातड़ उन माइयों को मारना शुरू कर दिया ग्रौर वो विलविलाती, गालियाँ वकती, भागने लगीं।

सरस्वती ने एक नजर उसकी ग्रोर देखा ग्रौर वापस घर की तरफ दौड़ गई।

शेखर ने एक वार मुड़कर, भागकर फासले पर खड़ी हुई माइयों को देखा। उनमें से एक दीवार पर से चादर उठाने को इस ग्रोर ग्रा रही थी। वह तेजी से ग्रागे वढ़ गया।

पहुँचा, तव दरवाजा खुला था। वह जिस तरह घुटनों में सिर दिये वैठी थी—घर में इस वक्त, कामरेड की ग्रनुपस्थिति साफ मालूम पड़ रही थी।

घुटनों पर से निमिष-भर को सिर उठाकर, उसने शेखर की ग्रोर देखा ग्रौर दूसरे क्षण फूट-फूटकर रो पड़ी।

वह समझ नहीं पाया कि कैसे सांत्वना दे। वह जिस तरह की मनःस्थिति में ग्राया था, उसे यह सव सिर्फ ग्रसुविधाजनक ही नहीं, कष्टकर प्रतीत हो रहा था।

"कामरेड दद्दा घर में नहीं, क्या?" —दरवाजे के पास खड़े-खड़े ही, उसने किसी तरह कहा। वह यह भी कहना चाहता था कि ग्रगर उसे

पता होता कि वो औरतें उसे परेशान करने आई है, तो खुद ही भगा देता, मगर लगा, यह सिर्फ अपनी खिसियाहट प्रकट करना होगा।

"आप किसी तरह की फिक्र न करें। ये लोग आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं। देखिये...."

सरस्वती ने एकाएक आगे बढ़कर उसके पाँव पकड़ लिये, तो वह इस अप्रत्याशित व्यवहार से बुरी तरह हतप्रभ हो गया। वह समझ ही नहीं पाया कि क्या करे। उसकी बाँहें पकडकर, अपने पाँवों पर से अलग हटाने का इरादा जैसे सिर्फ हाथ की नसों मे फड़ककर रह गया।

कुछ ही क्षणों मे लगा, उसके रोने की आवाज से कान ऊपर तक भर गए है और सहसा उसने सरस्वती की दोनों बाँहों को पकड़कर, अलग हटा दिया—"भाभी जी, आपका इस तरह का व्यवहार मैं बर्दाश्त नहीं कर पाऊँगा।"

उसका चेहरा एकाएक बदल गया। आँखों मे स्थिरता आ गई। निहायत सधी आवाज मे उसने कहा—"भैया जी, आप हमारे लिए भाई की तरह हैं। हम भी बर्दाश्त नही कर पाईं। आपकी जगह पर पत्थर भी होता, तो शायद, हम उसी पर गिर पड़तीं।"

उसने अनुभव किया, इस औरत ने उसके चेहरे पर फैली बदहवासी को हल्के से पोछ दिया है।

"कामरेड दद्दा कहाँ गये है?" —उसने अपने-आपको पूरी तरह संतुलित कर लेने की कोशिश मे कहा।

"बाजार की तरफ कहीं गए होंगे।....भैया जी, हमे अपने जिये-मरे की कोई फिक्र नहीं, मगर हम देख रहे हैं—हमारे आते ही उनपर मुसीबत पड़ गई है। फक्कड़ी के आदी रहे होंगे। मिला, खा लिया, नहीं तो चाय-बीड़ी बहुत हैं। कुरता-पायजामा टाँग लिया, पूछने वाला कौन हैं,कि फटा है, पुराना है,गंदा है। ....अब एकाएक बोझ पड़ गया है। उस दिन बाद में बता रहे थे, टाइप बेचने ले गए थे, तो मालूम पड़ता था, अपना ईमान

बेचने निकल पड़े है। बाहर से बीहड दिखते हैं, भीतर बच्चों से भी गये —बीते है।"

"सो मैं जानता हूँ—"

"भैया जी, ये हिम्मत न हारने पावें...."

"आपको ऐसा लगता है कि वो कमजोर आदमी हैं ?"

"नही लगता, भैया जी, इसी से डरने लगी हूँ। कमजोर झुक जाता है, लचक लेता है, टूटता नहीं।"

"मैं क्या कहूँ, भाभी, आप खुद बहुत समझदार औरत है। फिर मेरा खुद का कोई ठिकाना नहीं। आप जानती ही हैं, मैं भी ग्रहों के फेर में पड़ गया हूँ। जिन्दा रह गया, तो जीवन पहाड़ बन जायेगा, ऐसा महसूस होने लगता है। ....इस शहर मे ज्यादा रहना भी नहीं हो पायेगा...."

"आप अभी रात के सफर मे हैं, भैया जी ! रात का चलना मुश्किल ही होता है। मगर भगवान् आपकी सारी मुसीबतें दूर करेगा। आपके दद्दा कह रहे थे कि 'शेखर बहुत जल्दी ही शादी कर लेगा।' कह रहे थे, बाढ़ में बहते आदमी को सहारा मिलने-भर की देर होती है।"

अपनी बात खत्म करते, उसके होठों पर हल्की, निहायत आत्मीय किस्म की मुस्कुराहट आ गई। शेखर को लगा, उन माइयों में इस चीज का कही—दूर-दूर तक कोई चिह्न नहीं था, जो इस औरत की आँखों में अचानक को रोशनी की तरह कौंध उठती है।

'आपके लिए चाय बनाती हूँ, भैया जी !' कहते हुए, वह उठने को हुई ही थी कि शेखर ने रोक दिया—"नहीं भाभी, इस वक्त नहीं। मैं भी बाजार की तरफ चलता हूँ, कामरेड दद्दा मिल जायेंगे, उन्हीं के साथ चाय पी लूंगा।"

सड़क पार करके, सरदार दिलदार सिंह के रेस्तराँ की तरफ वह वढ़ा ही था कि उसे थोड़े-से फासले पर फिर माइयाँ दिखाई दे गईं। इस वक्त उनके साथ तीन-चार लोग और थे। जरा-सा गौर से देखते हो, उसने शारदा पण्डित को साफ पहचान लिया।

मफलर को ठीक से लपेटता, वह तुरन्त आगे बढ़ गया ।

कामरेड उसे रेस्तराँ में ही मिल गए । बोले—"यार, घर में लाख चाय बने, मगर दोपहर—बाद जब तक सरदार भाई के यहाँ का दोसा न मिले, लगता है, कुछ नहीं मिला । यही शख्स एक ऐसा दिलदार है इस शहर में, प्यारे, जो मुझ फटीचर से कहता है कि पैसा न होने पर भी एक दोसा मैं रोज खा सकता हूँ और कड़क चाय—जब तक कि या तो यह जिंदा है और या मैं !....पृथ्वी डूबने से ऐसे ही लोगों से बची हुई है ।"

"आप तो. कामरेड ब्रदर, साली तारीफ इतनी मार देते हो कि दिल बैठ जाता है ।"—सरदार दिलदार सिंह का चेहरा संकोच और प्रसन्नता से पालतू-सा हो आया ।

चाय पीकर दोनों बाहर निकले, तब शेखर ने सारी घटना बताई और कहा कि उन्हें घर जल्दी जाना चाहिए, मगर कामरेड ने उसका हाथ पकड़ लिया—"नहीं, अभी नहीं जाऊँगा । चलो, नीचे तक घूम आयें । शाम होने पर लौटेंगे ।....और, यार, तुम खाना हम लोगों के साथ ही खा लिया करो ।"

"नहीं, यह सम्भव नहीं है । कभी-कभार की बात और है । मम्मी बर्दाश्त नहीं कर पायेगी जितने दिन इस शहर में हूँ...."

"अरे, यार ! मैं लगभग नास्तिक आदमी हूँ, मगर मेरा ब्रह्म बोलता है—तुम अभी बहुत इसी शहर में रहोगे । मेरा दिल न तोड़ा करो, यार ! मुझे तुम्हारे आत्म-हत्या या हत्या कर डालने के जुनून से इतनी तकलीफ नहीं होती, जितनी तुम्हारे इस शहर को छोड़ जाने की धमकी से !"

"ऐसा क्यों" ?—वह सहसा रुक गया ।

"ऐसा यों, प्यारे, कि मैं जानता हूँ—पहली दो चीजें तुमसे होनी नहीं है, लेकिन तीसरी चीज तुम कर सकते हो ।"

उसने महसूस किया कि कामरेड का कंधे पर आया हुआ हाथ उनके स्नेह और अवसाद के बोझ से बहुत वजनदार हो आया है ।

● ●

१६

लेकव्यू पैलेस होटल के नीचे वाली सड़क से दोनों चले जा रहे थे कि एकाएक एक भद्र महिला सामने पड़ गई और कामरेड के दोनों हाथ यंत्रवत् जुड़ गये—"नमस्कार, माता जी !"

कामरेड से स्नेह पूर्वक 'जीते रहो, बेटा !' कहते हुए, महिला ने अपना रुख राजशेखर की ओर कर लिया—"क्यों, बेटे, माँ से भी गुस्सा हो क्या ?"

वह अभी इस भेंट की आकस्मिकता से ही नहीं उबर पाया था। दूसरे, वो उसकी ओर भी रुख करके, बात करेंगी, यह कल्पना उसे नहीं थी।

भुवनमोहिनी देवी के कहने में जैसा स्नेह था और बड़प्पन, वह सहसा कुछ कह नहीं पाया। उसके दोनों हाथ जरूर आपस में जुड़ गये, मगर होठों पर शब्द की जगह, सिर्फ चेहरे पर ग्लानि का भाव आ गया।

वो आगे बढ़ी, उसके कंधे पर हाथ रखा। बोलीं—"बेटे, जीवन में बड़ी-बड़ी विडम्बनायें आती रहती हैं, उनका सामना घृणा और क्रोध से ही नहीं, प्रीति से भी किया जा सकता है। मेरे लिये तुम अब भी वही 'माता जी' कहकर पुकारने वाले शेखर हो। मैं तुम्हे उपदेश नही दूँगी, उससे कुछ लाभ नहीं।—हाँ, स्नेह दे सकती हूँ। अभी घर पर आओ दोनों जन। क्यों ?"

"जी, जी, आयेंगे....आयेंगे।"—वह बुरी तरह हतप्रभ हो गया था।

"हाँ, माताजी, कभी मैं इसे जरूर ले आऊँगा। आपके नजदीक इसे सकून ही मिलेगा।"—कामरेड ने फिर हाथ जोड़ दिये।

भुवनमोहिनी देवी ने दोनों की ओर अत्यन्त स्नेहपूर्वक देखा, धीमे से मुस्कराई और पटेल चौक की ओर बढ़ गई। मुस्कुराते में उनकी आंखो में उभर आयी करुणा और विषाद की छाया, दोनों को लगा, उनकी चेतना पर उतर आई है। काफी देर दोनों आपस में कोई बात नही कर पाये।

"यार, मिरोज मैठाणी—और ये भुवनमोहिनी देवी—ये दो अद्भुत औरतें पैदा की हैं इस शहर ने। जब ये दोनो बोलने लगती है, नदियां होने लगती है। हद हैं। देखा तुमने कि इस औरत के चेहरे पर, आंखों में, आवाज मे—कही भी एक तिल-भर नफरत या गुस्से का भाव तुम्हारे प्रति पैदा हुआ? कुछ लोग ऐसे होते है, जिनके लिये जिंदगी सांस लेने-जैसी स्वाभाविक चीज हो जाती है।"

'मैं चकित रह गया। मैं इन्हें बहुत नजदीक से जानता हूँ। बहुत ही असंलग्न किस्म की औरत है। मीना से मिलने जाया करता था, घंटों उसके साथ गप्पें लड़ाता था, मगर इनका हाल ये था कि ये सिर्फ चाय-नाश्ते को पूछती थी और या ये कि घर में अम्मा कैसी है। कभी यहाँ क्यों नहीं आती है। मैं इनके उस तरह के 'एटीट्यूड' से मान के चलता था कि इन्हें भी मैं पसंद हूं।....मगर अब मुझे लगता है कि ये अपनी बेटी के स्वभाव को शायद जानती होंगी। नही तो मेरी इतनी गंदी हरकतों के बावजूद, उनकी आंखों में जो क्षमाभाव था—इसे स्वाभाविक नहीं हो कहा जा सकता।"

"यार, तुम्हारी चीजों को 'आब्जर्व' करने की शक्ति बिला शक बढ़ गई है। तुम तो बिल्कुल साइकोलाजिस्टों की सी जुबान बोलने लगे हो।"

"अच्छाई के आगे आदमी गूंगा पड़ने लगता है। जब वो खड़ी थीं और मेरे कंधे पर हाथ रखा उन्होंने, तो लगा, बौना किये दे रही है। मैं इनके घर कभी नहीं जाऊँगा। मै इतना बेगैरत नहीं हूँ।"

कामरेड ने कंधे पर हाथ रखा—"खैर, ये सब फिर देखेंगे। मैं आज तुमसे कुछ बातें जरूरी तौर पर करना चाहता हूँ, शेखर!....यह तुम समझ लो, भाई कि फितूर का वक्त निकल चुका है। अपने साथ जबर्दस्ती मत

करो। जो आदमी इस जिद पर अड़ जाय कि बहरे को मैं अपनी बात सुनाकर रहूँगा, उससे बड़ा कोई बेवकूफ नहीं। मीना से अब धीरे-धीरे असंलग्न होते जाना ही तुम्हारे हक मे है और यह सिर्फ तभी सम्भव होगा, जब तुम अपनी संलग्नता किसी तरफ बढ़ाओगे।....नहीं तो एक वक्त ऐसा भी आ सकता है, जब तुम पाओगे कि अपने इस संघर्ष में तुम सिर्फ फालतू पड़ के रह गये हो।"

"कामरेड दद्दा, मुझे हैरत है कि कहीं हम दोनों के अन्दर एक ही मशीन तो फिट नहीं? यकीन जानें, मैं यही सब सोच कर दिमागी बद-हवासी में होने लगा था और आखिर घबराकर बाहर निकल आया कि आपके साथ गप्पें लड़ाने से कुछ राहत महसूस करूँगा। खुद मेरे लिये यह सोचना बहुत तकलीफदेह हो चुका कि एक दिन—और शायद, जल्दी ही—वह भी आयेगा, जब मुझे पता चलेगा कि न मैं कुछ कर पाया हूँ, न कर पाना है। मैं कल्पना करता हूँ कि आखिर एक दिन मुँह-अँधेरे वाली बस या टैक्सी से यह शहर छोड़कर 'प्लेन्स' की ओर चल देता हूँ—लोगों की निगाहों से अपने-आपको बचाये रखने के लिये स्वेटर ऊँचा किये और मफलर लपेटे हुए! और मैं आपको बता नहीं सकता कि इस तरह की वापसी में अपने-आपको देखते हुए मुझे कितनी तकलीफ होती है। तकलीफ और नफरत। आखिर-आखिर एक पूरी तरह खोखल और 'डिस्गस्टेड' आदमी की तरह वापिस चल देने की कल्पना आज भी मुझे 'सुसाइट कमिट' कर लेने की तरफ धकेलती महसूस होती है। मैं खुद अपनी ही नजरों में गिर चुके होने के ख्याल से ही बेचैन होने लगता हूँ....और मुझे महसूस होने लगता है कि टाँय-टाँय फिस्स किस्म की नफरत और प्रतिहिंसा की एक ही वजह हो सकती है—टाँय-टाँय फिस्स किस्म की मुहब्बत!....और मेरी ट्रेजेडी ये है कि मैं खुदा के सामने भी यह कुबूल कर नहीं सकता कि मैं मीना से बेइंतहा मुहब्बत करता नहीं था।"

"यार, तुम्हें बोलते सुनता हूँ, तो फिर यही महसूस करता हूँ कि

तुम्हारे भीतर एक अच्छा 'फिक्शन राइटर' होने की जबर्दस्त गुंजाइश है। मैं तुममें...."

"कामरेड दद्दा, दूसरों की जिन्दगी को मेज पर रखकर 'फिक्शन' तैयार करना दीगर चीज है—अपनी जिन्दगी को 'फिक्शनिंग' होते जाना देखना दीगर। मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि आदमी को अपनी नफरत और गुस्से को पूरा जी लेना चाहिये—और या इस दलदल में से बिल्कुल किनारे हट जाना चाहिये। ज्यों-ज्यों फासला बढ़ता जाता है, मेरा यह महसूस करना बढ़ता जाता है कि मैं देर कर रहा हूँ। इधर मेरे जी में एक और फितूर सवार हुआ है। इसे मैं खुद से भी छिपाने की जरूरत महसूस करता हूँ, मगर अपने-आपको बर्दाश्त करना मेरे लिये पहले ही मुश्किल हो रहा था—आपका मिल जाना और वजह बन गया है।"

"कहो तो"—

"आप एकाएक गुस्सा न हो जाइयेगा। फिलहाल सिर्फ सुन लीजिये और यह मानकर चलियेगा, कि अपने मेन्टल-परिवर्तन को हलका करने के लिये कह रहा हूँ।"

उसने अपने-आपको सड़क के बिल्कुल किनारे खड़ा कर लिया और एक पांव किनारे की भीत पर रखकर, कंकर हाथ में लेते हुए, निहायत ठंडी आवाज में बोला—"मैं एक बार और वे भी सरे-आम—उस चोट्टिन के मुँह पर तमाचे जड़ना चाहता हूँ।....और मैं महसूस कर रहा हूँ कि इतना कर लेने के बाद मैं काफी हलका हो जाऊँगा।....बेचारे प्रोफेसर तिवारी पर हाथ उठा बैठना अब मुझे खुद बहुत शर्मनाक लग रहा है। मुझे लगातार महसूस होता गया है कि मैंने 'इनह्यूमेनिटी' बरती है। गुस्सा बरतना एक चीज है, गलाजत बरतना एक। मेरा ख्याल है, अगर उस दिन मैंने उस औरत को सबक सिखाया होता, तो मुझे कत्तई पछतावा न होता।"

अपनी बात पूरी करते ही, उसने हाथ में थमे कंकर को पूरी ताकत

से दूर फेंक दिया और तेजी से आगे चल पड़ा, जैसे कामरेड को प्रतिक्रिया जानने से बचना चाहता हो।

कुछ दूर निकल जाने पर वह थम गया। तेज-रफ्तार कामरेड को उसके पास पहुँचने में ज्यादा वक्त नहीं लगा, मगर कुछ कहने को अभी उन्होंने मुंह खोला ही था कि वह यह कहता फिर तेजी से आगे निकल गया—"कामरेड दद्दा, चाय की तलब लग गई। चलिये कहीं गुमटी की बेन्च पर बैठकर चाय पी जाय।"

कामरेड ने तेज चलते हुए, उसे पकड़ लिया और उसके मफलर को लगाम की तरह खींचते हुए बोले—"चूतिया बनाने की कोशिश मत करो, यार! चलो, तुम्हारे इस महान् लक्ष्य के बारे में मैं कोई बात नहीं करूँगा।"

वह पीछे मुड़ा, मुस्कराया—"मगर, फिक्र की कोई बात नहीं, कामरेड दद्दा, आपको चुप रहने की सजा भुगतनी नही पड़ेगी। आपके लिये आज मेरे पास ढेर मसाला है।....आज दोपहर से कुछ पहले-पहले वह 'ओकवुड' आई थी।....अकेले!"

कामरेड 'कौन?' पूछने की मुद्रा में हुए ही थे कि उसने वजन देते हुए कहा—"मिसेज गीता पाल!"

लगभग पूरे शहर की परिक्रमा और घंटों बातचीत करके, दोनों घर वापस लौटे तो थाने के सामने से उन्हें गुजरता देखते ही, एस० ओ० मियाँ सिद्दीकी ने आवाज दी—'क़ामरेड साहब, आदाब अर्ज!' 'आदाब, सिद्दीकी साहब!' कहते हुए, कामरेड तो सिद्दीकी के नजदीक चले गये, मगर वह अपनी ही जगह रुक गया।

"अरे भई, शेखर साहब! आप क्यों वहीं ठहर गये? अरे, भई, रामप्रताप, जरा साहब को बुला ले आओ।"

सिद्दीकी इतने जोर से बोल रहे थे कि वह रामप्रताप के आगे बढ़ने से

पहले ही उनकी तरफ आगे बढ़ आया—"नमस्कार सिद्दीकी साहब ! माफ कीजियेगा, मैंने सोचा, आपको 'डिस्टर्ब' न किया जाय।"

"नमस्कार !" सिद्दीकी हँसते हुए आगे बढ़े। उसका हाथ पकड़ लिया—"बहुत खूब, मिर्जा ! जो लोग चाहते हैं कि आप उन्हें 'डिस्टर्ब' न करें, तो खुदा की मेहरबानी—उन्हें तो आप चैन नहीं लेने देते हो ! और हम चाहते हैं कि जितना जी चाहे, हमें 'डिस्टर्ब' करो—इस पहाड़ की सर्विस में तो, बस, ऊब-ही-ऊब है। न चोरी, न डाके, न रहजनी, न 'किडनैपिंग' और न खूँरेजी !....मगर आप हमसे कुछ देर गप लड़ाने की जगह कन्नी काट कर निकल जाते हैं ?"

"यानी आप ये कहना चाहते हैं, सिद्दीकी साहब, कि चोर-डाकू-रहजन-किडनैपर-कातिल सबकी कमी अकेले मुझसे ही पूरी हो जाती दिखाई देती है ?"—उसने मफलर ठीक से लपेटते हुए, कहा, तो 'अरे, नहीं, भाई !' कहते हुए, सिद्दीकी ने उसे अपने कंधे से लगा लिया।

सिद्दीकी मियाँ के आग्रह से लाचार होकर, उन्हें बैठना पड़ा।

रामप्रताप को चाय-नमकीन लाने का आदेश देकर, सिद्दीकी कामरेड की तरफ मुखातिब हुए—"कामरेड साहब, इसे आप मजाक या फार्मेलिटी न मानियेगा। आपकी इज्जत मेरी निगाह में पहले भी थी—अब और इजाफा हुआ है।....और वो भगतन ससुरियाँ आपके घर के रास्ते पर धरना देने बैठ गई थीं ? बहन जी से आप कहियेगा कि आइंदा से आयें तो, बस, चमड़ी ही उधेड़ लें, बाकी सब सिद्दीकी देख लेगा।.... रामप्रताप कह रहा था कि फिलहाल कहीं नीचे की तरफ निकल गई हैं। हमें तो सब 'मोटिवेटेड' लगता है।....एक एहतियात आप और जरूर बरतें। मैंने सुना है, एडीटरजादे आपके खिलाफ कुछ खिचड़ी पकाने में जुटे हैं। वो तो गनीमत कहिये कि सी० आई० डी० इन्क्वायरी में आपके कम्यूनिस्टों से ताल्लुकातों की बात बेबुनियाद पाई गई, नहीं तो डी० आई० आर० की गिरफ़्त में आ चुके होते। आप लोगों के पहाड़ में खून-खराबा, चोरी-डाका यहाँ नहीं, मगर सियासी चारसौबीसी बहुत है।"

"मुझे, जो कुछ आप कह रहे हैं, इल्म है, सिद्दीकी साहब ! फिर भी मैं शुक्रगुजार हूँ आपका। आप वेहतर जानते हैं इस वात को, मुझे फिसाद की आदत विल्कुल नही मैं सिर्फ दिमागी कुश्ती का मुरीद आदमी हूँ। और इन राजशेखर भाई को भी यही। समझाता हूँ कि भइया, पढ़ा-लिखा आदमी जहाँ लठैती पर उतरा, वहीं वुरी तरह पिटा। उसे तो वस, दिमागी हथियारों से लड़ना चाहिये।....और, खैर, मैं कह सकता हूँ कि ये मुझसे भी गहरी समझ वाले इंसान हैं। आप इनकी फिक्र न करें।"

"खैर, वातें तो इनसे भी मेरी हो चुकीं और मैंने ख़ुद महसूस किया है कि ये निहायत नेकदिल और सच्चे आदमी है। बस, जज्वाती जरा ज्यादा है—और फिर मुहब्वत में तो, साहव, हमेशा ज़्यादा सिंसियर पार्टी ही पिटती है। माशूकों की वेवफाई आशिकों की वफादारी पर चढ़ न बैठती होती तो फिर मियाँ गालिव-मीर काहे पैदा होते !"

"आपका जवाव नहीं, सिद्दीकी साहब ! आप-जैसा शायरमिजाज और शाइस्ता इंसान कहाँ इस थाने की कुर्सी पर आ वैठा।"....कामरेड ने कहा, तो सिद्दीकी वायीं आँख दवाते वोले—"कामरेड साहव, हम मुसल-मानों के घरों में तो साले चूहे तक शायरमिजाज ही पैदा होते हैं।"

चाय पीकर, दोनों ने इजाज़त चाही, तो सिद्दीकी सड़क तक छोड़ने चले आये। शेखर के कंधे पर हाथ रखते वोले—"शेखर साहव, आपने खुद गौर किया होगा, मैंने आपसे पहले कभी इस लहजे में कुछ न कहा कि ये ठीक नहीं, वो ठीक नहीं। ताजे घाव को छूना ठीक नहीं।....मगर अब मैं आपसे ये, वतौर वड़े भाई के, गुजारिश करना चाहता हूँ कि ख़ुद को सिर्फ सँभालने की ही नहीं, वल्कि जिंदगी को सँवारकर, वेहतर और खूवसूरत बनाने की कोशिश करिये।"

लौटकर, घर के करीव पहुँचे तो वाहर ही इस वात का आभास हो गया कि कहीं किसी कमरे में दीया जलाया गया है।

"कामरेड दद्दा, एक वात आपसे कहना चाहता हूँ। मेरे पास लगभग साढ़े तीन हजार रुपये पड़े हैं। इनका वजूद भी इस वात का सवूत दे रहा

जगह सड़क की दीवार पर ज्यादा बैठी हुई थी। मैंने तय कर लिया कि खुद को उत्तेजित कर लेने की जगह इनको ऊब जाने दूं। और रह गया तुम्हारी भाभी का सवाल, तो यह मेरी जिदगी का सबसे बड़ा—और शायद आखिरी—'इक्सपेरीमेन्ट' है। जोखिम मैंने उठाया है और मुझे अहसास है। अहसास है कि इस औरत के पीछे जो अतीत रेगिस्तान की तरह अभी भी मौजूद है, फिर उसमें वापस जाने की नौबत से इसे बचाना है, क्योंकि अब यह औरत वहाँ जिदगी नही, सिर्फ मौत गुजार सकती है। और, प्यारे, किसी के विश्वास, किसी की आकांक्षा को टूट जाने देना—यह भी एक हत्या है।"

वह कुछ भी बोला नहीं। चुपचाप नीचे छूट चुके शहर की ओर देखता रहा।

सीजन की बेशुमार नियान रोशनियो मे जिन्होंने इस शहर को देखा हो, जब कि यह चारो तरफ की अरण्यमयता में समुद्र के बीच किसी आद्यंत आलोक-वृत्त में सजे बजरे-सा हो आता है—सर्दियो में यह शहर धीरे-धीरे धुंधला पडता चला जाता है।

कल से कोहरा काफी कम है।

"कामरेड दद्दा, अगर ओकवुड तक आप चले चलें, तो मै रुपये आपको इसी वक्त—"

"नही, इस वक्त मैं न चलूंगा, शेखर! फिर कभी जरूर आऊँगा। कल किसी वक्त तुम आओगे ही....और जैसा कि मैंने तुम्हे कहा, हर बात पर देर तक सोचने की आदत डाल लो। मुझे रुपये दे डालने के इरादे पर भी।"

"यानी एक हजार की जगह, दो हजार देने पर विचार करूँ?"

वह तेजी से ओकवुड की तरफ बढ गया।

कामरेड उसका जाना ओझल हो चुकने तक देखते रहे। घर पहुँचे, तब वह प्रतीक्षा मे दरवाजे पर खड़ी मिली। कामरेड ने धीमे से उसके सिर पर हाथ फेरा—"बाल तो उगने लगे, सरो!" ● ●

१७

थाने पर शारदा पण्डित खुद नहीं गये थे, मगर अपने दो चरों को भगतनों के साथ भेज दिया था।

शारदा पंडित यह भी नहीं चाहते थे कि भगतनें आश्रम या प्रेस-दफ्तर में आयें। इस बात को वो बचाना चाहते थे कि भगतनें उनके द्वारा उकसायी जा रही है।

जिला परिषद् के दफ्तर के आँगन में कुर्सी डाले शारदा पंडित इंतजार में बैठे थे कि आश्रम का स्टोर-कीपर ख्यालीराम आता दिखाई दिया।

"बाबू जी, एस० ओ० सिद्दीकी ने भगतनों को डपटकर भगा दिया हैं। एफ० आई० आर० दर्ज कर लेने की बात पर कहने लगा कि 'सरकारी कागज इतना फालतू नहीं है। दर्ज कर भी लिया, तो रामगढ़ी से कचहरी की पेशियों में चक्कर काटती-काटती पाद मारोगी तुम लोग!' ये पुलिस वाले बहुत बदजबान होते है। मुसल्टा उलटे भगतनों को नसीहत देने लगा कि—'उसे घर बसाते देख इतनी मिर्ची महसूस करने लगी हो, तो खुद भी कर लो गिरस्थी। काहे चादर बिछाकर बैठ गई थीं वहाँ घर के आगे, सोहर गाने? वो तुम लोगों की टाँगें भी तोड़ देती, तो क्या कर लेतीं तुम लोग? अब अगले साल आना उधर, जब बच्चा हो ले! जोग ले लिया तुम लोगों ने मगर रोग नहीं छूटा। जो बात तुम लोग करने गई थीं, डाइन भी नहीं करती। वो भी सात घर छोड़ती है।'....एक-एक बात कहता जाता था कटुवा और पान की पीक थूकता, हँसता भी जाता था। बीच-

बीच में ऐसे लफ्ज़ भी लगाता जाता था—आप-जैसे बुजुर्गों के सामने कहे नहीं जा सकते। हमें लगता है, गा गया है।"

"तुम लोग क्या खड़े-खड़े तमाशा देख रहे थे? एफ० आई० आर० तो उसका बाप भी दर्ज करता। लगता है, इस नियाकत अली की औलाद को नदक देना ही पड़ेगा। 'स्वदेश' के अगले 'इश्यू' में इसकी हुलिया ठीक करता हूँ। तुम लोगों को देखकर समझ तो गया ही होगा कि पंडित जी 'इंटरस्टेड' हैं—और इसके बाद भी मियाँ की ये हिम्मत! साला घूस तो खाये ही बैठा होगा—बिरादरी भी निभा रहा होगा। जब मैं पटेल चौक की तरफ जा निकला था, वो दोनों हरामजादे थाने की तरफ से ही इधर को आ रहे थे। वो जो साला गुण्डा है, जिसने डॉक्टर दुबे की लड़की को सरे-आम बेइज्जत कर दिया था। उसका कोई भाई-वाई कहीं डी० वाई० एस० पी० है।...खैर, यहाँ साले बड़े-बड़े कलक्टर-कमिश्नरों की खटिया खड़ी कर दी, इस दो फुल्लियों वाले मियाँ की औकात कितनी।...मगर तुम लोग भी चुपचाप खड़े तमाशा ही देखते रहे?"

"सिद्दीकी कहने लगा कि गवाही दोगे आप लोग? पातीराम से कहने लगा, 'पंडत, अभी नाजायज दारू वाले केस से ही बरी नहीं हुए हो, मगर हाथ-पाँव फैलाते जा रहे हो?' पातीराम हो-ही करता खिसक गया। अकेली हमारी गवाही से क्या होता?"

उसके चेहरे पर झूठ पानी पर के तेल की तरह उतर आया था।

शारदा पंडित छड़ी की मूठ पर हथेली घुमाते, अपनी कुढ़न पर काबू पाने की कोशिश कर रहे थे कि वह टोपी हाथ में लेकर सिर खुजलाने लगा—"सरकार, भगतनें बीस रुपये माँग रही है। वो उधर खड़ी है।"

"लो ये छड़ी ले जाओ और दों चोट्टिनों के चूतड़ों पर बीस-बीस। ठीक किया उसने, जो इनको सोंटे जड़ दिये। ये ससुरियाँ नहीं पीट सकती थीं उसे? कह चुका था कि आगे की फिक्र मत करो, देखने वाला मैं हूँ।" शारदा पंडित अब भी ऐसे बोल रहे थे, जैसे शांति-पाठ कर रहे हों।

"सरकार, उनमें से एक बुढ़िया कहने लगी थी—'देखनेवाला ऊपर से

देखता है। ठीक ही सबक मिला हम लोगों को।'....सरकार, तो मैं चलूं? भगतनों को फूट जाने को कह दूं। जब काम ही नहीं हुआ, मेहनताना किस बात का?"

कहना खत्म करने के साथ ही वह कुछ दूरी पर गिद्धों की टोली की तरह इकट्ठा भगतनों की तरफ मुड़ा ही था कि शारदा पंडित ने आवाज दी, 'ख्यालीराम'!

वह अपनी ही जगह थमा रहा।

शारदा पंडित आगे बढ़े। पाँच रुपये का एक नोट आगे बढ़ाते हुए, बोले—"यह भगतनों को चाय-पानी को दे दो। उनसे कहो पहले एस० पी० भटनागर साहब के यहाँ शिकायत दर्ज करायें कि सिद्दीकी एफ० आई० आर० दर्ज करने से इंकार कर रहा है।....और फिर उसके बाद बाकी के पंदरा ले लें। भटनागर साहब के बंगले का रास्ता बता देना उनको। रिपोर्ट करें भगतनें, तो तुम रुपये दे देना। कल दफ्तर में ले लेना। दफ्तर के रख-रखाव खाते में बीस रुपये खर्च दिखा देना।....देखो ख्यालीराम, आज जिस शारदा पंडित को तुम लोग देख रहे हो, हवा में से पैदा नहीं हो गया। सामाजिक कार्यों में उदासीनता ठीक नहीं होती। ऐसे लोग न कोई तरक्की कर पाते है और न समाज मे उन्हे कोई जगह मिल पाती है। मैं तुमसे बहुत उम्मीद करता था।...."

ख्यालीराम बिना पूरी बात सुने ही आगे बढ़ गया, तो शारदा पंडित ने छड़ी से जमीन को ठोंकते हुए शुद्ध गांधीवादी गाली दी, और भगतनें किस दिशा में जाती है—रामगढ़ी को या एस० पी० के बंगले पर—यह टोह लेने के इरादे को स्थगित करते हुए, रायसाहब की कोठी की ओर चल पड़े।

गीता जब कुँवर अहिपाल सिंह की कोठी पर पहुँची, बाहर लॉन में

टहल रहे थे। आत्मीय ढंग से मुस्कराते हुए, नजदीक आते चले गये—"कल के आपके सत्कार के लिए शुक्रिया अदा करना चाहता हूँ।"

"वो तो आप, अहिपाल, उस रात ही अदा कर चुके थे—और जरूरत से कुछ ज्यादा ही।" कहते हुए गीता पाल के होंठों पर मुस्कराहट के साथ ही किंचित सख्ती भी उभर आई।

"मैं उसके लिए शर्मिन्दा हूँ।....मगर यकीन कीजिये, मैं बदनियती में न था। मैं हद दर्जे भावुकता में जरूर आ गया। मुझे जाने एकाएक क्यों यह इलहाम-सा हुआ कि इस वक्त अगर मैं आपको हल्के से 'किस' कर सकूँ तो इससे हमारे बीच की दोस्ती सिर्फ मजबूत ही नहीं—पवित्र भी होगी"।

गीता एक पल रुककर, अपनी ग्रीवा को किंचित् वक्र करके, कुँवर अहिपाल सिंह की ओर आँखें पूरी उघाड़े देखती रही और फिर पलकों के झपकने के साथ ही उसके होंठों पर स्निग्धता आ गई—"आप सचमुच सुन्दर बातें करते हैं। आपको तो किसी कवि-शायर के घर पैदा होना चाहिए था, राजा के घर नहीं।"

"आप गलत कह रही हैं, गीता जी! राजाओं के घरों में कवि भले ही पैदा हो जायँ, कवियों के घर नहीं हो सकते। राजघरों में टैगोर, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-जैसे कवि पैदा हो गये, मगर कालिदास-कबीरदास-तुलसीदास के घर मूस भी पैदा न हुआ—कविताई के नाम पर! आपको शायद पता न हो कि कवियों के बेटे ही सबसे ज्यादा नालायक निकलते हैं।"

"आप तो, अहिपाल, कवि-कलाकारों की ख़ुद बहुत इज्जत करते हैं, आज एकाएक तौहीन पर क्यों उतर आये?"

"मैं तौहीन नहीं कर रहा, इज्जत बख्श रहा हूँ। कलाकार विरासत में अपने बच्चों को अपनी वह जिंदगी नही दे पाते, जिसे उन्होने खुद जिया होता है। दरअसल विरले लोग ही होते हैं, जो विरासत मे जर-जमीन-जायदाद नही, बल्कि पूर्वजों के 'स्ट्रगल' को पाना चाहते हैं। सारी बड़ी हस्तियों

का यही हुआ है। गाँधी जी जैसा महान व्यक्ति तो इस युग में और कोई हुआ नही, मगर उनके विरासतदार शारदा पंडित-जैसे लोग हैं।"

बातें करते हुए अहिपाल सिंह बैठक की तरफ बढ़ते जा रहे थे।

गीतापाल सोफे पर बैठ गई, तो अहिपाल ने नौकर को इशारा करके पास बुलाया और चाय तथा चीज-पकौड़े बना लाने को कहकर, गीता की ओर रुख कर लिया।

"आज आप कुछ थकी-थकी मालूम पड़ती हैं। कल रात 'फटीग' भी बहुत पड़ी आपको....कहने की इजाजत दें तो कहूँ कि कल जिस शानदार ड्रेस में आप थीं, सचमुच राजघराने की महिला मालूम पड़ रही थीं। रायसाहब शारदा पंडित के कान में फुसफुसा रहे थे कि 'राजवधू बनी है!' इन लोगों को शायद, हमारे बीच दोस्ती बहुत खलती है। आप इन लोगों के साथ उठना-बैठना पसंद नहीं करतीं और इस प्रवासी के साथ दोस्ती रखती हैं, यह बात इन लोगों को शायद, और ज्यादा नागवार लगती है।"

"खुशगवार तो इन लोगों को सिर्फ़ हरमजदगी लगती है, कुंवर साहब! ठेके, परमिट, चंदा, कमेटियों वगैरा का पैसा हड़पना और अपने कोढ़ को खद्दर से ढाँपे दूसरों को फजीहतों में घसीटने की कोशिशों में लगे रहना, बस, यही इनका गाँधीवाद रह गया है।"

"यही बात मै आपसे कहने जा रहा था। मैं तो इन कई गाँधी-पुत्रों की हरकतें देख सन्न रह जाता हूं। कल आप उस वक्त मौजूद नहीं थीं, जब ये लोग मेरी तारीफ के बहाने अपनी बलिदान-गाथायें सुना रहे थे। ये नेतानुमा लोग इस लोग इतमीनान से झूठ बोलते चले जाते हैं—जिस बेबाकी से कोई सच न बोल सके। बेहयाई तो इन लोगों के चेहरों पर चिकनाई बनकर बैठ गई। मेरे सामने झूठ बके जा रहे है और हामी के लिये मेरे ही तरफ देख भी रहे है। हद है। मेरा ख्याल है, ये लोग आपस में भी इसी बेहयाई से बातें करते होंगे। हर शख्स जानता होगा कि सामने वाला झूठ बोल रहा है, मगर उसे सच को सुनने की सी शालीनता में सुन लेना अपना फर्ज समझता होगा, क्योंकि सामने वाले के चुप होते ही खुद

इन्हें झूठ बोलना है। हमारे बाबू जी बताते थे कि शारदा पण्डित उन्हें ये समझाया करते थे कि 'राजा साहब, भावुकता से आदमी को बचना चाहिये। हमारा तो कुछ नहीं, हम सड़क पर के लोग हैं, मगर आपकी 'स्टेट' —हुकूमत ने छीन ली, तो बुरा होगा। रहा ऐसा रहिये, ब्रिटिश हुकूमत भी खुश रहे—संयोग से कांग्रेस 'पावर' में आ जाय, अंग्रेज लोग हिन्दुस्तान छोड़कर चले ही जायें, तो ये कहने को भी रहे कि हमारा भी इसमें हाथ था!' ....यानी इन लोगों को लम्बी रकमें चन्दे में देते रहिये। ....मुझे इन लोगों के झूठ से भी ज्यादा तकलीफ इनकी 'इनह्यूमेनिटी' देखकर होती है। भगवत बाबू को शारदा पण्डित ने जाने क्या और किन लफ्जों में बता कि श्यामू कामरेड ने किसी भगतन को घर में बिठा लिया है—बाद में पता चला मुझे कि बेचारों को माइल्ड किस्म का हार्ट-अटैक हो गया रात। ....सारी सरकारी मशीनरी में इसी तरह के काँइया लोगों का दखल हो गया है। रसूख हर काम-धंधे वाले को अपनी-अपनी गरज में बनाये रहना पड़ता है, नहीं तो ये सचमुच इतने भद्दे लोग हैं कि इनके साये से जितनी दूर रह सके आदमी, उतना भला।"

गीता चुपचाप चाय पीती रही। उसके चेहरे पर की तनावहीनता से साफ था कि कुंवर साहब की बातों से उसकी सहमति है।

"वो राय साहब भी एक ही चीज है। बीड़ी ठूंगने वाला आदमी चुरुट पा गया है, तो ऐसे 'बिहैव' करने की कोशिश करता है, जैसे पुश्तैनी रईस हो। मुझे सुनकर तकलीफ हुई कि राय ने पचास रुपल्ली के म्यूनिसपैल्टी के 'एडवरटिजमेन्ट' के लिये श्यामू कामरेड को दुत्कार दिया। खुद हजारों-लाखों के घपले करेंगे, मगर ईमानदार लोगों की मदद में इन्हें तकलीफ होती है। सेंसीटिव और सिंसियर लोग बदहाली में पड़े हैं। काँइयाँ लोग मौज मार रहे हैं। ब्रिटिश हुकूमत में इतनी हरमजदगी हर्गिज न थी। ....याद आ गया है, फिर भूल न जाऊँ। ....अरे, भाई, प्रेमकिशन, जरा इधर आना तो। सामने रैक में से एक सादा लिफाफा और लेटर-पैड देना मेरा। ...."

जितनी देर अहिपाल सिंह पत्र लिखते रहे, गीता मेज के निचले खाने में पड़ी पत्रिकायें उलटती-पुलटती रही।

अहिपाल सिंह ने लिफाफा बन्द करके, प्रेमकिशन को पकड़ा दिया—"क्यों, भाई, 'उत्तरांचल' अखबार का दफ्तर देखा है तुमने ?....जरा चले जाओ और ये लिफाफा वो अपने मैनेजर वर्मा साहब है ना, उनके बेटे श्यामलाल जी को दे आना। ....और सुनो, मिश्रा की दुकान पर से गीता जी के लिये मीठा और मेरे लिये सादा पान...."

गीता पाल ने एक पत्रिका को मुँह के सामने खोले हुए, धीमी आवाज मे पूछा—"सुना है, शारदा पण्डित और राय साहब डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की चेयरमैनशिप के लिये इस बार आपको...."

"हाँ, इस बार कई 'ऑफर' है। उधर कासगंज से सीताचरन पाण्डे वाली जो सीट वैकेन्ट हुई है, असेम्बली के लिये—उसके लिये भी कई लोग कह रहे है। ....मगर मेरा ख्याल है, मेरे 'टेम्परामेंन्ट' को यह सब 'सूट' न करेगा। पॉलिटिक्स आज दिन-दिन जिस तरह गंदी होती जाती है, बहुत मोटी चमड़ी चाहिये।" —कहते हुए कुँवर साहब ने अपनी कलाई पर की त्वचा को धीमे से चुटकी में भरकर, ऊपर उठा लिया और हँस पड़े—"और जहाँ तक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की चेयरमैनशिप का सवाल है, ये लोग, शायद, दूसरों को बेवकूफ समझते है। शारदा पण्डित और राय एक तरफ मुझे उकसा रहे है, दूसरी तरफ पार्वती बहन खादी के धोती-पेटीकोट तहा रही होंगी, पब्लिक-रिलेशन के लिये।"

"मैं कल राजशेखर से मिली थी।" —गीता ने इतने आकस्मिक ढंग से यह बात कही कि सहसा अहिपाल सिंह उसकी ओर देखते ही रह गये।

गीता की ओर देखते उन्हे साफ महसूस हुआ कि उनका चौंक उठना उसकी शरारत में किंचित् तीखी-सी हो आई आँखों में पूरी तरह प्रतिबिम्बत हो गया है।

"हालांकि बरसों पहले भी जानती रही हूँ, मगर अपने सारे वक्तों में आदमी जानने-योग्य हो, यह जरूरी नहीं।" —उसने अपनी लम्बी, खूबसूरत, बढ़िया सेंदूरी नेल-पॉलिश में दमकते नाखूनों से नृत्य-मुद्रा में लगती हुई-सी अँगुलियों को आपस में फंसा लिया।

"हाँ पिछले रविवार भी आप लोग, शायद, ओकवुड की तरफ निकली थीं? प्रभा ने बताया था। शायद, आपने भी जिक्र किया हो। कालेज में पढ़ने के दिनों कॉलेज-मैगजीन के लिये शुगर मिल का 'एडवरटिजमेन्ट' और चंदा मांगने एक बार आया होगा वह—हमारे पास भी। बहुत तेज-तर्रार, बहसी और जज्बाती किस्म का लड़का यह तब भी हुआ करता था—धुंधली-सी याद हमें अभी है।....एकाध बार, शायद, कहीं किसी कल्चरल-प्रोग्राम में भी देखा होगा। कालेज लाइफ एक ऐसी चीज है, जहाँ लगभग हर-एक के पास भावुकताओं से भरी दुनिया होती है। उन दिनों हम भी तुकें जोड़ा करते थे। यह भी तो कुछ लिखता-पढ़ता भी था, शायद! 'धर्मयुग' मैगजीन के किसी इश्यू में एकाध साल पहले लद्दाख पर इसका कोई 'ट्रैवेलाग' भी छपा था।....मगर, मैं शायद फिर भूल जाऊँ, आदमी अपने सभी वक्तों में जानने के योग्य नहीं होता, यह लगभग फलसफे के दर्जे की बात है।....लगता है, आपने कल काफी जाना है।"

"जी हाँ, कह सकती हूँ कि काफी जाना है।........मगर उसे तो, शायद, कम—खुद को ज्यादा।........कल पहली बार—और वह भी उसके पास से वापसी के बाद—मैंने यह महसूस किया कि अगर दूसरों से साबका पड़ने पर हम खुद को जानने और समझने की 'प्रोसेस' में से नहीं गुजरते, तो फिर दूसरों को जानने का हमारा दावा बेमानी है। मेरा ख्याल है, दूसरों को भी सिर्फ वही आदमी बेहतर समझ सकता है, जो अपने को जानता हो और दूसरों से भी पहले खुद से सचाइयों की उम्मीद करता हो।"

"हालांकि ऐसा नहीं कि आपका पहले का बोलना महज बोलना होता था। आपका बोलने का अंदाज हमेशा अनुभवी औरतों का सा रहा है।

इस तरह की 'एरोस्ट्रोक्रेटिक एप्रोच' बहुत कम औरतों में होती है। आपकी वो दोनों एजेड साथिनें—मिसेज शर्मा और मिसेज सक्सेना—'टॉकेटिव' तो दोनों बहुत हैं, मगर आभिजात्य उनमें नहीं।....देखिये, मुझे भी वाहियात होते जाने की लत है। बात को 'कंसन्ट्रेट' नहीं कर पाता। आप उससे अपनी मुलाकात के बारे में कुछ बताने जा रही थी?"

"बीते रविवार तो हम सब लोग साथ गई थी और पहुँची ही थीं श्रीमती मैठाणी के यहाँ कि हम लोगों पर नजर पड़ते ही वह मफलर लपेटता उठ खड़ा हुआ—और यह बात मैं कल जान पाई कि उस दिन वह काफी रात गये वापस लौटा। उसको राह से गुजरते देख हम लोग जिस तरह तमाशबीन हो जाती थीं—कल मुझे इस बात का सख्त अफसोस हुआ। दूसरे की 'ट्रेजेडी' के प्रति मजाकिया अथवा पंडिताऊ किस्म का रवैया बरतना, सरासर 'इन्ह्यूमन' होना है।........खैर, कल मैं पहुँची, तब वह अकेला था। सुन-सुनकर जो रोमांचक मूर्ति दिमाग में बन गई थी, इसका भी 'प्रेसर' जरूर रहा होगा कि—देखें, अकेली औरत को देखकर, कैसे 'विहेव' करता है।........मगर अब मैं कह सकती हूँ कि मैं अपनी ही वजहों से वहाँ तक पहुँच गई हूँगी!........कई बार हम जान ही नहीं पाते कि हमारे भीतर कौन-सी प्यास, कैसे और कितना इकट्ठा होती जाती है। मैंने कहा कि खुद को जानने का मौका मिला, सो झूठ नहीं कहा। उसके बारे में तो मैं सिर्फ इतना जान पाई की मीना की बेरुखी ने उसे गहरा मेन्टल 'शॉक' दिया है और वह बर्दाश्त नहीं कर पा रहा है। मीना ने किया भी कमाल। प्रोफेसर तिवारी से ही शादी करनी थी, तो उसे लद्दाख चिट्ठी लिख भेजने की जरूरत क्या थी कि वह नहीं चाहती कि वह यहाँ कालेज में झख मारे और पति दूर फौज में पड़ा रहे!........जहाँ तक मैं समझती हूँ, उसने यह चालाकी बरती होगी कि फौज की नौकरी छोड़कर वो आने से रहा। छोड़ना भी चाहे, 'रिलीज' ही न हो पायेगा। भविष्य में कभी इस ओर आया और भेंट हुई—या अपनी ही तसल्ली के लिये सही—यह कहने को हो जायेगा कि तुम हमारी बात नहीं रख पाए, हम क्या करते!........

बहरहाल वह तो अब एक किनारे हट गई और इस तरह की चालाक, दुनियावी किस्म की औरतों को 'एडजस्ट' करते वक्त ही कितना लगता है—मगर वह खुद बीच भौंर में उलटी नाव हो गया है।"

"आपको यह आदमी कैसा लगा ?"

"इतनी जल्दी किसी के बारे में दो-टूक फैसले देना ठीक नहीं, मगर मेरी राय में वह 'सिन्सियर' जरूर है—और मैं सच्चाई को आदमी की सबसे क्वालिटी समझती हूँ। और मैं समझती हूँ कि झूठ बोलने-बरतने में तकलीफ महसूस करना भी सच्चाई पर होना है। आपने कुछ देर पहले—बल्कि जब मैं पहुँची ही थी यहाँ—एक बात कही थी। आपके-मेरे बीच उस तरह के ताल्लुकात बन नहीं पाये और ये इकतरफा तौर पर कहने का शायद मुझे हक नहीं कि ऐसा मेरी तरफ से पहल न होने से हुआ, या आपके 'एग्रेसिव' न होने से—मगर इतना मैं कह सकती हूँ कि आपको लेकर उन 'टर्म्स' में मैंने कभी सोचा ही नहीं और वक्त ने इतना तो सिखला ही दिया कि 'इक्साइटेड' या बदमिजाज होने से बचा जाए।....मगर जब आप कह रहे थे कि दोस्ती के मजबूत होने के नहीं, पवित्र होने की अनुभूति भी हुई, तो सुनने में मुझे अच्छा लगा—लेकिन मैंने बाद में महसूस किया कि आपके कहने में सचाई नहीं थी।....और यह बात इसलिये कह पा रही हूँ कि कल राजशेखर से बातें करते वक्त दो बार मैंने एकाएक और मासूमियत के साथ अपना हाथ उसके हाथों पर रख दिया।....और कहने, जस्टीफाई करने की गुंजाइश बहुत है कि मैं अचानक बहुत जज्बाती हो गई थी !....मगर लौट आने और रात बड़ी देर तक सोचते रहने के बाद, मुझे लगा कि मैं खुद ही इस बात से कतराना चाहती हूँ कि वैसा इरादतन किया था मैंने और 'प्लेजर' महसूस कर पाने की सावधानी में किया था। हम हर चीज को स्पर्श नहीं करते, न रोमांचित होते है।....मगर जब छूते हैं, 'फीलिंग्स' के दबाव में ही सही, वजह जरूर होती है।"

कुँवर साहब का चेहरा हलके परिवर्तित हुआ और मुस्करा-भर दिये।

सोचते-सोचते एकाएक प्रेमकिशन को पुकारने को हुए कि चाय और बनाये, मगर तभी याद आया कि कामरेड के यहाँ भेजा है।

"आप, शायद, चाय और...."

"हाँ, मैं सोच रहा था—अभी पान आने में बहुत देर होगी।"

वह उठी और गृहिणी के से अभ्यास में किचन की तरफ निकल गई।

कुँवर उठने को हुए तो, मगर फिर चुपचाप एक अखबार उठा लिया।

वह वापस आ गई, तब आँखें उठाकर, धीमे से कहा—"अच्छा, गीता, आपको कभी ये नहीं लगा कि मैं बदसलूकी भी कर सकता हूँ? सामंतों को तो वैसे ही चरित्र-भ्रष्ट समझा जाता है।"

"कुँवर, मेरी उसमें दिलचस्पी इस सवाल में शामिल है ना?.... खैर, मेरा जवाब ये है कि कुछ पुरुष ऐसे होते हैं, जो 'इनीशियेटिव' लेने में संकोच करते हैं। उन्हें औरत की नजर में गिरना गवारा नहीं होता। वो ये मान के चलते हैं कि अगर ऐसी कोई बात होती, तो दूसरी ओर से भी कुछ पहल होती। 'मैं आपको इतना गिरा आदमी नहीं समझती थी!'—औरत के मुँह से ये सुनने की ताब उनमें नहीं होती।....आप भी अपनी शाइस्तगी के हाथों बँधे आदमी हैं। जोशी ऐसा नहीं था। बहुत शाई नेचर का, मगर 'एग्रेसिव' किस्म का आचरण था उसका।....और हालाँकि मुझे कहना नहीं चाहिये, मगर सोचने पर मैंने महसूस किया कि उसमें 'स्ट्रगल' करने का माद्दा नहीं था।....नहीं तो, जब मैं राजी थी, तब उसे माँ-बाप के राजी न होने के जोखिम से जूझना चाहिये था और साथ-साथ शहीद हो जाने के जुनून से बचना चाहिये था। हालाँकि यह तय है कि वह मुझसे प्रेम बहुत करता था, लेकिन आदमी में—और खास तौर से मर्दों में—'प्राब्लेम्स' को फेस करने की जो हिम्मत होनी चाहिये, उसमें थी नहीं। आई० ए० एस० का सपना देखने के बावजूद पी० सी० एस० तक में न आ पाने से भी वह बहुत नाउम्मीद था।....मैं नहीं कह सकती कि उसे

शेर बन जाने का अंदेशा था या नहीं ।....लेकिन मैं आज भी अपने-आपको मिट्टी महसूस करती हूँ कि मुझसे हो नहीं सका । एक बार मौत के मुँह से बच जाने के बाद, उसके नजदीक जाने की कल्पना करते भी बदहवासी महसूस होने लगती है ।"

"आप ठीक कह रही है । हमारे एक परिचित बुजुर्ग है, जो काकोरी केस मे फांसी पर लटकाये जाने से सिर्फ इसलिए बच गये थे कि नाबालिग थे । उम्र-कैद हुई, फिर पाँच-छै साल बाद रिहा भी हो गये । आज जाने-माने लेखकों में उनका नाम है । एक बार कालागढ़ आये हुए थे । शिकार पर मेरे साथ चले आये कि 'चलिये कुँवर साहब, हमें भी 'हंटिंग' का कुछ 'इक्सपीरिएंस' हो जायेगा—किसी नावेल, शार्टस्टोरी में काम आयेगा ।' रात हम लोग एक ऐसे डाक बंगले में सोये, जिसके चारों ओर तराई के बीहड़ जंगल । कालागढ़ स्टेट तो आपकी भी देखी हुई है । मगर तब तराई लोगों से इस कदर आबाद कहाँ हुई थी ।....रात को शेर के दहाडने के आवाज जो आई, तो उठ बैठे और बकायदा कांपने लगे । मैंने दिलासा दिया कि साहब, यहाँ खिड़कियों में भी बहुत मजबूत लोहे की छड़ें लगी है, मगर वो फिर भी रात-भर ठीक से सोये नही । सुबह तेज धूप निकल आने तक सोये रहे और फिर चाय-नाश्ता करते में फिलासफरों की सी सादगी और सचाई के साथ बोले—'कुंवर साहब, एक वक्त मैं अगर क्रान्तिकारी न रह चुका होता, और मैंने अपने दोस्तों को फाँसी लगने के बाद के अपने जिंदा रह जाने को देखा न होता, तो कल रात इस कदर मैं हर्गिज न डरता । यकीन कीजिये, उन लोगों के साथ मुझे भी फाँसी की सजा सुना दी गई होती, तो मैं भी उसे शहीदाना अंदाज में भूल गया होता । फाँसी के फंदे को वरमाला की तरह पहनता और 'भारतमाता की जै' चिल्लाता हुआ ।....मगर एक बार मौत के मुँह से बचा आदमी सचमुच डरपोक हो जाता है ।'....नहीं, नहीं, मेरा मतलब ये नहीं कि आप डरपोक औरत है । मैं दूसरी चीज कहना चाहता था और ये मेरी 'ओरिजिनल' बात नहीं, उन्हीं बुजुर्ग लेखक महोदय की कही बात है । मेरे ऊपर बहुत

अहसान हैं उनके। उनके साथ जिये वक्त में मैंने बहुत-कुछ सीखा और वह काम आया। उन्होंने बहुत खूबसूरत बात कही थी। उनका कहना था कि एक तो मौत के करीब पहुँचकर ही इस बात का सही-सही अहसास होता है कि जिंदगी चीज क्या है और क्यों एक कोढ़ी भी अपने आखिरी लमहे तक जिंदा रहना चाहता है।....दूसरे, जब तक जितनी कीमत या अहमियत हम खुद अपनी जिन्दगी की कूतते हैं—उससे बड़ी वजह सामने खड़ी न हो, जिंदगी कोयले की तरह मौत के मुँह में झोंक देने की चीज हरगिज नहीं। आप एक बार संजोग से बच गईं, तब दुबारा सिर्फ इस 'गिल्टी कांशस' में सुसाइट कमिट कर लेना कि लोग क्या कहेंगे, या उसकी आत्मा क्या कहेगी, ये सब बेमानी हैं। 'प्वाइजन' उसके साथ-साथ आपने लिया, आपका 'कमिटमेन्ट' पूरा हो गया।"

वह कुछ नहीं बोली, चुपचाप चाय पीती रही। कुछ देर चुप लगाये रहने के बाद, आत्मलाप के स्वर मे बोली—"कोशिश मैंने की, मगर पूरी तरह नार्मल हो पाई, कहना मुश्किल है। मैंने कहीं सुना या पढ़ा था कि कुछ लोग सामान्यतया बिलकुल 'नार्मल' होते हैं, मगर झील, नदी या समुद्र के किनारे खड़े हों, तो उनमें लहरें उठते देखते-देखते कूद पड़ने को मन करता है उनका। ऐसा मेरे साथ है तो नहीं, मगर एक अबूझ-सी बेचैनी मुझे हमेशा घेरे रहती है। मैं एक तरह की 'एब्सट्रैक्ट' मानसिक उत्तेजना में हमेशा रहती आयी हूँ और मुझे लगता है कि अगर मैं कहीं ऊँची पहाड़ी चोटियों पर से नीचे झाँकूँ, तो शायद, कूद पड़ने की इच्छा हो आये! रात का अकेलापन मुझे शांति देता है। चुपचाप बिस्तर पर पड़े रहना। सोचना और सोचते-सोचते, पढ़ते-पढ़ते गहरी नींद में सो जाना—मैं सकून महसूस करती हूँ।....मगर दिन का फालतू वक्त काटता है। नींद दिन में बिलकुल नहीं आती।....और ऐसे में चाहिए मुझे साथ। जिन दिनों आप इस शहर में होते हैं, मैं नींद में चलने की आदी औरत की तरह आपकी ओर चली आती हूँ। वक्त ने धीरे-धीरे इसके प्रति उदासीन कर दिया कि लोग क्या कहते हैं। मन बनता गया कि सिर्फ़ अपने कहे को

सुना जाय। या वह, जिसे सुनने से आदमी के बोलने का अहसास होता हो। आपने हमेशा मुझे इज्जत दी है, स्नेह भी। मैं बहुत कर्जदार हूँ आपकी। मेरे लिये आप एक दोस्त, एक भाई की तरह सहारा बनते गये है।"

अंतिम वाक्य कह चुकने पर उसने एकाएक कुंवर साहब के चेहरे की ओर देखा और इस तरह देखा, जैसे अपने देखने से उनके चेहरे पर की त्वचा को स्पर्श कर रही हो।

कुंवर अहिपाल सिंह का चेहरा थोड़ा चकित, बल्कि किंचित खिन्नता और अवसाद से भरा हो आया था। वो बहुत सावधानी, संतुलन और शालीनता के साथ कोई वेधक किस्म की बात कहना ही चाहते है, यह उनकी अपने-आपमें एकाग्र होती चली गई आंखों से साफ-साफ झलक रहा था। गीता पाल ने एक क्षण मे इसे लक्ष कर लिया और इरादा कर लिया, अवसर नही देना है।

वह तीव्रता से, लेकिन पूरे अभिजात तरीके से सोफे पर से उठी और 'अच्छा, अहिपाल, आप अब आराम करें। मैं चलूंगी।' कहती काफी शास्त्रीय किस्म की लय में बंधी हुई-सी, बैठक से बाहर निकल आई। उसने जिस सन्नद्ध किस्म के मनोभाव में हाथों को नमस्कार की मुद्रा मे किया, वह जमीन की जगह हवा की सतहों पर पांव रखते जाने की-सी विलक्षणता मे दिख रही थी।

कुंवर साहब गेट तक उसके साथ-साथ आये। उसने अत्यन्त शालीनता के साथ हाथों को दुबारा नमस्कार की मुद्रा में किया और निहायत आत्मीय ढंग की मुस्कुराहट उसके होंठों पर छा गई—"अच्छा, मैं चलूं।"

नीचे ढलान की तरफ उतरती, अगले कुछ ही क्षणों मे वह आँखों से ओझल हो गई, तो उन्हे महसूस हुआ, जैसे किसी अदृश्य शक्ति ने अपनी गिरफ्त से मुक्त किया है। उसके अत्यन्त आवेगमय, किन्तु उतने ही संयत और सावधान किस्म के स्त्रीत्व में आबद्ध हुए रह जाने की अब कहीं उनको स्पष्ट प्रतीति हुई।

वो काफी देर तक वही पर खड़े नीचे के ढलानों की ओर से झील

की परिक्रमा कर ऊँचाइयों की ओर आते पक्षी-दलों और संध्यापूर्व की धीरे-धीरे तेज होती जाती हवा में भापामय होते वृक्षों को देखते रहे।

नीचे की ओर से आता प्रेमकिशन मोड़पर एकाएक प्रकट होता दिखाई दिया, तो उन्होंने एक पल में यह अनुभव कर लिया कि गीता पाल को यह रास्ते में मिला होगा और वह अपना मीठा पान 'बड़ी देर लगा दी प्रेम किशन !' कहती, लेती गई होगी।

गीता जब बिल्कुल सड़क पर पहुँचने को थी, ऊपर संत पाल कान्वेन्ट की ओर जाते बच्चों का झुण्ड पगडण्डी को सफेद मेमनों की तरह भरे हुए था। वह एक किनारे खड़ी हो गई।

अपने सफेद यूनीफार्म में बच्चे, पगडण्डी पर ऊपर चढ़ते वक्त, झील में लीक बनाकर चलते सफेद बगुलों की कतार लग रहे थे। प्रभू ईसा की आराधना का गीत उनके होठों पर संतपाल गिरजाघर की दिशा में उड़ते पक्षियों के चहचहाने जैसा लग रहा था। अचानक ही वह एक अपूर्व-सी कल्पना में होती गई। अपने सामने से गुजरने से बाकी रह गये एक-एक बच्चे के चेहरे को वह टकटकी बाँधे देखती रही।

'गुड ईवनिंग, गीता बहन !' दो अन्य जनों के साथ जाते, फादर मैथ्यूज ने अभिवादन किया, तो वह जैसे स्वप्न में से जागी हो। 'गुड ईवनिंग, फादर !' कहकर, आदर के साथ नमस्कार करने में उसे कुछ वक्त लग गया।

● ●

१८

वो कालेज जाने को बाहर आ चुकी थी।

वह फाटक तक साथ-साथ चला आया, तो फाटक के इस पार आकर श्रीमती मैठाणी ने फिर से याद दिलाया कि मकान-मालिक के यहाँ होता आये।

"उनसे कहना कि पंद्रह-सोलह हजार रुपये तक मम्मी देने को तैयार है, लेकिन जैसी कि बात की है मैंने, आधा पैसा एकमुश्त और बाकी की आधी रकम दो किस्तों में देंगे। अस्सी-नब्बे साल से कम पुराना मकान न होगा। ये भी गोरा साहब से बख्शीश में पाया हुआ।....बावजूद इसके इस टीन-टप्पर का उन्हे किराया भी कम लग रहा है और कीमत भी।" —श्रीमती मैठाणी के स्वर में, उनके स्वभाव के विपरीत, बहुत ही हिसाबी-किताबी किस्म की औरत की सी खीझ थी—"कल तुम नही थे, तब आया हुआ था साहू! कहता था, 'बहन जी, आपने तो दो महीना पहले खुद ही कहा था कि बस, कॉलेज से रिटायर होते ही आप कही गढ़वाल की तरफ वापस चली जायेंगी और अब कहती है कि यही रहने का इरादा कर लिया है।'....अरे, तुम कौन होते हो मेरे सगे कि याद दिलाओगे कि बहन जी, आप तो आने वाली थी, जाने वाली थीं।....और अभी तो रिटायर होने में भी पूरे दो साल बाकी है। न रहना होगा यहाँ, तो इसे धर्मशाला बनवा जाऊँगी। दस-पांच हजार रुपया ले के बेच जाऊँगी। जैसा जी बनेगा मेरा तब। काहे घूर रहा है तू?"

"ममी, मोहल्ले में झगड़ती औरतों के से रूप मे बहुत 'इक्साइटिंग'

लग रही हो तुम—वेरी ड्रैमेटिक !"—उसके चेहरे पर शरारत देखते ही, श्रीमती मैठाणी ने हाथ को थप्पड़ मारने की मुद्रा में कर लिया—"जा भाग। लौटते मे पुर्जे में लिखा सामान भी लेते आना। मैं चलती हूँ।"

श्रीमती मैठाणी के जाने के थोड़ी ही देर-बाद, कमरों और फाटक में ताले लगाकर, वह डोलची हाथ मे लिये शहर की ओर निकल पड़ा। अपनी ही रौ मे डूबा वह अभी मुश्किल से एक फर्लांग चला होगा कि नीचे से दाँतों मे जीभ दबाकर निकाली गई सीटी की तेज आवाजों से, चौंककर, खड़ा हो गया।

देखा—नीचे राधारमण होस्टल से थोड़े फासले पर छै-सात लड़के खड़े थे और उनका रुख उसकी तरफ ही था, जैसे बड़ी देर से सिर्फ उसके आने के इंतजार में हों।

लाल मिट्टी से लिपी और चावल के घोल से अल्पना की हुई सीढ़ियाँ उसे दूर से ही दिख गई थीं। नजदीक पहुँच जाने पर, वह नीचे ही खड़ा हो गया। जूते उतारने ही जा रहा था वह कि दरवाजे तक आ गये कामरेड ने मुस्कुराते हुए कहा—"अब चले भी आओ, यार !"

उसके चेहरे पर चकित भाव देखकर, कामरेड मुस्कुराये। आवाज दी—"सरो, शेखर आये हैं। चाय-पकौड़ियों का इंतजाम करो।"

वह कुछ कहता कि इससे पहले ही कामरेड ने उसका हाथ पकड़ लिया—'चलो, नीचे तक चलें।' वह अब जूते खोलकर, एक ओर रख चुका था। बाहर वाला कमरा भी जिस स्वच्छता और सुरुचि में था—चारों ओर 'बॉर्डर' डालने की तरह गेरुवे रंग मे सँवरा हुआ—जूता पहने बैठने मे संकोच महसूस हुआ था। अब जूतों की ओर बढ़ा, तो कामरेड बोले कि 'यार, कहाँ दूर जाना है, चले चलो यों ही।'

प्रेस वाले कमरे में पहुँचते ही वह भौंचक रह गया। झाड़ू कल भी लगी थी। सामान काफी करीने से रख दिया गया था, मगर आज वह

कमरा अब कहाँ था, जो दो-तीन पहले कबाड़ियों की रिहाइश महसूस कराता था।

वह चारों ओर देखता रहा। फिर किसी पेशेवर चित्रकार की पेंटिंग्स की तरह संवार कर लगाये गये 'टाइप-केसेज' को स्पर्श करते हुए बोला—"यह सब सिर्फ़ हैरतअंगेज है!"

उसके कहने में भरी प्रफुल्लता कमरे में गौरैया की तरह दौड़ गई।

कानरेड ने कम्पोजीटरों के बैठने के अपेक्षाकृत ऊँचे दो स्टूल एक ओर खींच लिए—"बैठो। मुद्दतों के बाद इस कमरे में बैठे रहने का जी हो रहा है। शुरू-शुरू में मैंने खुद भी कम्पोजिंग सीखने की कोशिश की थी, मगर हम लोगों का मध्यवर्गीय चरित्र बहुत ही भयानक किस्म की चीज है। हम लोगों की दुर्गतियों की एक वजह यह भी है कि अगर हम पढ़े-लिखे हैं तो मजदूरी करते शर्म महसूस होगी। लगेगा, 'बिलो स्टेटस' कुछ होने लगा। कुछ कहो भाई! मार्क्सवाद आदमी के इस आत्मघाती चरित्र की पकड़ की वैज्ञानिक दृष्टि तो देता ही है। यह आत्मघाती वृत्ति ही हमे सामाजिक पहल से भी रोकती है, क्योंकि हमें यह तमीज ही नहीं हो पाती कि इस तरह का श्रमविरोधी चरित्र निश्चित रूप से एक सामाजिक अपराध है। मुझे अब बहुत गहराई से इस बात का अहसास हो रहा है कि मैं छड़ा आदमी था। शुरू-शुरू मे इतनी तंगदस्ती भी न थो। शुरू किया था सीखना, छोड़ न देता तो बीस-पच्चीस दिनों मे ही सही, मगर 'उत्तरांचल' के आठ पेज तो मैं कम्पोज कर ही सकता था।....अब हमने तय किया है कि तुम्हारी भाभी और मैं, दोनों ही कम्पोजिंग सीखेंगे। बहुत गहराई से मैं महसूस कर रहा हूँ कि अपने आपको सिर्फ दिमागी कीड़ा बनाये रहने से मुझे बचना है, क्योंकि जिस तरह की समाज व्यवस्था मे हम रह रहे है, उसमें सामाजिक-नैतिक किस्म के विचारों को गधे की तरह पीठ पर लादे रहने से रोटी मिलने की गुंजाइश नही। इस व्यवस्था में समाज के लिए जिम्मेदारी महसूस करने, उसे अमल में लाने के इरादे के साथ-साथ, अगर हमें अपने स्वभाव, अपनी वृत्ति के अनुसार रोटी निकाल लेने की भी तमीज नहीं, तो न हम अपने को बरबाद

हो जाने से बचा सकते हैं और न समाजी जिन्दगी मे ही कोई कारगर पहल हमसे हो सकती है।"

"आप तो, कामरेड दद्दा, इस कमरे मे आते ही इक्सक्यूटिव इंजीनियर हो गये है और अपने 'प्रोजेक्ट' के बारे में बताते-बताते आप बच्चों की तरह खुश होने लगे हैं। शुरू-शुरू की मुलाकात में आपमें दिमागी तेजी और उत्तेजना चाहे जितनी हो, मगर यह जीवंतता नही थी। रस नहीं था। आप बोलते जा रहे थे और मैं महसूस कर रहा था कि इस सारे बदलाव को देखते हुए मैं सचमुच राहत महसूस कर रहा हूँ।"

"सुबह तुम्हारा इंतजार होता रहा।"

"निकला तो मैं सुबह मम्मी के कॉलेज जाते ही, मगर...."

शेखर का चेहरा एकाएक कुछ बुझ-सा गया।

"क्यों, क्या कोई परेशानी की बात हो गई हैं ?"

मैं सुबह आपके पास के लिये चला था, और घर से लगभग फलाँग-भर नीचे रमण होस्टल तक आया ही था कि मीचे खड़े कुछ लड़कों ने सीटियाँ बजाना शुरू कर दिया। मुझे महसूस हुआ कि ये हरकत मुझको देखते ही की गई है। पहले मैं कुछ पल रुका रहा, मगर फिर आगे बढ़ चला। मैंने बहुत गौर से नहीं देखा, मगर वो होस्टल के स्टूडेण्ट नहीं थे, यह तय है। मैं अक्सर उधर वाली पगडन्डी से चला आता हूँ। कुछ लड़के कभी घूरकर देखते जरूर थे। मजाकिया लहजे में नमस्कार भी करते थे। पीठ-पीछे उनके हँसने की आवाजें भी मैं सुना करता था, मगर मैं बर्दाश्त न कर सकूँ इस हद तक 'एग्रेसिव' वो लोग कभी नहीं हुए। मगर आज स्थिति बदली हुई थी। वो लोग तो जैसे लड़ाई-झगड़े पर आमादा होकर आये हों। मैं अजीब असमंजस में पड़ गया। आगे बढ़ते रहने की जगह रुक जाना तो मैंने कर लिया, मगर पीछे वापस लौटना सरासर डरपोकपन लगा। मैं कुछ देर रुककर, इस उम्मीद में कि यों ही मजा लेने के मूड में सीटी बजा रहे होंगे, चंद कदम आगे बढ़ा ही था कि उन्होंने फब्तियाँ कसना और हवा में स्टिकें भाँजना शुरू कर दिया। मैं फँस गया और मुझसे कदम पीछे खींचते न

बने। मुझे अपनी जगह रुक गया देखते ही वो लोग माँ-बहन की गदी गालियों पर उतर आये और खुद मेरी तरफ बढ़ने लगे। जाने कैसे अचानक मुझे आपका कल का कहा याद आ गया कि खुद को 'एडजस्टमेन्ट' से बचाना। हालांकि इस बीच मैं इरादा कर चुका था कि ये लोग नीचे हैं और मैं ऊपर। पत्थरों की यहां कमी नहीं। ये मुझ पर हमला करने के इरादे से बढ़ते ही आये, तो दो-चार को तो जमीन पर बिछा ही दूँगा, फ़िर मेरा चाहे जो हो....लेकिन एकाएक दिमाग में आया कि यह बहुत नाजुक मौका है और हर हाल में फंस जाना है। कोई तुम्हारे हाथों मर गया तो भी और इनके हाथों में मारा-पीटा गया तो भी। आपने सोचने को कहा था, मगर ठंडे दिमाग से सोचने-भर का वक्त मिला नहीं, एक लमहे में न-जाने कितनी बातें दिमाग में आ गई। मैंने महसूस किया कि एक बार जहाँ हाथ उठा, फिर अपने को संयम में रखना मेरे बूते का नहीं। ....हालांकि गुस्से के मारे मेरा पूरा जिस्म दहकने लगा था, मगर जाने कैसे एकाएक मैं पीछे मुड़ा। तेज़ कदमों से चलता अच्छी-खासी ऊँचाई और फासले पर आ गया। वहाँ से मैंने सिर्फ उन लोगों को डराने-भर को, पूरा एहतियात बरतते हुए, पत्थर फेंकना शुरू किया।....और जैसे ही वो लोग इधर-उधर को तितर-बितर हुए, सीधा वापस ओकवुड पहुँचा। मम्मी कालेज जा चुकी थीं। मैं इस सर्दी के मौसम में भी पसीने से तर बतर हो गया था। तय किया, थोड़ा आराम कर लूँ, तभी आप की तरफ चलूँ।"

बोलते-बोलते उसे हल्की-सी हाँफ चढ़ आई थी। कुछ क्षण अपने-आपको संतुलित करने में लगाने के बाद बोला, "ये लीजिये, इन्हें छोटे भाई की भेंट या कर्ज जो भी आप समझें, मगर स्वीकार कर लें।"

उसने लिफाफा जेब से निकालकर आगे बढ़ाया ही था कि कामरेड का पूरा चेहरा निहायत कोमल हो आया। उन्होंने शेखर के लिफाफे वाले हाथ को अपने हाथों में दबा लिया—"शेखर, ये तो तुम मुझे कल ही दे चुके, भाई!"

वह कुछ समझ नहीं पाया कि कामरेड क्या कहना चाहते हैं। वह

देख रहा था कि उनकी आँखों में एक विचित्र-सी चमक भरी है, जो साफ-साफ इस बात का अहसास करा रही है कि शायद, वो उससे रुपये न लेने का निश्चय कर चुके है।

वह अभी विस्मय मे ही था कि कामरेड ने एक हाथ उसके कंधे पर दिया—"शेखर, पहले मेरी पूरी बात सुन लेना, तव तुम वताना कि क्या मैंने ठीक फैसला नही लिया। सवसे पहले एक जरूरी बात मैं पूरी ईमानदारी के साथ यह वात कह रहा हूँ स्थिति के काबू से वाहर निकल जाने पर तुमसे खुद विना संकोच पैसे माँग लेने का फैसला मैं कर चुका हूँ।.... अब इसके बाद मुझे यह कहना है कि तुम्हारे पास से वापस लौटने के वाद रात नीद आने-आने तक में मैं इस सिलसिले में लगातार सोचता ही रहा। किस कदर सहारा तुम्हारी बातों से मुझे महसूस हुआ है, और इसे मैं बनाये रहना चाहता हूँ। ....देखो, उस दिन सुवह जव मैं वदहवास वापस लौटा था, तुमने सौ रुपये मेरी जेब में डाले थे? मैंने उन्हें नियामत समझा। उस वक्त मैं सचमुच भीतर तक हिल चुका था और मैं कह नहीं सकता कि उस वक्त मैंने तुमसे खुद माँग लिये होते और तुमने इन्कार कर दिया होता कि 'इस वक्त तो कामरेड दद्दा, मेरे पास पैसे नहीं।' तो चाहे तुम सच बोल रहे होते, मगर मैं सिर्फ यही महसूस करता कि तुम भी इंसानी फितरत वरत रहे हो और दोस्ती की तुम्हारी सारी लफ्फाजियों का मेरी तकलीफ से कोई वास्ता नहीं। ....चूँकि चीज हुई ही नहीं, इसलिये नहीं कह सकता किस हद तक मैं टूटता, मगर अब इतना अंतराल बीत गया है, तो एक वात समझ मे यह भी आई है कि किसी वदतर-से-वदतर परिस्थिति मे भी मुझे इस तरह वदहवास नहीं होना है। सरो को अपने साथ लेने के वाद अब मुझे इसका कोई हक नहीं। दूसरों की जिंदगी के साथ खिलवाड़ करने से वदतर कुछ नहो। ....तो, भाई, मैं कहना तुमसे यह चाहता हूँ कि कल जव तुमने जिक्र किया तो रुपयो को मैंने अपने हाथो मे महसूस किया। ....वल्कि तुम हँसोगे, मगर ये सारे रुपये मैं खर्च भी कर चुका! विजली लगाने से लेकर सरो के कपड़े, राशन पानी, अपने लिये

नदियों का पूरे गले का पुलोवर, ताकि सरो को सलाइयाँ हाथ में लिये बिनते देख सकूँ और खुद भी जाड़े में आराम महसूस कर सकूँ। और हरिवल्लभ के बकाया पैसे, एक-दो रिम कागज जाने क्या-क्या खरीदारी कर डाली मैंने। ....और धीरे-धीरे इसी फैसले पर पहुँचा कि नहीं, तुमसे इस वक्त पैसे लेना ठीक नहीं। तुमने इतना बड़प्पन बरत दिया शेखर, कि मैं महसूस करने लगा, छोटा पड़ जाऊँगा। ....और जैसा कि आज तक हुआ है, अपनी तंगदस्ती से उबरना हो नहीं पाया। जिंदगी-भर नही लौटा सका, तो मैं अपने को कभी माफ नहीं कर पाऊँगा। उधारी वालों के तगादों से बचने के लिये मैं इस शहर के बाजारों में बे-मौसम छतरी लिये घूमता रहा हूँ, मगर उस तकलीफ ने मुझे तोड़ा नही, क्योंकि दूसरों की नजर में गिरा हूँगा, मगर खुद अपनी नजर में भी हमेशा एक खुद्दार इंसान महसूस करता रहा अपने-आपको। ....तुम बुरा बिल्कुल न मानो। देखो, मैं किस तरह उद्यमी होते जा रहा हूँ। एकमुश्त हजार रुपये पाकर, सुस्त पड़ जाता। अब मैं कोशिश करना चाहता हूँ कि बिजली के कनेक्शन को भी जब लगना हो, मेरे खुद के उद्यम से लगे। और मुझे यह सब संघर्ष तुम करने दो। इससे मुझे ताकत मिलेगी।"

वह कुछ क्षण शब्दहीन पड़ा रह गया।

थोड़ा-सा उबरते ही बोला—"मैं आपके भीतर की नैतिक ताकत को आँक नहीं पाया था।"

"मैं अभी भी इसे सिर्फ एक बौद्धिक और व्यावहारिक किस्म की समझदारी ही कहना चाहूँगा, शेखर! यों यह तय है कि अपनी जिम्मेदारियों और हकों को साफ-साफ समझने लगना ही शायद नैतिक होना भी है। मैं इसे सीधे-सीधे आदमी का सामाजिक होना कहूँगा। जब हम...."

तभी ऊपर से सरस्वती ने 'शेखर भइया' की आवाज दी, तो कामरेड बोले—"बनाओ-बनाओ : बस, पांच मिनट में हम मे हम लोग आते हैं।"

'नहीं, अभी तो पकौड़ियाँ बनने मे काफी देर है—कोई आदमी आया है। कहता है, कुँवर साहब के यहाँ से आया है।'

"अरे यार, फिर जाने क्या बवाल लाया होगा। वाबूजी को, घर वालों को कल ही पता चल गया होगा सब। कहीं वावू जी ने ही कुछ न कहलवाया हो। ये लोग जाने क्यों दखल देना चाहते हैं। ....सरो, उससे कहो कि मैनेजर साहव के यहाँ से चिट्ठी लाया हो, तो वापस ले जाय।"

"देख लेने में हर्ज क्या है। आखिर बुजुर्ग हैं। जैसे परसों कुंवर साहव को दो लाइने लिख दी थीं, लिख देते आप और जो कुछ भी...."

वह अपनी बात पूरी करता कि तभी सरस्वती ने कठसीढ़ी से नीचे झाँकते हुए कहा—"वो कहता है वावू जी के यहाँ से नही, कुंवर साहव के यहाँ से आया है।"

"चलो यार, ये लोग वैठने नहीं देंगे चैन से। वड़ा सकून मिल रहा था यहाँ।" कहते हुए कामरेड उठ खड़े हुए।

ऊपर पहुँचे तो प्रेमकिशन ने 'जैहिन्द, साहव!' कहते हुए, लिफाफा आगे वढ़ा दिया। वेमन से कामरेड ने लिफाफा फाड़ा ही था कि सौ रुपये के नोट की झलक पाकर, चौंक गये वुरी तरह। शेखर की तरफ मुड़ते हुए वोले—"यार, ये रुपये कैसे दिखाई दे रहे हैं।"

एक नही, तीन नोट थे। साथ में संक्षिप्त-सा पत्र—'प्रिय श्यामलाल जी, वंदे! उस दिन प्रीतिभोज में आपकी अनुपस्थिति मुझे खलती रही। खैर, आप व्यस्त रहे होंगे। मैंने सुना कि आप अपने 'उत्तरांचल' का स्पेशल इश्यू निकाल रहे हैं। 'विश्रांत' का विज्ञापन, शायद, आप छापना न चाहे, इसलिये राजश्री शुगर मिल्स, कालागढ़, की तरफ से एक छोटा-सा शुभकामना विज्ञापन भेज रहा हूँ। रसीद 'उत्तरांचल' की प्रिंटेड रसीद-बुक पर रसीदी टिकट लगा सुविधा से सीधे मिल के एकाउन्ट्स-डिपार्टमेंन्ट को भेज दीजियेगा। अपने अधिकार के वाहर की एक वात लिखने की माफी चाहता हूँ। वहुत ही साहसिक और मानवीय कदम आपने उठाया है। मैं अपनी समस्त मंगलकामनायें भेजता हूँ। एक सूचना और। शायद,

आपके कानों तक भी यह अफवाह पहुँची हो कि मैं डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की चेयरमैनशिप के लिए खड़ा हो रहा हूँ। कृपा करके, इसे सिर्फ अफवाह ही समझें। ऐसा कोई इरादा मेरा नहीं। आप प्रसन्न होंगे। विनयी—महिपाल सिंह!'

इसके बाद पुनश्च था—'कभी वक्त मिले तो दर्शन दें या मुझे आज्ञा दें कि आपकी ओर चला आऊँ। अभी मैं सप्ताह-भर और यहीं रहूँगा।'

पढ़ना खत्म कर चुकने पर भी कामरेड कुछ क्षणों को पत्र हाथों में लिये ही रह गये, निःशब्द। फिर शेखर की ओर बढ़ा दिया। प्रेमकिशन से बोले—"तुम बैठो भई, जवाब लेते जाओगे। सरो, चाय तीन जनों को भेजना—पकौड़ियाँ भी।"

प्रेमकिशन खड़ा ही था कि उसका हाथ पकड़कर कामरेड ने कमरे में खींच लिया और दरी पर अपने साथ बिठाते हुए बोले—"यह कुँवर साहब की कोठी थोड़ी है, भइया, जो सोफा-कुर्सी तलाश रहे हो। क्या नाम है तुम्हारा?"

उसने नाम बताया तो कुछ देर कामरेड उसके गाँव, खेती-बाड़ी, माँ-बाप-भाई-बहनों के बारे में पूछते रहे और कि बच्चे कितने हैं?

"शादी नही बनाये है, साहब! खेती-बाड़ी इतनी होती, तो घर में रहते। होटल की नौकरी में इतनी समाई कहाँ।" कहते, उसका चेहरा संकोच-भरा और साथ ही उदास हो आया।

शेखर के चेहरे पर पत्र पढ़ चुकने का भाव देख लेने के बावजूद, कामरेड ने उसकी तरफ ध्यान नही दिया और मेज पर से लेटर-पैड लेकर लिखना शुरू किया—'प्रिय श्रीकुँवर साहब, अधिक कुछ न लिखकर, सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि आभारी हूँ। अधिकार का जहाँ तक सवाल है, इसे सही तौर पर आदमी अपने प्रेम और विवेक से ही प्राप्त करता है। मैं उपकृत हूँ कि आपके रुख में अवज्ञा नहीं, आत्मीय भाव है। कभी किसी शाम आप इधर आयें या सुविधा का वक्त देखकर मझे संदेश भेज दें, तो

खुशी होगी। मेरे साथ एक मित्र रहेंगे—श्री राजशेखर सिंह। आप प्रसन्न होंगे।'

चाय-पकौड़ियाँ खाकर, पत्र लेकर प्रेमकिशन चला गया, तो कामरेड बोले—'यार, इस राजा बच्चे की शाइस्तगी का लोहा मानना पड़ेगा। तुमने भी पत्र पढ़ा है। कैसे एक-एक लफ्ज में सावधानी वरती गई है। उन्हें मैं महसूस कर रहा हूँ कि इस बात का अहसास है कि जरा-सा चुभ जाने पर शायद मैं लेने से इंकार कर दूँ! यों जताया है, जैसे 'उत्तरांचल' में विज्ञापन छपने से मिल का कोई उपकार होना हो। रसीदी टिकट लगी रसीद सीधे मिल के एकाउन्ट्स डिपार्टमेन्ट को भेजनी है, ताकि मन पर कृपा का बोझ न पड़े।'

"चलिये आपने इतना तो माना कि बुनियादी अच्छाइयाँ सामंतों-राजाओं में भी होती हैं।"

"ऐसा है, शेखर! बुनियादी इंसानियत किसी में भी हो, उसकी इज्जत की जानी चाहिये—फिर चाहे वह मजदूर हो, या राजा!....मगर इन-डिवीज्युअल अच्छाइयों या बुराइयों से समाज की पड़ताल नहीं होती। बुराइयाँ यदि अपवाद हों, तो यह समाज के वैचारिक, नैतिक और भावनात्मक रूप मे जागरूक होने का सबूत है, मगर फिलहाल हमारे समाज में अच्छाई और इंसानियत का वरता जाना अपवाद चीज है। अगर कोई हमारे साथ अच्छा व्यवहार वरतता है, सच्चाई-ईमानदारी के साथ पेश आता है—और हमारे दुःख, मुसीबत-परेशानियों में हाथ बँटाता है, तो यह हमें उस आदमी की स्वाभाविक और जरूरी सामाजिक या मानवीय जिम्मेदारी नहीं—ताज्जुब की चीज लगता है! हमे अच्छाई और सच्चाई या 'सिम्पैथेटिक एटीट्यूड' हैरत की चीजें लगने लगी है, तो यह गर्व करने की नहीं, अपने समाज की शोचनीय हालत पर गौर करने की बात है। यहाँ हालत ये है कि अगर पुलिस वाले किसी चोर-बदमाश को पकड़ लें,

तो यह इनाम के लायक कारनामा ज्यादा हो जाता है, पुलिस की ड्यूटी कम !....मैं कुंवर साहब की नेकी को कम करके देखना नही चाहता। इस बिगड़े माहौल में इस तरह की 'इनडिवीजुअल' भलमनसाहत इतनी राहत तो देती ही है कि अभी सब-कुछ पूरी तौर पर खत्म नहीं हो गया। हरियाली अगर निहायत खुदरा तौर पर भी है, तो सबूत है कि जमीन पूरी तरह बंजर नही हुई। 'इनडिवीजुअल' तौर पर बरती गई इंसानियत भी इस बात का अहसास कराती है कि समाज अभी कहीं अपनी जड़ों मे नमी बचाये है।....मगर 'इनडिवीज्युअल' किस्म की भलमनसाहतों की हमेशा एक सीमा होती है। मसलन, तुम कुंवर साहब के वाकये को ही ले लो। ....वो मेरे साथ या कई औरों के साथ भलनसाहत बरत सकते हैं, मगर ये उनके बस की चीज नही कि अपने होटल या चीनी मिल में नौकरी करते लोगों की इस 'ट्रेजेडी' के बारे में गौर कर सकें कि इस 'इस्टेब्लिशमेन्ट' मे आदमी की निहायत बुनियादी और जरूरी आकांक्षाओं का किस तरह हनन होता है। कुंवर साहब को दो रानियां है, और न-जाने कितनी दूसरी औरतों से उनके ताल्लुकात होगे, मगर ये उनके लिये तकलीफ महसूस करने की चीज नही कि उन्हीं के यहां कितने लोग ऐसे है, जिनके लिये स्त्री जैसे स्वप्न की चीज है। स्त्री, जो कि कुदरती तौर पर सामाजिक सहकार की हकदार है, और उसे 'कामरेड' होना ही चाहिये। स्त्री का वो दर्जा हमारे समाज में बन ही नही पा रहा।"

"कामरेड दद्दा, आप कितनी सुनने-लायक बाते करते है, मगर मैं पूरी तवज्जो नहीं दे पाता। मैं कुछ संतुलित रहने लगा था कि आज के हादसे ने फिर घपले मे डाल दिया है।"

"हां यार, अपने खब्त में इस सिलसिले मे कोई बात नही कर पाया। देखो, शेखर, इतना तय है कि लोग अपना काम कर रहे है और तुम्हे बहुत एहतियात से काम लेना होगा। जरूरी ये है कि अब धीरे-धीरे तुम खुद चीजों के बारे में बहुत 'ऑब्जेक्टिव' तरीके से सोचने की कोशिश करो। अपने दिल-दिमाग को हाई-टेम्प्रेचर का आदी बनने देना ठीक नही।

लड़कियों, औरतों को हिरनियों की तरह चौंकते, फब्तियाँ कसते या फिल्मी धुनें गुनगुनाते देखकर 'टेम्पटेड' होना या रोमांचित होना—अपने किये को लेकर बहुत जोरदार हरकत कर डालने का मुगालता बना लेना—ये सब बातें तुम्हें सही तरीके से सोचने नहीं देंगी। मसलन अब तुम सुबह वाले हादसे को ही ले लो। ठंडे दिमाग से सोचो, तो इसमें ताज्जुब करने या अनहोनी होने-जैसी कोई बात नहीं। तुम्हारी 'बिलवेड' ही सही, मगर एक विवाहित स्त्री के साथ बदसलूकी करने और उसके पति के साथ फौजदारी पर उतर आने की तुम्हारी असहिष्णुता को लोग तुम्हारी भावनात्मक व्याकुलता, प्रेम में विश्वासघात से मर्माहत होकर मानसिक संतुलन खो बैठने की स्वाभाविक प्रतिक्रिया या प्रेम के प्रति बलिदानी मुद्रा का रुतबा देने के लिये कतई 'बाउन्ड' नहीं।....और खास तौर पर 'मोटिवेटेड' किस्म के लोगों के लिये इसे एक निहायत असामाजिक, बर्बर और बेहूदा हरकत के रूप में 'फेब्रिकेट' करके, दूसरे लोगों को इस हद तक उत्तेजित कर डालने की पूरी-पूरी गुंजाइश है कि लोग तुम्हारा रास्ता छेकना शुरू कर दें। तुम पर हमला कर दें। स्टूडेण्ट तबके को बरगलाना तो और भी आसान है। गनीमत है कि तुम्हारा साबका एक निहायत शरीफ प्रोफेसर से पड़ा है, जो अपनी निजी बेइज्जती को बाजारू किस्म के लोगों की तमाशबीनी की चीज नहीं बनाना चाहता।"

"आपकी और मम्मी की इस तरह की दलीलें सुनता हूँ तो मेरा दिमाग सुन्न होने लगता है।"

"तुम्हारी राय में हम लोग गलत 'एनेलाइसिस' कर रहे हैं?"

"आपने भी क्या बात कह दी, कामरेड दद्दा, आप दोनों तो मेरे दिल-दिमाग पर इतने हावी हो चुके कि मैं एक बार को खुद को अपना 'वेल-विशर' मानने पर शक कर सकता हूँ, मगर आप लोगों का स्नेह तो कुछ दैवी अनुकम्पा के लगभग की चीज है मेरे लिये। बदहवास तो मैं ये सोच-सोचकर होने लगता हूँ कि जो शहीदों का जैसा जुनून मेरे सिर पर चढ़ा था—और जो सचमुच मुझसे तिलिस्मी किस्म की दुनिया में फेरियाँ लगवाता रहा—

जब उसकी कोई कीमत ही नहीं रह गई और वह सारा जुनून, वो सारी तकलीफें, वह रातों को लावारिसों की तरह का भटकना और मौत माँगने के मुहाने पर ले आने वाली आत्मग्लानियाँ—ये सब सिर्फ फालतू और वाहियात के सिवा कुछ नहीं, तो फिर आखिर मैं अभी भी जिंदा क्यों हूँ ? और जिंदा भी हूँ, तो फिर इस शहर में क्यों हूँ, जहाँ मेरी औकात, मेरी हैसियत और मेरी 'इमेज' सिर्फ एक बद्दिमाग, एन्टी-सोशल एलीमेन्ट, बेहया औरत-बाज और गुण्डा आवारागर्द होने के अलावा कुछ भी तो नहीं !"

प्रत्येक क्षण उसका चेहरा बदलता, तनाव-भरा और विक्षुब्ध होता चला गया। बात खत्म करते-करते तक में उसकी आँखें ऐसी हो आईं, जैसे अपने को फूट-फूटकर रो पड़ने से बचाने के लिये वह सारी ताकत सिर्फ आँखों से लगा रहा हो।

साफ था कि अपने भीतर की जिस व्याकुलता और आवेगशीलता को पिछले कुछ दिनों में वह भीतर धकेलता चला गया था, वह सारा-का-सारा बाँध के टूटने की तरह उस पर आ पड़ा है।

कामरेड ने धीमे से उसके कंधे पर हाथ रखा—"चलो, तुम-हम जरा कहीं एकांत की तरफ टहल आयें।"

● ●

१९

वाजार मे आकर, कामरेड ने मिश्रा पान भण्डार से पान लगवाये और शेखर के लिये पनामा की डिव्वी ली।

बोले—"चलो, आज उधर संतपाल कान्वेन्ट के आगे की तरफ निकल जायें।"

झील के पश्चिमी छोर वाली सड़क पर वो लोग पहुँचे, तो थोड़ी देर रुकना पड़ा। कान्वेंट के वच्चे सफेद वगुलों के संघ की तरह, प्रार्थना करते संत पाल गिरजा तथा कान्वेन्ट की ओर शुरू होती पगडण्डी पर चरागाह की दिशा से वापस लौटते मेमनों की तरह चढ़ाई शुरू कर रहे थे।

फादर मैथ्यूज ने दोनों की ओर देखा और 'गुड ईवनिंग, फादर!' के जवाव में नमस्कार की मुद्रा में हाथ जोड़ते हुए अत्यन्त आत्मीय भाव से मुस्कुराये। उन लोगों के पूरी तरह पगडण्डीनुमा संकरी सड़क पर होते ही, दोनों जनों ने—थोड़ा-सा अंतराल देकर—खुद भी उस पर चलना प्रारम्भ किया ही था कि सामने से एकाएक प्रकट होती गीता पाल को देखकर, दोनों ही चौंक गये।

जैसे विस्मय में कुछ वक्त गुजर गया हो, सवके चेहरों पर असमंजस की-सी छाया थी।

आपस में नमस्कार की औपचारिकता पूरी हुई तो कामरेड ने ही पूछ लिया—"कहिये, गीता वहन, इधर कहाँ से?"

उसके चेहरे पर अपने उदास होने को तेजी के साथ वदल लेने की कोशिश का चमकना साफ दिखाई दे गया।

'ऊपर, कुंवर साहव की कोठी की तरफ से आ रही हूँ।" कहते हुए,

उसने अपने चेहरे को लगभग प्रफुल्लता में कर लिया, मगर अवसाद अभी भी छाया की तरह साथ था।

उसने एक बार कामरेड से बचाकर, भरपूर आँखों से शेखर की ओर देखा। उसका वह निमिष-भर का देखना खुद को और उसको, दोनों को पारदर्शी कर डालने की तीक्ष्णता से भरा था।

'अच्छा, नमस्कार' कहती, हाथ विनय में जोड़ती, वह किंचित् तेज कदमों से नीचे, सड़क की तरफ उतर गई, तो उन दोनों को ही हवा के तेज झोंके के गुजर जाने की सी अनुभूति हुई और कुछ क्षण दोनों ही एक-दूसरे को देखते रहे।

कुछ दूर तक चढाई पार कर लेने के बाद कुंवर साहब की कोठी वाली दिशा छोड़कर संतपाल गिरजा और जंगलात बँगले की दिशा में मुड़ गये दोनों।

जंगल के लगभग सम्पूर्ण एकांत में आ चुकने के बाद, कामरेड ने, एक समतल किस्म के टीले पर खुद बैठते हुए, उसका हाथ थाम लिया—"बैठो, शेखर!"

सूर्यास्त होने में अभी कुछ देर थी। गाढ़ा एकांत होने से हवा का बहना सुनाई दे रहा था। कामरेड ने गौर से उसकी ओर देखा। अंतराल पड़ जाने और इतनी दूर तक प्रकृति में चले आने ने उसके चेहरे को काफी बदल दिया था।

"ऐसा है, शेखर! तुमसे जो सचाई से बात करने की तबीयत हो आती है, उसके पीछे यह इतमीनान है कि तुम 'बैडफेथ' मे कहा हर्गिज न मानोगे। उस वक्त तुम फिर भावावेश में थे और मैं नहीं चाहता था कि सरो की उपस्थिति में ही तुम अपना 'बैलेन्स' खो बैठो।....मगर अब मैं तुमसे यह कह लेना चाहता हूँ कि उत्तेजना में तुम अपने को बुरा-भला कहते तो चले गये, लेकिन क्या तुम्हें इस बात का ख्याल आया ही नहीं

कि आखिर वह कौन-सी अच्छाई है तुममें जो मिसेज मैठाणी-जैसी रिजर्व, स्नॉब और सख्त किस्म की औरत को तुम्हारे प्रति इतना द्रवीभूत किये है ? आखिर हम लोग क्यों तुम्हें इतना प्यार करने लगे है ? तुम्हारी फिक्र हमारी अपनी चीज क्यों हो गई है ? गीता पाल-जैसी अनप्रिडिक्टेबुल मगर सचमुच की अभिजात, दिमाग और जिस्म दोनों से खूबसूरत औरत किन वजहों से तुम्हारी ओर खिंची जाती है ? जो औरत यहाँ के बड़े-बड़े नेता, अफसर और पैसेवालों को घास नही डालती—बात करती है बड़े लोगों से तो ऐसे कि मेहरबानी बरत रही हो—जिसकी शख्सियत का लोहा कुँवर अहिपाल-जैसा सामन्त भी मानता है—वह औरत आखिर तुममें क्या देखती है, जो इस हद तक 'इन्वाल्व' हो रही है ? मैं कहूँगा, फिदा होने की हद तक।"

वह चकित भाव से कामरेड की तरफ देखता रह गया, तो वो धीमे से मुस्कराये और बोले—"मैं कोई औरतों का विशेषज्ञ नहीं, बन्धु ! औरतों का मेरा निजी अनुभव किताबी जरूर ज्यादा है, मगर प्रैक्टिकल बहुत थोड़ा....लेकिन फिर भी मैं कहना चाहता हूँ कि हालाँकि उसने मुझसे काफी नजर बचाकर तुम्हे देखा, और शायद, मुश्किल से तीन-चार सेकन्ड ही देखा होगा—मगर मै इतनी देर के बाद भी यही महसूस कर रहा हूँ कि, शायद, वह तुमसे मुहब्बत करने लगी है। —यहाँ मै मुहब्बत लफ़्ज को 'सिम्पैथी' महसूस करने के लिये नही, शुद्ध लौकिक प्रेम के लिये इस्ते-माल कर रहा हूँ !"

अपनी बात खत्म करते ही कामरेड ने बीड़ी सुलगानी शुरू कर दी।

उसने सिर झुकाये ही कहा—"आपकी इस 'एनेलिसिस' की 'बेस' क्या है ?"

"बेस ? आखिर मैं भी उसके सामने ही खड़ा था और वह मुझे भी देख रही थी ? मगर तुम्हारी ओर देखते हुए, उसके चेहरे और आँखो में कैसी बिजली-सी कौंधी थी—जैसे सिर्फ एक नजर, सिर्फ एक लमहे में तुम्हे सम्पूर्ण-सम्पूर्ण देख लेना चाहती हो। औरत की आँख में इस दर्जे का

'पैशन' तब तक आना मुमकिन नहीं, जब तक वह किसी को अपनी 'एग्जिस्टेन्स' का हिस्सा न बना ले। मर्द सपूरा तो नेचर से ही शार्ट-टेम्पर्ड होता है—औरत को दीवानगी में आते वक्त लगता है।.......चालाक किस्म की औरतें सिर्फ शो करती हैं और आदमी झांसे में आ भी जाता है, मगर आई कैन से, शी इज वेरी सिंसियर टु यू!"

"मान लेना चाहूं, इस तरह के वहम को, तो मैं भी मान ले सकता हूं। मैंने आपको बताया भी था कि बातें करते-करते, भावावेश में उन्होंने मेरे हाथ पर हाथ रखा भी था। और उसी वक्त तो नहीं, मगर मैंने बाद मे यह महसूस किया कि उनकी उंगलियों मे क्लैसिकल डांसरो की जैसी ऊष्मा और गति है।"

"यार, तुम तो बहुत ही स्त्री-पटु और प्रेमी किस्म के जीव हो, फिर भी क्या साली हत्या-मौत-फौजदारी की बाते पिंजरे के तोते की तरह अपने भीतर लिये-लिये घूमते हो!........एक बात मैं तुमसे और भी कहने वाला था। वह यह कि क्या कभी तुम इस पर भी गौर करते हो कि सिर्फ इस एक महीने में तुम्हारी सेंसिबिलिटी, तुम्हारे बोलने की तमीज और लफ्जों की पकड़ में कितना इजाफा हुआ है? तुम लगातार यही झख लगाये रहते हो, जैसे भविष्य-जैसी कोई चीज तुम्हारे आगे दूर-दूर तक न हो, मगर मुझे पूरा-पूरा इतमीनान है कि तुम्हारा नया जीवन शुरू होने जा रहा है।.......और सच पूछो, शेखर, तो मेरी दिलचस्पी तुममें अब सिर्फ इसीलिये बढ़ गई है। मैंने यह रीड किया है कि सिर्फ अपनी ही हग्गो-मुत्तो से आगे की जिंदगी को जीने और उसके लिये संघर्ष कर सकने की क्षमता और संवेदना तुममें है। मैंने इधर एक सपना देखना शुरू किया है। तुम और हम मिलकर 'उत्तरांचल' को कायदे से चलाने की कोशिश कर सकते हैं। अपने को एक ज्यादा बड़े समाज और संघर्ष से जोड़ने का भी एक सुख है, और वह बहुत कीमती है। मानवीय है।"

अपनी प्रसन्नता में कामरेड ने उसके दोनों हाथों को अपने हाथों में ले लिया—"मैंने भयंकर तंगदस्ती की जिंदगी गुजारी है इधर, सालों

से ।.......फजीहतें भी उठाई है । बहुत टैम्परेरी-किस्म की कुढ़न की बात छोड़ दो, मगर कभी पछतावे-जैसी चीज महसूस नहीं की है ।...बल्कि महसूस यह किया है कि अपनी जिंदगी को बेहतर बना सकने की उम्मीद बढ़ती गई है और यही उम्मीद है, जो मुझे टूटने से बचाये है । मैंने जो ये फाकाकशी के कगार पर पहुँचकर, उस औरत को साथ ले लिया है, यह मेरी इस उम्मीद का सबूत है । मेरे भीतर, धीरे-धीरे, इस कंगाली से गुजरते हुए ही यह आस्था पैदा हुई है कि अपनी इंसानियत पर बने रहने के संघर्ष मे आदमी चूके नहीं, तो इसका 'रिटर्न' उसे मिलता जरूर है । तुम मिले हो, सरो मिली है, अपने चरित्र, अपनी आकांक्षाओं को किसी भी कीमत पर न त्यागने का इरादा बनता गया है भीतर—यह सब मेरे नजदीक मेरा 'एचीवमेन्ट' है । आदमी बदहालियों और अभावों में सिर्फ तभी दम तोड़ता है, जब उसे स्ट्रगल करते हुए कुछ 'एचीव' करते जाने की जगह, लगातार कुछ 'लूज' करते जाने की 'फीलिंग' होती जाय । आदमी का दुनिया की निगाहों से भी पहले, खुद अपनी निगाह में सही होना जरूरी है । और हमें हर हाल में और बिल्कुल मुकम्मल तौर पर खुद को सही पाने के 'प्वाइंट' पर सिर्फ एक ही चीज पहुँचाती है—आदमी के तौर पर किया हुआ हमारा संघर्ष !"

अपनी बात पूरी करके, कामरेड आँखें ऊपर उठाये, कुछ देर तक ऊँचे देवदारुओं की ओर देखते रहे । फिर एकाएक, उसकी ओर देखते हुए, शरारत के साथ बोले—"यार, मैंने प्रेम-वार्ता को फिर से संघर्ष के ऊबाऊ 'टॉपिक' पर लाके पटक दिया, इससे तुम नाराज तो नहीं हुए ? या मायूस ?"

"अरे, नहीं, कामरेड दद्दा ! गीता जी वाली बात मेरे लिये सिर्फ हवाई है । उसको सिर्फ एक कौतूहल के तौर पर भले हो ले लूँ मैं, सीरियली उसे लेने को तैयार नहीं । और न यह सब 'प्रैक्टीकल' है । अलबत्ता आपके साथ मिलकर संघर्ष करने वाली बात पर मैं जरूर सोच रहा था ।"

"खैर, इस पर तो तुमको सोचना है ही ।"

कामरेड पीठ के बल लेटकर, शून्य की ओर देखने लगे थे। वह भी पसर गया।

आकाश की ओर ताकते में देवदारु और चीड़ के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष कभी-चलते और कभी अपनी जगह पर परिक्रमा करते से प्रतीत होते हैं। दूर-दूर आकाश में चील, बाज तथा अन्य पक्षियों का उड़ना—यों पीठ के बल लेटकर आकाश की ओर एकटक ताकते हुए—मछलियों के झील में गोते ले रहे होने की जैसी प्रतीति देने लगता है।

कुछ देर यों ही लेटे-लेटे आपस में बतियाने के बाद, कामरेड ने उँगली से संकेत करते हुए कहा—"चलो, आज उधर सनोवर इस्टेट की तरफ चलें। वहाँ हवलदार की दुकान पर चाय बढ़िया मिलती है।"

"आप आज अपना फटा स्वेटर भी नहीं पहने हैं। उतनी दूर जाने के बाद ठंड में लौटना...."

"मफलर है, भाई! और अभी सिर्फ नवम्बर ही तो बीतने को है। मैं ठंड का आदी हूँ। बस, इस मौसम में बारिश होने पर जमकर यह शहर बर्फ होने लगता है। पिछले कुछ दिनों से बारिश हुई नहीं है। मौसम बहुत सुहाना है। ठंड अभी बर्दाश्त से बाहर न होगी।"

उठकर, चलना शुरू किया दोनों ने, तो कामरेड बोले—"यार, उस राजा बच्चे ने रुपये ऐसे वक्त भेज दिये कि मुझे एकाएक ये 'फीलिंग' हुई कि तुम्हारे साथ जिम्मेदारी बरतने का इनाम...."

"किसकी ओर से माना आपने? कुदरत, आदमी या ईश्वर...."

"तुम्हें मेरे नास्तिक होने में अगर सिर्फ मजा आता हो, शेखर, तो कोई बात नहीं—लेकिन अगर असुविधा होती है, बाधा महसूस होती है, तो मैं मानूँगा कि यह गलत होना है मेरा। मैं बेसिकली इस प्रिंसीपल को मानता हूँ कि आप नास्तिक हैं या आस्तिक, यह सब बिल्कुल बेमानी है। सवाल यह है कि आदमी के प्रति, समाज के प्रति—बल्कि मैं कहूँगा कि

जानवरों तक के प्रति आपका रुख प्रेम, समझदारी और ज़िम्मेदारी का है, या नहीं, 'वैल्यू' सिर्फ़ इस चीज की है। 'टुवर्ड्स मैनकाइंड' अगर आपका रवैया गलत है, तो आपका नास्तिक या आस्तिक होना, सिर्फ़ एक दिमागी अय्याशी या खराबी या महज बेवकूफी-भर है। इंसान को अगर आप खुदा की औलाद भी मानते हैं, तो समझदारी कहती है कि खुदा को तो अब मरहूम वालिद की जगह पर समझा जाय और इंसान को ही माना जाय कि सारी नजदीकी रिश्तेदारी अब इसी से है।....हालाँकि मैं ये कुबूल करता हूँ कि कहीं कोई सुपर-पावर है, लेकिन मैं चीजों के बारे में खुदाई करिश्मे से ज्यादा, आदमी की भलमनसाहत मानते हुए खुशी महसूस करता हूँ। खुशी और आस्था।"

वो लोग जब हवलदार की दुकान तक पहुँचे, जंगल चरने गई गाय-बकरियाँ लौटी ही थीं। गोठ में जाने की उनकी त्वरा सूर्यास्त हो चुकने को प्रतिबिम्बित कर रही थी। पूर्णिमा के आस-पास की चाँदनी, आकाश निरभ्र होने से, भरपूर खिली हुई थी और सनोवर इस्टेट, तथा छोटे-छोटे पहाड़ी गाँवों वाली यह घाटी अप्रतिम रूप से खूबसूरत हो चली थी।

"बिल्कुल कविता का मौसम है। मैंने इधर कुछ लिखी है, जो पहले दी थीं आपको, उनसे कुछ बेहतर होंगी। पिछली कविताओं में व्यक्तिगत दुख और यातनाओं का राँड-रोना ज्यादा हो गया है, ऐसा मुझे लगता है।"

"देखो, थोड़ा-सा वक्त गुजरते ही तुम्हारी आब्जेक्टिविटी बढ़ी है या नहीं? मुझे पूरी उम्मीद है, एकाध महीना और बीतते, न बीतते तुम पूरी तरह नार्मल हो चुके होगे—और तब हम दोनों का ज्यादा बेहतर वक्त शुरू होगा। सिर्फ़ संघर्ष की दृष्टि से ही सही।"

वापस लौटते भी दोनों ढेर-सारी बातें करते रहे, मगर, होस्टल वाले रास्ते पर होकर लौटते में कामरेड के घर तक साथ-साथ चलने की जगह,

उसने आग्रहपूर्वक कामरेड को भी ओकचुड़ वाली पगडण्डी पर मोड़ लिया। वो लोग ओकचुड़ पहुँचे, तब श्रीमती मडाणा बरामदे में बैठी कटहल काट रही थी !

"ओह, श्यामू बेटा !"—कहती वो उन लोगों के करीब होती चली आईं। कामरेड के सिर पर स्नेह से हाथ फेरती बोली—"बहू को नहीं लाये ?"

● ●

२०

तीन मंजिला स्वदेश प्रेस की निचली मंजिल के मुख्य सड़क की ओर पड़ने वाले हिस्से मे खादी भण्डार है, जहाँ खादी के तैयारशुदा कपड़ों और शाल-कम्बल से लेकर शुद्ध प्राकृतिक शहद तक बिकता है। श्रमजीवी हरिजनों को रोजी-रोटी दिलाने के अभियान में हाथ की बिनी टोकरी-चटाइयों-जैसी घरेलू चीजों का बिक्री-अनुभाग खादी भण्डार से लगी लम्बी और सँकरी कोठरी में है। दो गाँधी-चक्कियाँ और एक अम्बर चर्खा और कुछ गाँधी-साहित्य, जिसमे तीस-पैंतीस वर्ष पुराने 'हरिजन' के अंकों के साथ करीब इतने ही पुराने 'स्वदेश' के कुछ अंक खादी भण्डार के शो-केस में हमेशा रखे रहते हैं।

कुल मिलाकर, स्वदेश प्रेस का यह अगला हिस्सा आजादी की लड़ाई के बलिदानी युग, गाँधी विचारधारा और स्वदेश-प्रीति का स्मारक होने की प्रतीति कराता है।

बीच की मंजिल में जिला कांग्रेस कमेटी का दफ्तर। पिछली ओर, निचले हिस्से के दो कुछ बड़े आकार के कमरों में स्वदेश प्रेस है और इन्ही कमरों के ऊपर एक अपेक्षाकृत छोटा कमरा सम्पादकीय-कार्यालय, जहाँ सहायक-सम्पादक हेमवती चन्द्र 'विश्वबन्धु' ज्यादा बैठते हैं, खुद शारदा पंडित कम ही।

शारदा पंडित का बैठका इसी पिछले हिस्से के सबसे ऊपर वाले एक लगभग छोटे हालनुमा, लम्बे-चौड़े कमरे में है। शौचालय, स्नानघर और पूजागृह सब संलग्न है। सादगी और स्वच्छता यहाँ के वातावरण में

विराजमान होने की तरह रहती है। कमरे की दीवारों पर गांधी, नेहरू लालबहादुर शास्त्री के अलावा स्व० भास्करनाथ पंडित की बड़ी तस्वीरों के अलावा 'वैष्णवजन तो तेणे कहिये', 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है', अंग्रेजो—भारत छोड़ो!' आदि सूक्तियां टंगी हैं और 'अंग्रेजो—भारत छोड़ो!' सूक्ति के साथ सर्किट हाउस में धरना देते लोगों का एक ग्रुप-फोटो है, जिसमें शारदा पंडित को ठीक-ठीक पहचानना मुश्किल होने के कारण, **'पांचवीं कतार में बांयी ओर से चौथे 'स्वदेश'-सम्पादक श्री शारदा प्रसाद पंडित सुपुत्र कविराज स्व० पं० भास्कर नाथ पंडित।'** की टाइप की हुई चिप्पी लगी है।

"तेरे बेटे के लिये मैंने कांता से कह दिया है। वह जाने लगे, तो साथ कर देना। कहीं सेक्रेटरियेट मे लगा देगा। पढा-लिखा है नहीं, ज्यादा-से-ज्यादा चपरासगिरी मिलेगी। मिडिल-पास भी होता, तो कहीं बाबूगिरी में लगा देता।" मुंह के बल लेटे होने के कारण, शारदा पंडित की आवाज रामदुलारी तक दबती-टूटती-सी पहुँच रही थी।

रामदुलारी ने तेल के कटोरे को जमीन पर रख दिया। दोनों हाथों से पीठ की मालिश शुरू करते बोली—"यहाँ जूठे बरतन माँजने से तो अच्छा ही है, बाबूजी! मिनिस्टरी की नौकरी मे इज्जत भी है।"

नहा-धोकर, शारदा पंडित सम्पादकीय-कार्यालय मे आये। अभी विश्वबन्धु आये नही थे। शारदा पंडित एक कागज लेकर, लिखने बैठ गये।

विश्वबन्धु आये, प्रणाम किया, तो बोले—"विश्वबन्धुजी, इस राइट-अप को साफ कापी करके कम्पोजिंग मे दे दें।"

"ये तो साफ लिखावट मे है, पंडित जी, मांगीलाल बखूबी पढ़ लेगा।"

"नीति-सम्बन्धी विषयों पर आप सिर्फ उतना ही बोलिये, जितने से अखबार समय से निकलता रहे। आप कोई नये आदमी नहीं हैं। आज पैंतीस साल होने को आये आपको स्वदेश प्रेस की सेवा में। इस राष्ट्रीय

अखबार के निर्माण में आपका भी हाथ है।....आपने वो '**आज जनपद को कैसे जिला परिषद् चेयरमैन की जरूरत है**' वाला अग्रलेख तैयार कर लिया, था नहीं ? फ्रण्ट पेज पर, पार्वती बहन जी की वर्षावाली फोटो के साथ, आपके नाम से जायेगा। रायसाहब, भैयाजी, दामूजी, साँवरिया लाल जी—सभी की यही राय है कि महिलाओं को आगे की कतार में करना जरूरी है, और हमारे समाज और देश को दुनिया के मुकाबले में अपने पाँवों पर खड़ा होना है, तो यह सब हमें करना पड़ेगा। उधर केन्द्र में बेटी इन्दिरा को पंडित जी के रिक्त आसन पर बिठाने को कोशिशें चल रही है। मनुस्मृति में भी कहा है—'यत्र नार्यस्तुपूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता'.... आपकी धर्मपत्नी भी बहुत ही सुशील और धार्मिक वृत्ति की महिला हैं। उनकी तबीयत अब कैसी है ?"

"उन्हें दिवंगत हुए तो महीना पूरा होने को आ रहा है। गति-किरिया भी ठीक से नहीं हो सकी।"

"क्यों, क्या बात हो गई ? हवन-यज्ञ तो किया ही गया होगा ? मृतात्मा के साथ यही सब जाता है।"

"जब बच्चों के पेट में दारिद्रय बज रहा हो—माँ की आत्मा की शांति के लिये हवन-यज्ञ करने का विधान कहाँ से हो !"—विश्वबन्धु अपनी बढ़ी हुई दाढ़ी और असमय के बुढ़ापे में तत्काल किसी रुग्ण-शैय्या से उठकर आये प्रतीत हो रहे थे। सस्ते किस्म के पुराने चश्मे में उनकी आँखें सुरक्षा में पीछे को भागती होने का अहसास करा रही थी। उन्होंने अपने कुरते के छोर को ऊपर उठाते हुए, चश्मा आँखों से अलग किया ही था कि शारदा पंडित ने उठकर दीवार की खूँटी पर टँगी छड़ी उतारकर, हाथ में ले ली। विश्वबन्धु जी की स्टूलनुमा मेज के पास आकर बोले—"आप-जैसे धीरोदात्त और विवेकी पुरुष को दीनता प्रकट करना शोभा नहीं देता, विश्वबन्धु जी ! विचार कीजिये, आप-जैसे अनुभवी, आजादी के इतने लम्बे संग्राम में तपकर आये हुए अपने चारों ओर के समाज और देश की सारी दुरावस्थाओं के विशेषज्ञ लोग इस तरह हिम्मत हारने

पेज का मैटर आज तैयार करके दे देंगे विश्ववंधु जी।""और देखिए, प्रिंट-लाइन में वदल होनी है इस वार, आपको पता है ना ? संस्थापक-सम्पादक—पंडित शारदा प्रसाद, सम्पादक—पंडित कांताप्रसाद करना होगा। व्यवस्थापिका—श्रीमती सत्यवती पंडित, सहायक-सम्पादक—विश्ववंधु ज्यो-का-त्यो रहेगा।" आगे निकल आने पर, उन्होंने अभी तक अपने हाथ मे थमे खुद के लिखे कागज को चिंदी-चिंदी फाड़कर, किनारे की नाली में डाल दिया और तेज कदमों से रिक्शा-स्टैण्ड की तरफ वढ़ गये। विश्ववंधु नीचे मैटर देने आये, तो माँगीलाल ने व्यंगपूर्वक कहा—"वगुला भगत गये !"

"भावी भगत वैठा है ऊपर !"

"जैसी मुर्गी, वैसा अण्डा कह रखा है, पंडित जी ! चलिये, वाहर चल के चाय पी आये।"

विश्ववंधुजी ने मांगीलाल की ओर गौर से देखा, तो वोला—"मुझे कुछ कहने की ताव नही वगुला भगत की। मैं आपकी तरह कलम का नही, हाथों का मजूर हूँ। मै अपनी गरज से यहाँ नहीं पड़ा—वह मुझे अपनी गरज से यहाँ रखे हैं। कोहली प्रेस वालों से पचास-साठ ज्यादा दे रहा है, इसलिये पडा हूँ। हाँ, ऊपर वैठा हरामजादा, हो सकता है आपकी शिकायत लगाये...."

"तुम्हारा कथन विल्कुल ठीक है, माँगीलाल !""मगर अब मैंने भी फिक्र छोड दी है। प्रफुल्ल की माँ के मरने के वाद से विषाद-योग मे हो गया हूँ। अब ज्यादा दिन नहीं रह गये। ईश्वर की कृपा से, प्रफुल्ल ने इंटर कर लिया है। बी० ए०, एम० ए० सब प्राइवेट पास कर लेने की बात करता है और कर लेगा। सुनीता कालागढ़ के राजा साहव के ट्रस्टीशिप में चल रही कन्या पाठशाला में अध्यापिका लग गई है। अव तो प्रफुल्ल की माँ की आवाज सुनाई पड़ने लगी कि 'सुनीता के वावू, अव कब तक भय और मोह मे पड़े रहोगे ?' मै कहता हूँ, सुनीता वेटी के शादी हो जाने दो, तुरत चला आऊँगा।""सोचता हूँ, तो विस्मय होता

है कि क्या मैं वही हेमवती चंद्र हूँ, जिसके नाम से कलक्टर-कमिश्नर दहशत खाते थे! डरता-डरता कहाँ पहुँच चुका मैं। खैर! माँगीलाल, अब मैंने भी तय कर लिया है कि इस लोमड़ पंडित को कह ही लेने दूँ। हालाँकि मैं जानता हूँ कि 'विश्ववंधु जी, अब आपकी सेवाओं की आवश्यकता हमें नहीं रही।' कहने की जगह, नेता 'अब स्वदेश प्रेस आपकी सेवायें ले सकने में असमर्थ हो गया है।' ही कहेगा। लाखों-लाखों का वारा-न्यारा कर लिया, मगर 'स्वदेश' की हालत ज्यों-की-त्यों फटीचर वनाये वैठा है। टाइपराइटर रखने की सलाह, इसी के वेटे कांता वावू ने दी थी, मगर जवाब क्या देता है कि 'वेटे, यह टाटा-विड़ला का अखवार नहीं, स्वतंत्रता संग्राम और गांधी जी के विचारों का संवाहक सेवक है। इसके कार्यालय में तड़क-भड़क की नहीं, सच्चाई और सिद्धांतों के लिए संघर्ष करने की कृतसंकल्पता की जरूरत है!' आज फिर मुझे शांति-पाठ सुना रहा था। मैंने भी कान वहरे कर लिये। आखिर खिसियाकर, अपनी कुर्सी पर चला गया। सचाई के लिये कृतसंकल्प है, मगर लोगों के खिलाफ झूठी अफवाहे दूसरों से नकल कराता है।"

"इस वगुला भगत के लिये, पंडित जी, 'स्वदेश' अखवार तो भैंस का मरा पड़वा है। खाल में भूसा भरके सुखाकर रखे हुए है। काँग्रेसी हुकूमत को दुह रहा है। वात मे हमसे भी 'माँगीलाल जी,' कहके पुकारता है। सुनकर कानों मे तकलीफ होती है। आप 'अरे माँगीलाल' कहकर पुकारते है, तू करके वात करते है, तो भी भला ही लगता है। एक और कम्पोजीटर ढूंढने को कह रहा था। 'उत्तरांचल' से निकले हरिवल्लभ से मैंने कहा, तो हँसते हुए कहने लगा कि 'वैद्यों ने मुझे सफेद कोढ़ से वचने की राय दी है।'....देखियेगा, एक-न-एक दिन इसकी सफेदी उड़ेगी जरूर!"

चाय पीकर दोनों साथ-साथ वापस लौटे, तो विश्ववंधु जी ने कहा—"माँगीलाल, जो कागज अभी मैंने तुम्हे दिया था, वापस दो तो।"

"क्यों पंडित जी?"

'अरे, तुम दो तो' कहते हुए, विश्ववंधु जी ने कागज माँगा और

टुकड़े करके, एक ओर फेंक दिया। बोले—"पूछे तो तुम कह देना, पंडित जी ने फाड़ दिया। आगे से इस तरह की झूठी अफवाहें, या तो खुद लिखे, या दूसरा कोई मजबूरी का मारा ढूंढे। बहुत हो चुका।"

'बहुत हो चुका।' कहते-कहते, मांगीलाल ने देखा, उनकी आंखें करुणा से भर आई हैं और चश्मा आंखों पर से ऊपर उठाते हुए, उन्होंने कुरते का छोर ऊपर कर लिया है।

● ●

२१

राय साहब की कोठी से थोड़ा पहले भैंसों के रास्ते में आ खड़ी होने के कारण रिक्शे वाले को थोड़ा रुक जाना पड़ा।

शारदा पंडित हाथ में थमी छड़ी से ठीक सामने खड़ी हो गई भैंस की पीठ पर प्रहार करने वाले ही थे कि ध्यानी पनवाड़ी की आवाज ने उनके हाथ को हवा में ही टाँग दिया।

"पाँवलागी पंडित जी ! सरकार, इतनी मोटी घास कहाँ खाती है भैंसें ? आपसे मैं कहता रहता था, हजूर, कि कुछ इस गरीब पर भी दया करें। अब अपनी आँखों से देख लीजिए इन भैंसों की हालत। खेती-बाड़ी यहाँ अपनी बैंगन-भिण्डी बोने-भर को नहीं। घास मोल की बयालिस रुपए कुंटल में दुर्लभ हो गई। दूध की शुद्धता नापने वाले इंसपेक्टर लकड़बग्घे की जैसी छलांग मारते हैं, दूध की बाल्टियाँ ले जाते मेरे बेटे या घरवाली पर ! और भैंसों की हालत ये है कि शुद्ध दूध की भली चलाई, सरकार, घास-दाने के बिना शुद्ध मूतना बंद होने की नौबत आ गई है।""मालिक, ये देखिये,"—कहते हुए, ध्यानी ठाकुर ने भैंस के एक थन को अंगुलियों से चिमटी की तरह पकडकर, 'थन खाल से लग गये है, सरकार !' कहा, तो दूध की धार रिक्शेवाले के कपड़ों पर जा गिरी।

"भाबर-तराई मे कहीं दस-पाँच बीघे जमीन भी मिल जाती, तो गरीब के बच्चों का जीना हो जाता। कहीं विपिन बाबू के इर्द-गिर्द की भाड़ा फिरने-भर को भी जमीन मिल जाती—वहाँ चरी बो देते। दाने-भसे का अकाल न रहता। पहाड़ की खेती बकरी की लेंडी, देश की खेती

हाथी का हगना !···और मोहनिया की महतारी को परसूत की बीमारी अलग से है। इस हिमानी शहर की ठंड से मरने से बच जाती, चार महीने सर्दियों में तराई के घाम ताप लेती—आपके कुँवरों को दुआ देती गरीब ठकुरानी, सरकार ! क्या करें, कलजुग का प्रभाव है। ब्राह्मण देवता के आगे ठकुर हाथ फैलाये खड़े रहने लगे हैं। लाज रख लेंगे।"

अपनी बात पूरी करते ध्यानी ने भैंस का गला खुजलाना छोड़कर, दोनों हाथ जोड़ दिये और 'अच्छा, महाराज, पावलागी !' कहते हुए, रिक्शे पर रखे उनके पाँवों के काफी नजदीक तक अपने जुड़े हाथों को किया और 'चल गौरी, चल भागी !' कहते, भैंसों को एक किनारे बढ़ा लिया।

राय साहब अपनी बैठक में नहीं थे। नौकर ने देखा, तो प्रणाम किया और 'साहब अभी 'बेडरूम' में ही हैं', कहता—अंदर चला गया।

शारदा पंडित को उन्होंने अपने सोने के कमरे मे ही बुला लिया। रात, शायद, ज्यादा पी गए थे—आँखों के नीचे के गढ़े इस वक्त ज्यादा स्याह और गहरे प्रतीत हो रहे थे।

शारदा पंडित ने बातचीत की शुरुआत ही यों की कि 'राय साहब, जूते मे कील निकल आई हो, तो घर से बाहर कदम रखने से पहले ही उसे ठोंककर, अपनी जगह कर देना चाहिए। हरामी तो ध्यानी पनवाड़ी भी है। खैर, कुछ जातीय 'जेलसी' भी होती है। आप दोनों आपस में दूर के बिरादर लगते हैं, शायद ? अब ध्यानी ठाकुर को ये लगता होगा कि कहाँ वह दिन-भर 'कमोड' में जैसा बैठा रहता है, और हर पान खाने वाले को 'जैहिंद-प्रणाम' से बाँधने की जरूरत महसूस करता है, ताकि मिश्रा पनवाड़ी के यहाँ ही सारी ग्राहकी न जा पड़े—और कहाँ आप ! अपने तप, संघर्ष और कानूनी दिमाग के चलते आपने अपने को कहाँ स्थापित कर लिया ! उस जमाने में रायसाहबी और अब नगरपालिका

की चेयरमैनी तो आपकी शख्सियत के आगे पाँवों के पास पड़ी प्लास्टिक की चप्पलें मालूम पड़ती हैं।"

"हम खसियों में तो एक-दूसरे को खाता-पीता देखने की वृत्ति ही नहीं है, पंडित जी!" कहते हुए, राय साहव थोड़ा और ऊँचे होकर, दीवार के साथ तकिया लगाए बैठ गये—"अरे, भई, रामप्रसाद! पंडित जी के लिए चाय-नाश्ता लाओ।....मगर, पंडित जी, ध्यानी पनवाड़ी तो सड़क पर का कंकर है, उस पर घन चलाने की कौन जरूरत है? जरा-सा डामर डालते ही बैठ जावेगा?"

"उसकी वात मैं भी नहीं कर रहा, राय साहव! उसके साथ तो वलि के बकरे के मुंह में हरी घास कर देने से काम चल जाता है। वक्त पर वह काम भी आता है। मैंने एक दिन उसको यों ही उचका दिया कि श्यामू कामरेड सरदार की दुकान में लोगों को वता रहा था कि वावा तुलसीदास ने अपने 'मानस' में ध्यानी पनवाड़ी के वारे में भी वहुत-कुछ लिखा है।'....मुंह वाये पूछने लगा कि 'क्या लिखा है कह रहा था लाल-पोकिया बन्दर?' तो मैंने खेदजनक तरीके से कह दिया कि 'जिन चौपाइयों का वह सस्वर पाठ कर रहा था, लोगों मे—मैं खुद तुमको एकांत में पढ़ने की सलाह देते भी दुख ही अनुभव करूँगा।' वहुत जोर देने लगा, तो मैंने कहा कि शुरुआत, सुना है, उसने इस चौपाई से की थी—**'बंदौ खल जस शेष सरोषा। सहस वदन बरनै परदोषा॥'** रामायण-पाठ तो करता है, समझ गया, कि खल-वंदना का प्रसंग है। तवसे वह केतु की तरह लगा है कामरेड के वच्चे के पीछे।....अव उस दिन जो उस लोफर को लड़कों ने घर तक दौड़ा लिया, दरअसल वह 'आइडिया' भी इसी ध्यानी का दिया हुआ था। अभी भी उसमें और अमल होना वाकी है। मैं यथोचित अवसर की तलाश में हूँ।"—कहते हुए शारदा पंडित इज़ीचेयर पर ठीक से पसर गए—"मैं तो उस कामरेड के वच्चे की वात कर रहा था। इस तरह के खतरनाक और असामाजिक तत्वों को शहर में पनपने देना अपनी खोपड़ी पर काँस उगाना है!"

"क्यों, लखनऊ से क्या होना है, कुछ सुराग लगा या नहीं ? इस साले डी० आई० आर० पर जब अमल नहीं होना है, तो संविधान के पोथडे पर रखे रहने से क्या होता है ? ये सुरक्षा-कानून इस राष्ट्रीय संकट की घडी मे इन राष्ट्रद्रोही तत्वों के नही, तो आखिर क्या हम लोगों के खिलाफ इस्तेमाल होंगे ? शास्त्री जी क्या जानते नहीं है कि आज जो इस मुल्क पर इतना अभूतपूर्व संकट आ गया है, यह सब कामरेड कृष्णा मेनन के विदेश मंत्री के पद पर होने की बदौलत ही आया है। ये कम्यूनिस्ट लोग तो हमेशा इस मुल्क के साथ दगाबाजी करते आ रहे है।"

"दरअसल दिक्कत ये पड़ गई कि सी० आई० डी०-इन्क्वायरी इस ससुरे की हो गई और फाइल पर इंस्पेक्टर जोशी ने शायद, यह नोट लगाकर भेज दिया कि 'कम्यूनिस्ट पार्टी या एक्टीविटीज में संलग्न होने की कोई पुष्टि नही हो सकी है।' आज मैं भइया जी के पास जाने वाला हूँ। उनसे बातचीत करके एसेम्बली मे 'क्वैश्चन' उठवाऊँगा। मैंने दो चीजे, जिन्दगी में कभी न छोड़ीं। एक यह जनेऊ और दूसरा, हाथ में लिया संकल्प ! इस काँटे को मुझे हर कीमत पर निकाल फेंकना है। मेरा ख्याल है, रायसाहब, भइया जी और आप लोग इसे पूरी तवज्जो दे नही रहे है। उस लोफर की आँखों और चेहरे की बनावट को आप लोगों ने शायद, गौर से देखा नही कभी ? सिर्फ उसका बल्लम की नोक की तरह चुभनेवाला तेवर ही देखा है। आप जरा इस बात पर गौर कीजिए कि इस शहर में, इस पूरे जिले मे—इस पूरे प्राविंस में है कोई माई का लाल, जो आपकी कोठी के दरवाजे पर आपको अमेरिकन एजेन्ट कहकर गाली दे और ठसके से चलता, अपने डेरे पर वापस पहुँच जाय ? अभी उसकी जड़ें ज्यादा गहरे नहीं गई है, मगर अब वह घर में तुलसी बो चुका है। बस, अभी और यहीं—यही वक्त है कि उसे पूरा जोर लगाकर उखाड़ फेंकना है। चाणक्य ने काँस उखाड़कर जड़ों में मठा ऐसे ही नहीं डाला था। आप तो खुद कानूनदां और विधि-विधान-पारंगत व्यक्ति है। अब मेरी आत्मा लगातार यह आवाज देने लगी है कि शारदा पंडित, काँस उग गई है ! कांस उग गई है !....आप लोग देख

लीजिये गा—हो सकता है, तव तक मैं न रहूँ—मगर यह लेनिन-मार्क्स का भुटकेला[1] इस जिले के त्यागी-तपस्वी गाँधी-नेहरू युग की विभूतियों की कब्र खोदकर रख देगा ! इसने, आप लोग देखते नही, कैसे अपने खुद के वंश को त्याग दिया है ? ऐसे वंश-भ्रष्ट लोग जल्दी ही खुद नष्ट न हो गये, तो आगे चलकर दूसरों के लिए खतरा वन जाते है । नही तो होटल चलाने वालों के खानदान में यह समाज और देश का ठेकेदार कहाँ पैदा हो गया ? अभी आप क्या देखते हैं । अभी तो उसकी हालत यह है कि वीड़ी भी पूरे बण्डल की जगह, फुटकर खरीदता देखा गया है और तव वो चोट्टा हम लोगों को गाँधी युग की सड़ांव कहता फिरता है ।...अगर कहीं उसकी माली तन्दुरुस्ती कुछ सुधर गई, प्रेस मे टाइप भर गया, ट्रेडिल मशीन लग गई और अखवार 'रेग्यूलर' निकालने की हालत में वह आ गया—ये सारे परमिट-लाइसेंस, जो हमे इतनी वड़ी लम्वी कुरवानियों के वाद अपना बुढ़ापा थोड़ा-सा चैन से काट पाने की उम्मीदों में वनाये रखते है—ये सव दुस्वार हो जायेंगे । हम लोगों की वह ऐसी मूर्तियाँ गढ़ देगा कि राह चलते लोग 'राय साहव, प्रणाम ! पंडित जी, पाँवलागी !' कहने की जगह आपस में कानाफूसी करने लगेंगे । जनता वहुत हरामी किस्म की चीज होती है । स्वराज्य-आन्दोलन से लेकर, इस चाइनीज वार तक—हम लोगों ने जनता की एक-एक नस देख ली है । इसे सिर्फ हँकवारा चाहिए ।"

"कही 'प्लेन्स' की तरफ होता, तो ठिकाने लगवा दिया होता वहाँ के लोगों ने ! एक तो यह पहाड़ और दूसरे हम लोग अपनी गाँधीवादी विचार-धाराओं के हाथों वँधे हुए । जी में तो उसी दिन आया था कि वैठक की दीवार पर से राइफिल उतारूँ और दाग दूँ—एक मील तक मार करती है !...मगर फिर हाथ रोक लिए । वापू की तस्वीर देखते ही, पुराने युग मे भटक गया । आपने कुछ और सोचा है ?"

---

१. नाजायज़ संतति ।

"भइया जी वाली बात तो मैंने बताई ही आपको ? देखना ये है कि अब एम० एल० ए०, एम० पी—राय की बात गवर्नमेन्ट कैसे ठुकराती है। इसकी माली नाकेबन्दी भी करनी है। जानवर का घेरा चारों तरफ से मजबूत करना चाहिए। उसके लाल अखबार का पहले तो कम्पोज होन' मुश्किल है। हो भी गया, तो इस शहर में तो कोई छापेगा नहीं, इतन इंतजाम मैंने कर लिया है। छपाई की मशीनों वाले कुल दो ही प्रेस तो हैं यहाँ। बाकी ये करना है कि उसे एडवरटिजमेन्ट कहीं से न मिलने पावें। बाजार में राशन-पानी उधार न मिलने पाये। लोगों के दिमाग में ये चीज गोदना बना दी जाय कि इस निहंग से दोस्ती का मतलब शहर के सारे सभ्य और बड़े लोगों की आंख में बुरा बन जाना है। इसका तो पोखर-घिराव करके, निकलने को जल नहीं छोड़ना है। फौजदारी, खून-खराबे छोटे लोगों के लिए है। यह हम सभ्य लोगों को शोभा देने वाला काम नहीं है। मान लीजिए, उन लड़कों ने उसे मार-पीट भी दिया होता, तो 'स्वदेश' के ताजा 'इश्यू' में शहर में इस तरह की हिंसात्मक वारदातों की निंदा ही तो हम करते !"

शारदा पंडित का पूरा चेहरा एक खास तरह की दिव्यानुभूति से भर गया।

"आपके चेहरे पर ये चमक तभी आती है, पंडित जी, जब आप मंजिल के करीब पहुँचने को होते है !" कहते, राय साहब लुंगी समेटते उठ खड़े हुए—"जरा बाथरूम हो आऊँ।"

शारदा पंडित ने लक्ष किया कि चलने मे संतुलन नही है।

बाथरूम में राय साहब इतनी देर रह गये कि तब तक मे शारदा पंडित ने चाय-हलवे के नाश्ते को निबटा भी लिया।

राय साहब के लिए नौकर नीबू की चाय ले आया था, मगर वह ठंडी पड़ चुकी, तो वापस उठा ले गया। लगभग आधा घंटे-बाद राय साहब कमरे मे आये, तो शारदा पंडित ने यह कहते हुए विदा ली कि—

"राय साहब, सेहत का थोड़ा ध्यान रखा करें। 'शरीरमिदं खलु धर्मसाधनम्' कहा गया है शास्त्रों में।'

राय साहब थोड़ा हाँफ रहे थे। हँसने की कोशिश में आँखों पर जोर पड़ता मालूम पड़ने लगा। किसी तरह कहा—"आपके लिए पान मँगवाए जाँय।"

"नहीं, अब रास्ते में लेता निकल जाऊँगा। राजा मुनुवा ने वक्त से पहले ही अपना हाथ खींच लिया। मैं चाहता था, उसे पहले चुनाव में खड़ा किया जाय और फिर पार्वती बहन जी के पक्ष में बिठा दिया जाय—इससे साख बढ़ेगी, मगर बहुत चालाक आदमी है। इसके बाप में इतनी अक्ल नहीं थी।" कहते हुए शारदा पंडित बाहर निकल आये और अभी रिक्शे के लिए इधर-उधर नजर दौड़ा ही रहे थे कि एम० पी० रामरतन जी कार में आते दिख गये।

इधर इनके हाथ उठे और कार रुक गई। अभिवादन, कुशल-मंगल की औपचारिकता पूरी होते ही शारदा पंडित बोले—"बड़ी लम्बी उमर है आपकी। अभी-अभी रायसाहब के यहाँ, बस, आपका जिक्र करते-करते बाहर निकला हूँ। मुझे आपकी तरफ आना भी था।"

एम० पी० साहब के इशारा करते ही ड्राइवर ने बायीं ओर झुकते हुए कार का दरवाजा खोल दिया।

रामरतन भट्ट बोले—"चलिए, साथ चले चलें।"

बिना उस तरफ झाँके ही शारदा पंडित ने महसूस किया कि ध्यानी पनवाड़ी ने उन्हें एम० पी० साहब की कार में बैठते देख लिया होगा। उनकी आँखों के सामने सुबह रिक्शे के सामने भैंसों के आ खड़े होने का दृश्य फिर से साकार होने लगा और उन्होंने तुरत केन्द्र की राजनैतिक गति-विधियों के बारे में समाचार जानने के बहाने अपना रुख, पूरी तरह, एम० पी० साहब की तरफ कर लिया।

केन्द्र की राजनीति पर वार्ता के दौरान शारदा पंडित की तेज आंखें लगातार यह लक्ष्य करती रही कि 'नेशनल फण्ड में कलेक्शन कैसा हो रहा है ?' वाला भाव एम० पी० साहब के चेहरे पर बार-बार मक्खी की तरह आ बैठता है, मगर उन्होंने तय कर लिया कि इस सिलसिले में बातें सर्किट हाउस पहुँच जाने के बाद ही करेंगे।

● ●

२२

आज वह शहर की ओर नहीं निकला था।

शाम के पहले-पहले निकलने का निश्चय करने के बाद, लिखने का मन बनाया और पहले देर तक शीर्षक सोचता रहा और अब तीन-चार फुलस्केप कागजों पर अलग-अलग लिखावटों में 'उसकी वापसी' लिखकर, उसने पहला पृष्ठ शुरू किया था कि फाटक के खुलने का स्वर 'कॉलबेल' के बजने की तरह उस तक पहुँचा।

खैर, इस वक्त तो श्रीमती मैठाणी की कालेज से वापसी यों भी उसके इर्द-गिर्द पालतू बिल्ली के से चक्कर काटती होती है।

वह बारामदे में दरी बिछाये बैठा था। अकेली श्रीमती मैठाणी होती है, तब वह जिस तेजी से अपनी आँखों को बाँहे फैलाने की सी मुद्रा में कर लेता है, हो नहीं पाया।

उनके साथ मे गीता पाल थीं। उसने गीता पाल के 'नमस्कार' की मुद्रा में जुड़े हाथ, लेकिन निःशब्द होठों के जवाब मे अपने चेहरे पर शिष्टाचार और आत्मीयता का भाव लाने की कोशिश की जरूर, मगर संकोच में आँखों का झिपना दूसरों को भी दिख गया होगा, यह उसने साफ महसूस कर लिया।

श्रीमती मैठाणी के शरारती बच्चों की सी उत्फुल्लता में हो आने ने उसे और हतप्रभ कर दिया।

हाथ में थमी फाइल अपने कमरे की ओर ले जाती हुई, श्रीमती मैठाणी बोलीं—"बहुत अच्छा मुहूर्त्त हुआ है, राजशेखर! अभी शायद, तुमने पहला

हो पेज शुरू किया है, कि पैरेलल हिरोइन साक्षात् सामने आ खड़ी हुई है! ....अच्छा, तुम लोग यहाँ ठहरो, मैं जरा चेंज कर लूं।" उनके कपड़े बदल-कर वापस बरामदे में आने तक भी उनमें निहायत औपचारिक किस्म की छोटी बातों के अलावा वार्ता का ऐसा कोई सिलसिला बन ही नहीं पाया कि उनके बीच बादल की तरह छा गया भीतरी सन्नाटा टूटता।

श्रीमती मैठाणी बरामदे में निकलने के बाद, उन दोनों की तरफ आने की जगह, रसोईघर की दिशा में मुड़ गईं।

अभी गीता पाल ने अंतरगता में हो सकने की सी कोशिश में 'मैं कल शाम भी आई थी, ममी ने, शायद, बताया हो आपको? लेकिन आप लोग तो शायद अँधेरा होने तक घूमते रहे जंगलों में? इधर क्या आपने कोई 'नावेल' लिखना शुरू किया है?'—जैसे कुछ वाक्य पेन्सिल-स्कैच बनाने की सी तन्मयता मे होते हुए कहे ही थे कि श्रीमती मैठाणी ने पुकार लिया —"गीता, तुम यहाँ चली आओ।"

वह एक नजर उसे देखती, उठकर, चली गई, तो उसे लगा कि गीता का गाढ़े धानी रंग की शेफान साड़ी और पूरी बाँह के सफेद ब्लाउज में होना, कुछ क्षणों के लिये, दरी पर जहाँ वह घुटने तिरछे किये मॉडल की सी मानसिक तैयारी में बैठी थी—छाया की तरह बना रह गया है।

श्रीमती मैठाणी ने उसे बैठने को लकड़ी की छोटी चौकी दे दी।

बोलीं—"तुम्हारे कपड़े खराब हो जायेंगे, गीता! यही बैठी-बैठी नाश्ता तैयार करवाने मे मेरी कुछ मदद कर दो।"

"ममी, आपने मुझे पैरेलल हिरोइन' क्यों कह दिया? आप सचमुच बहुत शरारती है!"—उसकी आँखों का भिचना चेहरे की त्वचा पर उतर आया।

"देखो, गीता! शरारत तुम करने लगी हो। जैसे वह गधा मुझे 'ममी'—कहकर पुकारता है, वैसे ही तुम भी मुझे जीते जी 'ममी' बना

देने मे लगी हो ! ....यों मेरी प्रार्थना सुनने वाला कोई होता, तो मैं यही इच्छा जाहिर करती कि वस, जैसी-कुछ इन दिनों मैं हूँ, ठीक ऐसे ही, अनंतकाल तक के लिये दफन कर दो मुझे !"

हालाँकि वो डिब्बे में से वेसन निकाल रही थीं, फिर भी, एक पल को आँखों को मूंद लिया उन्होंने। वोलीं—"जब मैं ये सोचने लगी थी कि वस, अब यह अकेलापन श्मशान तक साथ रहने वाला है, तव यह सब सपने में देखे हुए की तरह सामने फैल गया है। ....होता क्या है, गीता, कि एक खास किस्म की जिंदगी जीते हुए हम एक खास किस्म की मानसिकता के आदी होते जाते हैं और फिर जब तक अपनी मानसिकता में हिस्सा वँटा सकने-लायक कोई मिले नहीं, साथ वन नहीं पाता। तुमने भी अच्छा-खासा तूफान-भरा वक्त विताया है और तुम महसूस करती होगी कि तूफान के गुजर चुकने के वाद का सन्नाटा जिंदगी-भर हमारे भीतर वना रह जाता है। जाने कितने दिनों तक इस ख्वाव मे रह पाना है।"

"राजशेखर को तो चाहिए कि आपको सामने विठा लें और डिक्टेशन लेते चले जायें—वहुत खूबसूरत किताव वन जायेगी ! ....आप, मम्मी, सचमुच कितनी अच्छी भाषा वोलती हैं।"

"अरे, यार, 'ममी' ही कहा करो ! अब वही अच्छा लगने लगा।.... और जहाँ तक भाषा का सवाल है, उन तमाम लोगों के भीतर यह सड़क की तरह वनती, साथ देती चली जाती है, जो जिंदगी को अपनी पूरी सेंसिविलिटी और जील के साथ जीते हैं और अपने-आप से खुद ही वातें कर सकने का शऊर पैदा कर लेते हैं। कभी मैं तुम्हे फादर परांजपे से मिलाऊँगी। तव तुम देखना कि उस आदमी का खामोश रहना भी कितना वोलता है।"

"वो पैरेलल हिरोइन वाली वात छूट ही गई। गनीमत है कि आपने मुझे एण्टी-हिरोइन या वैम्प नहीं कह दिया, ममी !"

इस वार गीता पाल ने 'ममी' पर खुद जोर दिया और हँस पड़ी।

"अच्छा, सुनने का सुख लेना चाहती हो ? वात ये है, गीता, कि

कल वह भबरा श्यामलाल भी आया था इसके साथ। बड़ी बातें करता रहा। वह तो देवपुत्र हो गया है। वाणी पा गया है। वह भी कह रहा था कि राजशेखर में, फिक्शन-राइटिंग की जबर्दस्त 'पासिबिलिटी' है। तब बातों ही बातों में शेखर ने बतलाया कि वह फिलहाल एक 'नावेल' लिखने की सोच रहा है। नाम अभी तय नहीं किया, मगर 'थीम' सुनाने लगा। और थीम सिर्फ इतनी-सी है कि एक आदमी एकाएक जिंदगी की दलदल में कुछ इस तरह फँस गया है कि आगे सिवा मौत के कहीं कुछ नहीं। ....और पीछे लौट आना इतना मुश्किल है कि लगता है, वापस होते भी सिर्फ खत्म ही होना है। वह बार-बार इसी नतीजे पर पहुँचता है कि वापस होते हुए खत्म होने की जगह, आगे बढ़कर खत्म होना कम तकलीफ-देह होगा। तभी उसे दलदल के इस छोर पर उगते कुछ लोगों के हाथ दिखाई देने लगते हैं, जो आँधी में इतनी तेजी से हिल रहे होते हैं कि जैसे उसके दलदल में पूरी तरह धँसने के साथ ही वो भी अंतिम रूप से टूट जायेंगे।' और, गीता, सच-सच बताना, बेटी! ....क्या तुम खुद ऐसा महसूस नहीं करतीं कि उनमें दो हाथ तुम्हारे भी हैं?"

श्रीमती मैठाणी ने अपने देख सकने को जैसे उसके सम्पूर्ण अस्तित्व पर छा दिया हो, उसका सारा संकोच ढह गया। बोल उठी—"आपसे कुछ छिपा नहीं रह गया, लेकिन फिलहाल मैं सिर्फ इतना कह सकती हूँ कि राजशेखर को खत्म होते देखने, सुनने या जानने से मैं बुरी तरह डरने लगी हूँ। मुझे जाने क्यों महसूस होने लगा है कि जोशी को 'सुसाइड कमिट' कर लेने के पागलपन से बचाने के लिये मैं अपने औरत होने का पूरा-पूरा उपयोग कर नहीं पाई। ....और मैं यह बात आप से कह सकती हूँ—और अभी इसे आप अभी सिर्फ अपने तक ही रखेंगी, राजशेखर को भी न बतायेंगी।—मैं अपनी जिंदगी और अपने औरत होने के साथ 'इक्स-पेरीमेन्ट' करने के फैसले पर पहुँच गई हूँ। मैं इसे अभी राजशेखर से प्यार करने की बात नहीं कह सकती। शादी की बात तो मेरी कल्पना तक में नहीं, क्योंकि इसकी 'प्रैक्टीकल' डिफीकल्टीज' और 'प्रॉब्लम्स' को मैं खुद

बेहतर जानती हूँ। ....दर-असल जहाँ पर मैं हूँ, ऐसी कोई शक्ल वन ही नहीं पाई है कि बतला सकूँ, यह है। अलवत्ता इतना मैं जरूर कबूल कर सकती हूँ कि खास तौर से इन कुछ दिनों में, काफी दुस्साहसी किस्म की औरत होती चली जा रही हूँ मैं। लोकभय-जैसी चीज पहले ही मुझमें बहुत कम थी, अव लगता है—वह खत्म होने पर आ रही है।"

"वात ये है, गीता! जो भी 'लोग क्या कहेंगे' के प्रति कांशस होगा, राजशेखर का साथ दे पाना उसके वस का नहीं। तुम क्या सोचती हो, मुझे कुछ कम वर्दाश्त करना पड़ा है? कॉलेज से लेकर वाजार वालों तक के कहने-सुनने-देखने—सवको कपड़ों पर आ गिरी गर्द की तरह झाड़कर फेंक दिया है, तव इसे अपने साथ रख पाई हूँ। और ये तय है, गीता, कि जिसके लिये हम जोखिम उठायें, अगर वह 'सिसियर' निकल आये, तो जोखिम उठाना तकलीफ नहीं देता, मजवूत करता है। और वहुत सारे लोगों से बेहतर होने का संतोष देता है।"

"देखिये पकौड़ियाँ, शायद, हो चलीं।" —कहते हुए उसने छोटी तश्तरियों को पोंछना शुरू कर दिया।

"अव आदमी अपने वहुत भीतर चल पड़ता है, तो वापसी में वक्त लगता है, गीता!"

"आपने गौर नहीं किया अभी! राजशेखर ने अपने 'नावेल' का नाम-करण कर लिया है। मैंने चुपके से पढ़ लिया था।"

"क्या रखा है?"

'वा-प-सी'—एक-एक अक्षर को अलग-अलग वोलती, गीता पाल विनोद-भाव से हँस पड़ी और उसने महसूस किया कि वह प्रयत्न करके ही इतना जोर देकर हँस पाई है कि वारामदे में वैठे राजशेखर तक भी पहुँच सके।

"मैं तुमसे सिर्फ इतना कहना चाहती हूँ, यह वहुत ही सिंसियर लड़का है। मैंने बहुत नजदीक से, और करीब से इसे देखा है। मीना को दिये अपने प्रेम से यह खुद जरूर बेहतर बन गया है। अभी यह पूरी तौर पर अपने 'मेन्टल डिस्टॉर्शन' में से उवरा नहीं है, गीता! ....मगर ये त

यह लड़का इस दलदल से पूरी तरह बाहर निकल आया, तो जिसने भी इसके लिए कुछ जोखिम उठाया होगा, इसे अपनी मुहब्बत दी होगी, वह सन्तोष और गर्व महसूस कर सकेगा। मैं तो, शायद, इतने लम्बे वक्त तक जिंदा न रहूँ, मगर जिनके सामने अभी जिन्दगी का लम्बा सफर तय करने को बचा है...."

वो रोकना चाहती थी, मगर कुछ बूँदें टप्-टप् गिर गईं।

"आपके संतति नहो, ममी ! मगर सचमुच आपने एक महान् माँ का हृदय पाया है। मैं महसूस कर रही हूँ कि राजशेखर बहुत सौभाग्यशाली है, जो आप तक पहुँच गए।"

"तुम लोगों का प्यार मुझ बुढ़िया को गाफिल न कर डाले। मैं तो इसे सिर्फ संजोग कहना चाहूँगी। पहले चंद्रशेखर के साथ और बाद में कभी अकेले, कभी फादर परांजपे के साथ जंगल के एकांतों मे बहुत घूमी हूँ। बहुत ज्यादा। मुझे प्रकृति माँ लगती चली गई है। जंगल के सोतों का जल पीते जाने मुझे क्यों माँ का दूध पीने की अनुभूति होने लगती है। प्रकृति जड़ नही है, गीता ! ....और प्रकृति में सिर्फ पेड़-पौदे, जंगल-पहाड़, नदियाँ-नाले और हवा-पानी ही नही हैं—कुछ और भी है, जो हमसे भी बेहतर देखता है। हमसे कही अनंत बेहतर चीजों को रचता है। जो अपने जीवन को इस सबसे जोड़ नही पाते, उन्हे यह सब न महसूस हो सकता है और न दिख सकता है। हाय, मैं तो बोलते-बोलते फादर परांजपे होने लगी। अभी परसों-नरसों गई थी, तो उनके पास इलाहाबाद की कोई मिसेज खोसला बैठी हुई थी। वह भी, शायद, कभी पहले यहाँ के सन्त मेरी कानवेन्ट में पढ चुकी है। बुड्ढा ऐसे देख रहा था उसे, जैसे च्यवन-प्राश खाता जा रहा हो ! च्यवन ऋषि और अश्विनी कुमारों वाली 'मॉय-थोलॉजिकल स्टोरी' तो तुमने पढ़ ही रखी होगी ?"

"मगर, ममी, ये पुरुष शास्त्रकारों की ज्यादती ही तो है ना ? वेद-ऋषि और राजा ययाति को तो बुड्ढे से जवान

बनाया, मगर किसी औरत को बुढ़िया से जवान बनाने की 'कट्‌सी' उनमें नहीं बरती गई !"

गीतापाल इस बार और भी जोर से हँस पड़ी। बोली—"मैं कोई 'मॉयथोलाजिकल' किताब लिखूँगी, ममी, तो उसमें आपको बुढ़िया से जवान होते दिखाऊँगी—और उस 'टॉनिक' का नाम रखूँगी—शेखरप्राश !... आपके उनके, बल्कि कहूँ कि बाबू जी के नाम के अंत में भी तो शेखर ही था ना ?"

इस बार, श्रीमती मैठाणी ने, हँसने के साथ-साथ इतने जोर की धौल उसकी पीठ पर जमाई कि उसकी आँखों में सुइयाँ-सी चुभ गईं। दर्द तो कुछ ही क्षणों में सिमटकर, खत्म हो गया, मगर हृदय की अतल गहराइयों में से किया हुआ स्पर्श और श्रीमती मैठाणी का अपने तारुण्य की स्मृति में हो आना देर तक बना रहा।

श्रीमती मैठाणी चायदानी में चाय छानती बोलीं—"भाई तुम्हारी जानकारी के लिये बता दूँ—व्यास जी ने 'भागवत' में कुब्जा सुन्दरी के भगवान् कृष्ण-द्वारा उद्धार की कथा बड़े विस्तार से रसिक भाव से बताई है। तुम्हें सुनाऊँ, तो शर्म के मारे कहीं भाग न खड़ी होओ। सुनो, कुछ प्रसंग।"

वह श्रीमती मैठाणी के जीवंत हो आये चेहरे को देखती रह गई। श्रीमती मैठाणी अपनी स्मृति पर जोर देती, गुनगुनाने लगीं—"पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदेद्व्यङ्गुल्युत्तान पाणिना। प्रगृह्य चुबुकेऽध्यात्ममुद्‌नीनम मदच्युतः। सा तदर्जुस मानाङ्गी बृहच्छ्रोणीय पयोधरा।...और फिर 'सानङ्ग तप्त कुचयो सरसस् तथाक्ष्णो जिघ्रन्त्यनन्त चरणेन रुजो मृजन्ती। दोर्भ्यां स्तनान्तर्गतं परिरम्भ कान्तमानन्द'...बड़ा विशद वर्णन है, सुन्दरी की जा चुकी कुब्जा का ! कभी भागवत के अड़तालीसवें अध्याय को पढ़ लेना। तुम तो, शायद, संस्कृत पढ़ाती भी हो ?"

"जी हाँ।...मगर, ममी, कुब्जा के कुबड़ी होने की बात तो जरूर है, श्रीमद्भागवत में—मगर आपकी तरह बुढ़िया होने का संकेत नहीं है न ?"

"महाबदमाश है तू। चल चाय-नाश्ता ले चल। बारामदे में ही मजा आयेगा।"

चाय-नाश्ता खत्म होने तक, किसी यात्रा में जाने की तैयारी करती-सी दिखती रही दोनों। कुछ ही देर-बाद, श्रीमती मैठाणी बोलीं—"मैं तो बहुत थक गई, राजशेखर! जरा गीता को थोड़ी दूर तक छोड़ आ।"

फाटक पार करके, श्रीमती मैठाणी की आँखों की पहुँच से दूर होते ही गीता पाल ने धीमे से पूछ लिया—"आप वापसी की जल्दी में तो नहीं ?"

'वापसी' शब्द को गीता ने जिस तरह जोर देकर कहा वह कुछ क्षण चुप ही रह गया। कुछ देर बाद बोला—"अच्छा, आपने मेरी बेवकूफी-भरी हरकतों को चुपके से देख ही लिया ?"

"आप जल्दी में न हों, तो अभी तो शाम होने में बहुत वक्त है—थोड़ा उधर, सनोवर इस्टेट की तरफ को निकल चलें ? बहुत सुन्दर जगह है। हिमालय की बर्फीली चोटियाँ साफ-साफ दिख जाती हैं। खास-तौर से सर्दी के मौसम में, जबकि आसमान में बादल नहीं होते।"

"आप साड़ियों का रंग हमेशा चेंज करती हैं, मगर ब्लाउज सिर्फ सफेद रंग का पहनती हैं, जबकि आजकल फैशन 'सेम-कलर' का है!"

"कोई खास वजह नहीं। कुछ चीजों की कोई वजह नहीं होती। मैं रंगीन ब्लाउज पहनूँ, तो कुछ 'एलर्जी'-सी होने लगती है। सफेद ब्लाउज, शायद, आदत बन गया है।"

होस्टल के ऊपर से गुजरती सँकरी सड़क पर चलते हुए, गीता पाल ने एकाएक जिस तरह नीचे की ओर झाँका और फिर धीमे से उसका चेहरा परिवर्तित हो आया, वह समझ गया कि कल लड़कों के द्वारा घिराव किये जाने वाली बात, शायद, गीता पाल तक भी पहुँच चुकी है।

उसके चेहरे पर मद्धिम-सी मुस्कुराहट और विषाद की छाया, एक साथ उभर आई।

गीता पाल ने उसमे हुई प्रतिक्रिया को देख लिया और निहायत आत्मीय लहजे में वह कुछ कहने को हुई थी कि वह बोल पड़ा—"गीता जी, प्लीज ! वह सारी चर्चा कत्तई न छेड़ियेगा। बहुत सम्भव है कि उस प्रसंग मे अपने गुस्से और बौखलाहट को दवा ले जाने की जो तकलीफ मेरे भीतर रह गई है, वह मेरी बातों में कड़ुवाहट ले आये। एक बार उत्तेजना में आ जाने के बाद, अपने को 'नार्मल' करते मुझे वक्त लग जाता है।"

"आप ठीक कह रहे है, राजशेखर ! आज हम इन हाल की घटनाओं के सिलसिले मे कोई बात न करेगे। आज हम सिर्फ दो साथियों की तरह प्रकृति के नजदीक अपने को ले जायेंगे। बातें बहुत कम करेंगे। करेंगे भी, तो सिर्फ अपने पहले के जीवन को लेकर। अभी-अभी ममी कह रही थीं कि खामोश रहकर ज्यादा बातें की जा सकती है। यह बात, शायद, उनसे फादर परांजपे ने कही थी।"

सनोवर इस्टेट की हद शुरू होते ही, दोनों लगभग सम्पूर्ण एकांत में हो गये। इक्के-दुक्के कहीं दिख जाते, सामने से गुजर जाते लोग असंलग्न थे।

जाने कब और कैसे बायीं ओर चलती गीता पाल के दाएँ हाथ की उँगलियाँ उसके बायें हाथ की अंगुलियों से छू गई। और जाने कब, और कैसे, उसने गीता पाल की उँगलियों को अपनी उँगलियों में कस लिया।

● ●

२३

कामरेड बिजली-दफ्तर से बाहर निकले ही थे कि सड़क पर उन्हें हरिवल्लभ जाता दिख गया ।

उन्होंने पुकारा, तो वह रुक गया । पहले उसके चेहरे पर कुछ चौंकने और अवसाद का सा भाव आया, फिर वह नमस्कार में हाथ जोड़ता, कामरेड की तरफ चला आया ।

कामरेड ने अब तक मे जेब से बीस रुपए निकाल लिये थे । हरिवल्लभ की जेब में डालते हुए, बोले—"काम न करो, कोई हर्ज नही, मगर आना-जाना बन्द न करो, पंडित ! बहुत लम्बी दोस्ती है हम लोगों की ।"

"मैने तो, वर्मा साहब, एक दिन वो आपके मफलर वाले दोस्त मिले थे....।"

कामरेड धीमे से मुस्कुराये । हाथ में थमा कागज आगे करते बोले—'ये, देखो, बिजली-बिल का भुगतान कर लिया है । कल ही तक मे कनेक्शन ठीक हो जायेगा । 'उत्तरांचल' सिर्फ़ गरीब का ही नही, गरीबों का अखबार भी है, हरी भाई !"

"वो सब मै जानता हूँ, वर्मा साहब सिर्फ पेट की मजबूरी हमको आपसे अलग किये हुए है । फिर भी अगर रोशनी ठीक रही होती, हम 'ओवर टाइम' जरूर करते । जबसे आपके यहाँ काम छूटा, बच्चों का पेट भरने को बोर्ड-दफ्तर की नौकरी हमने पकड़ ली, मगर कही प्रेस का काम नही हो पाया । शारदा पंडित ने माँगीलाल के जरिये बहुत कहलवाया, मगर हमने साफ इन्कार कर दिया । दो दिन सिर्फ कोहली प्रिंटर्स मे गये थे, मगर

कम्पोजिंग करते जायें और आपकी याद आती जाय। घंटे, आध घंटे में आपका वह 'बीड़ी पियोगे, पंडित ! चाय पी लो, पंडित !' कहना, हमारे कानों मे बकरी के गले में बँधी घंटी की तरह बजता जाय....आपसे दूर हो जाने के पछतावे में हम खुद बहुत दुःखी हैं, साहब !" कहते-कहते, हरिबल्लभ की आँखों में आँसू आ गए।

कामरेड ने, जैसे भालू का बच्चा पंजा जमा रहा हो, अपने दायें हाथ की अंगुलियों में हरिबल्लभ के कंधे को कस लिया—"पंडित, तुमने अपने इन थोड़े ही शब्दों से मुझ गरीब को धन्य कर दिया, प्यारे ! मैं पहले भी यही महसूस करता था और अब इस वक्त तो बेझिझक कह सकता हूँ कि मेरा 'उत्तरांचल' निकालने का फितूर फिजूल नहीं गया ! तुम्हारे न आ पाने को लेकर मुझे अपनी तंगदस्ती का अफसोस जरूर रहा है, मगर तुमसे कोई शिकायत नहीं। हम सबको एक-दूसरे की मजबूरियों को समझते चलना चाहिए। अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ इंसान के लिये सबसे पहला और जरूरी फर्ज है। जो इंसान इन्हें नहीं पूरा करता, वह दूसरी और कोई जिम्मेदारी महसूस कर ही नहीं सकता। लेकिन, पंडित, अब तुम कल-परसों दफ्तर से वापसी में किसी वक्त आ जाओ। देख लो, क्या और कितना हो सकता है। मैं नया 'इश्यू' जल्दी निकालना चाहता हूँ। एक-दो कम्पोजीटर और देखो। पार्ट-टाइम काम कर दें। चलो, पहले सरदार के रेस्त्रां में चाय पीते है।"

उन दोनों को साथ देखते ही दिलदार सिंह ने आवाज लगाई—"कामरेड साहब, मालूम देता है, अखबार का 'इश्यू' निकलने का टाइम करीब आ पहुँचा !"

कामरेड घर पहुँचे, तब शेखर बैठा चाय पी रहा था। देखते ही, उसने एक चिट्ठी आगे बढ़ा दी। लिफाफा देखते ही कामरेड बोले—"राजा बच्चा की मालूम पड़ती है।"

पढ़ना खत्म कर चुकने पर बोले—"चले चलो तो हर्ज क्या है।"

"जरूर चले जाइये। नम्र लोग संसार में बहुत थोड़े है। चिट्ठी में तो कुँवर ने लिखा है कि आप लोग आने की सूचना भेज दें, तो कार भेज दी जाय, मगर चूंकि आप घर में थे नही, मैंने नौकर को यही कह दिया कि कार भेजने की जरूरत नही।"

"खैर, ये बात तो नही, शेखर! बात का सही पहलू ये है कि जो लोग सभ्यता बरत सकने की सहूलियतों में है, उनमें सचमुच बहुत थोड़े है, जो इंसान रह गये है। .. मुझे अभी-अभी हरिवल्लभ मिला था, शेखर! ....और जितनी मुझे, उससे जरा भी कम तकलीफ उसे नही कि 'उत्तरांचल' का नया इश्यू नहीं निकल पा रहा।....मगर वह मजबूर है। इस पूंजीवादी व्यवस्था में सचमुच बहुत कम लोग इस सहूलियत में है कि अपनी अच्छाई, अपने प्रेम और अपनी इंसानियत को दूसरो के साथ बरत सकें। खुद को, खुद के परिवार को तबाही और संकटों से बचाये रख सकने का 'स्ट्रगल' इस तरह लाद दिया गया है सारी समाजी जिंदगी पर कि लोगों को एक-दूसरे के दुख-सुख मे शामिल हो सकने का अवसर ही नही रह गया है। तुम कहोगे कि घर मे कदम रखते ही शुरू हो गये कामरेड दद्दा, मगर मैं तुम्हारे कानों में वह सब-कुछ डालना चाहता हूँ, जो हम दोनों को एक-दूसरे का दायाँ-बायाँ हाथ बना डाले।"

"नहीं, मैं आपके बोलने मे कतई बाधा न डालूंगा, मगर फिलहाल पहले आप चाय पी लीजिए....और, फिर कुँवर साहब के यहाँ को चल पड़िये। मै आपको कोठी के रास्ते तक छोड़ता आऊं। और इसी बीच आपके 'दस जरथुस्त्रा सेज' से भी निबट लूंगा।"

"उड़ा लो मजाक, कामरेड!....मगर एक दिन, लेकिन सिर्फ तब, जब तुम एक सही और जिम्मेदार लेखक होने के संघर्ष में पूरी तरह उतरोगे—तुमको अपने समाज की सारी हकीकतों से रूबरू होना ही पड़ेगा और तब तुम मानोगे कि हाँ, कामरेड दद्दा ने भाड़ नही झोंकी थी। कोशिश की थी। कोशिश की थी कि अपनी समाजी जिंदगी की बनावट और उसकी

वास्तविकताओं को समझ सके, ताकि एक अखबारनवीस की हैसियत से वह जो यह एक मिसाल रखना चाहता है कि अखबारनवीस क्या चीज है, और उसे कैसा होना चाहिये—यह 'इक्जाम्पल' वसीयत में छोड़कर दुनिया से उठे....लाओ, सरो, चाय ले आओ। क्या बताऊँ, यार, आज हरिवल्लभ नाम के मामूली कम्पोजिटर ने मुझे ऐसी मृतसंजीवनी सुरा पिला दी है कि मैं बुरी तरह नशे में हो गया हूँ।....मगर तुम बदमाशी न करना। कुँवर के यहाँ तुम्हें भी चलना है। अकेले मुझे तो बुलाया नहीं।" कहते हुए, चाय के आने और पीने तक मे उन्होंने हरिवल्लभ वाला पूरा प्रसंग दोहरा दिया।

सारा प्रसंग सुनाने में आँखों के आर्द्र हो आने की तरफ उन्होने ध्यान नहीं दिया। कहते रहे—"शेखर, मैंने तुमसे एक दिन—या तुमने मुझसे—यह कहा था ना कि आदमी के भीतर की अच्छाई को देखने से बड़ा सुख इस संसार में और किसी चीज का नहीं ? और यह हरिवल्लभ ने मेरे लिये साबित कर दिया। मैं तुम्हें बताऊँ, दोस्त, कि इतनी खुशी मुझे आज तक न बढ़िया-से-बढ़िया खाने या शराब-ह्विस्की ने दी और न किसी औरत ने। मैं अब दावे के साथ कह सकता हूँ कि इस देश की समाजी जिंदगी के आखिरी तौर पर नष्ट हो जाने का कोई खतरा नही है।.... नही, मैं, आज तुम्हारी हामी का इंतजार नहीं करूँगा। तुम नहीं सुनना चाहोगे, उठकर चले भी जाओगे, तो भी मैं वो सारी बातें कहता ही चला जाऊँगा, जिन्हे मैं खुद सुनना चाहता हूँ।" अपने आखिरी वाक्य पर काफी जोर देने के बाद, कामरेड खुद ही रुक गये। कुछ देर बिल्कुल खामोश रहे, मगर फिर एकाएक उठ खड़े हुए—"सरो, हम चलते हैं। मैं तुम्हारी तकलीफ समझ रहा हूँ। इस बकुवा के यहाँ तुम्हें जी-भर बोल लेनें का अवसर भी नहीं रह गया। मगर मैं तुम्हारा सोचा हुआ भी सुन लेता हूँ। खाना तुम सिर्फ अपने लिये बना लेना। राजा बच्चा बिना भोजन-भजन कराये नही लौटायेगा, ये तय है।"

'बीसवीं' लगातार निकल रहा है और 'उत्तरांचल' पर गर्द जमी पड़ी है, तो इसकी वजह है।...मगर मैंने जो तुमसे कहा कि मैं अपने मुल्क, अपने समाज और खुद अपने-आप से आखिरी तौर पर नाउम्मीद नहीं हूँ, तो इसकी भी वजह है।...और ये वजह है, इस बात को देख पाना कि इस देश की जनता इस पूँजीवादी निजाम की गंदगियों को बर्दाश्त जरूर कर रही है, मगर इस सबको उसने अपने भीतर जमने नहीं दिया है। हरि-वल्लभ-जैसे मामूली, कम पढ़े-लिखे आदमी की भीतरी सतह भी अभी अच्छी चीजों के लिये अपने-आपको खोला रखे हुए है, तो यह सचमुच एक नियामत है।...और मैं समझता हूँ कि जो भी आदमी समाजी जिंदगी की इन भीतरी सतहों तक झाँक पायेगा, उसे जरूर वो चीज दिखाई देगी, जो इंसान और इंसानियत पर आस्था पैदा करती है।"

"आप क्या 'उत्तरांचल' का नाम बदलने जा रहे हैं ?"

"बात ये है, शेखर ! धीरे-धीरे मुझे यह नाम नाकाफी लगता गया है। उससे 'रीजनल' होने की फीलिंग होती है।...और फिर पोस्टल रजिस्ट्रेशन, टी० ए० वी० पी० और कोटावाली सुविधायें तो कब की खतम हो चुकीं। पिछले दो साल से नम्बरों के हिसाब से निकल रहा है। जब नॉनपीरिया-डिकल ही इसे निकालना है—तब कोई भी नाम रखे, फर्क क्या पड़ता है।"

"कोई नया नाम सोचा...."

"हाँ, 'चेतना' रखने की बात तय की है। मेरा यह सपना है कि अपने समाज की कुंद, विघटित और निष्प्रभावी कर दी गई चेतना को दस्तक देने की कोशिश कर सकूँ। मुझे अपने बारे में मुगालता नहीं है, मगर मैं कोशिश इसलिये करना चाहता हूँ कि इससे मैं खुद मुक्त हो पाऊँगा।"

कामरेड उठ खड़े हुए, तो वह भी चल पड़ा—"आप क्या समझते हैं कि नेहरू जी के गुजर जाने से कुछ फर्क पड़ा है ?"

"मैं इस गलतफहमी में अब बिल्कुल नहीं, दोस्त ! इंडिपेंडेन्स के फौरन

बाद से ही इस मुल्क के निजाम को पालिटिकल नहीं, कैपीटल ताकतें चला रही है। प्राइममिनिस्टर या प्रेजीडेन्ट की कुर्सी पर से कौन गुजर जाता है, या कौन उस पर पहुँच जाता है—इससे न इन वनियों को फर्क पड़ता है, न इस देश की जनता को। शहर के थाने पर मियाँ सिद्दीकी रहे, या पंडित हरिहर त्रिपाठी, इससे शहर की वड़ी हस्तियों को क्या फर्क पड़ता है? जो अफसर सिद्धांत वघारने लगेगा, उसका विस्तरा गोल होते ज्यादा वक्त नहीं लगेगा। मेरा ख्याल है, सिद्दीकी मियाँ का तवादला होते भी अब ज्यादा देर नहीं। इस मुल्क की पालियामेन्ट और असेम्वली जो हैं—वहाँ सिर्फ़ भइया जी, रामरतन भट्ट, रायसाहव, साँवरिया लाल और शारदा पंडित—जैसे घाघ लोगों की पहुँच है, क्योंकि हरामखोरों की वदौलत ही इस निजाम ने अपने को मजवूत करते जाना है। नेहरू जी की तुम बात कर रहे थे? उन्होंने भी सारी पंचवर्षी-एकवर्षी योजनायें टाटा-बिड़लाओं को 'प्लानिंग' के मुताविक वनाईं, इस मुल्क की जनता की आर्थिक-सामाजिक मुक्ति की नीयत से नहीं। सामाजिक लूट और उत्पीड़न का यह सिलसिला तब तक खत्म नहीं होना है, जब तक इस मुल्क की सामाजिक चेतना में विप्लव नहीं आना है। हम सबको सिर्फ़ यह बनिया घपले में डाले है। इस मुल्क की इकानामी 'इन्ह्यूमन', एंटी-नेशनल और एंटी-सोशल तत्वों के हाथों में कैद हो गई है। अव इसी चीनी हमले को देखो—मुल्क-भर में बनियों ने अपने-अपने दाढ खोल लिये हैं। मुझे 'चेतना' के इस इश्यू के अपने एडीटोरियल में यही सव देना है और मैं वहुत-कुछ लिख भी चुका हूँ—सिर्फ एक वार फिनिशिंग टच देने की जरूरत है।...खैर, ये सव वातें बहुत हुईं, अब तुम ये वताओ कि तुम्हारा 'नावेल' कहाँ तक पहुँचा....और कहाँ तक पहुँची गीता पाल से तुम्हारी दोस्ती?"

"आप भी, कामरेड दद्दा, स्पुतनिक हो चले हैं। अभी इंकलाव में है—और अगले ही सेकिण्ड में इश्क की दास्तानों में!"

"इश्क इंकलाब से छोटी चीज नहीं, प्यारे! प्रेम मानवी जीवन का सबसे बुनियादी तत्व है। शुद्ध स्त्री-प्रेम की गहराइयों में जाकर भी

लोग प्राणी-मात्र के लिए अपने हृदय में करुणा संजोये वापस लौटे हैं। हिन्दुस्तानी वाङ्मय में तो कालिदास और तुलसीदास-जैसे महानतम कवि इस बात के सबूत हैं। फर्क सिर्फ इतना है, शेखर, कि किसका स्त्री-प्रेम उसे सिर्फ औरतों तक ले जाता है—और किसे वह हरेक इंसान के दुख-दर्द, संघर्ष और सौन्दर्य को देखने और समझ पाने की तमीज तक! 'क्लासिक्स' तुमने भी जरूर पढ़े होंगे। उन्हें पढ़ते सबसे पहले मुझे यह महसूस होता है कि मेरी मुलाकात उस आदमी से होने जा रही है, जो सदियों पहले पैदा हुआ था, मगर फिक्र मेरी भी कर गया है।...तुमने बताया नहीं कि गीता का रुख क्या है?"

"रुख से आपका मतलब?"

"देख, शेखर! कुछ वक्त और बीत चुका। अब मैं तुमसे कुछ बातें साफ कह देना चाहता हूँ। ये ठीक है, गीता तुमसे एकाध साल बड़ी नहीं, तो हम-उम्र जरूर होगी। हम लोगों में अपने से छोटी बीवी के साथ जिन्दगी गुजारने का चलन है और जैसी सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक स्थितियों से हमें गुजरना होता है, उसमें इसका औचित्य भी है।...मगर गीता के मामले में ज्यादा दिक्कत नहीं। हम-उम्र औरत मेरे ख्याल से ज्यादा बेहतर पत्नी साबित हो सकती है।"

"आप तो, कामरेड दद्दा, मैंने कहा न था कि जादूगर हो गये हैं। भाभी क्या आई हैं, जादू की छड़ी आपके हाथ में थमा दी है उन्होंने। आपको किसी भी 'इक्सट्रीम' पर जाते कुछ वक्त ही नहीं लगता?....गीता जी से मामूली-सी जान-पहचान—या ज्यादा से ज्यादा दोस्ती कह लीजिये, ये सब मामूली-सी शुरुआत हुए भी अभी मुश्किल से दस-बारह दिन बीते होंगे, और आपने हम दोनों की शादी भी तय कर दी।...और अब कहीं अगले हफ्ते आपसे मुलाकात हो मेरी, तो तब तक आप, शायद, हम दोनों के दो-चार बच्चे भी पैदा करा चुके होंगे?"

हालांकि उसने गीता वाली बात को शुद्ध मजाक की शक्ल देने की कोशिश की थी, मगर ठहाका लगाते-लगाते ही संजीदा हो जाने से साफ

था कि प्रसंग को लेकर, वह उदासीन नहीं है।

कामरेड कुद कदम तो चुपचाप चलते रहे। शेखर के मजाक में उन्होंने कोई हिस्सा नहीं लिया। दस-पांच कदम चलते ही अपने शब्दों को सड़क पर बाद में चलने वालों की पहचान के लिये बिखेरते जाने की सी मुद्रा में सिर थोड़ा झुकाये-झुकाये बोले—"ठीक उसी दिन, जबकि तुमने मुझसे पहली बार गीता के साथ अपनी बातचीत का जिक्र किया था—मैं तुमसे ज्यादा बातें न कर सका। तुम्हारे सामने आते इस बदलाव को मै 'डिस्टर्ब' नही करना चाहता था। मेरी दिली ख्वाहिश और खुद की कोशिश भी यही थी कि किसी भी बहाने सही मगर तुम अपनी साइकोलॉजिकल क्राइसिस से कुछ बाहर निकलो तो।... और ये तो, खैर, तुम खुद भी महसूस करते होगे कि काफी बदलाव आ गया तुममें। शुरू-शुरू में कैसे जंगल से पकड़कर सींखचों के अंदर कर लिये गये चोते की तरह उछालें लगाते दिखाई पड़ते थे तुम, मगर अब बहुत-कुछ 'टेम्ड' हो।....और अब मै तुमसे कहना चाहता हूँ कि तुम्हारी जो मीना दुबे को लेके दुर्गति हुई, वह सिर्फ इसलिये हुई कि तुमने अपने को उसमें बहुत बुरी तरह 'इन्वाल्व' कर लिया। नही तो, सचाई ये है कि वह सब सिर्फ तुम्हारा इकतरफा जुनून था, क्योंकि 'इन्वाल्वमेण्ट' इकतरफा था। ठीक उसी किस्म के हालात में दूसरा कोई प्रैक्टिकल किस्म का आदमी 'तू न सही और सही' की धुन माउथ-ऑरगन पर निकालता, अपने रास्ते चल देता।....तो, भाई, तुम्हारे इसी चारों खाने चित्त की तरह 'इन्वाल्व' हो जाने की चित्तवृत्ति के बारे में सोचते हुए ही इधर मैं फिर से फिक्र में हो गया हूँ।"

वह सडक पर जूते की टो से कंकर-पत्तों से खेलता चलने लगा था, लेकिन कामरेड की बातों को सुनने और इस बारे में अपना रुख तय करते जाने की तत्परता उसके चलने में मौजूद थी।

"तुम जरा इस बात पर गौर करना कि मेरी इस 'एनेलिसिस' में कुछ दम है या नहीं। पिछली तीन शामे तुमने मेरे साथ नही बिताई हैं

और मैं कह सकता हूं कि सिर्फ 'नावेल' के साथ नहीं बिताई होंगी।.... और सच पूछो तो तुम्हारे इस न आने में ही मुझे यह सब सोचने का मौका मिला।...कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनमें युवावस्था में अपने-आपको दूसरों में 'इन्वाल्व' कर लेने की बेताबी-सी होती है। ऐसे लोग अक्सर शहीदाना अंदाज वाले होते हैं और शहीद हो भी जाते हैं—ये बात दीगर कि कोई इंक़लाब पर शहीद होता है, और कोई औरत पर!....मेरा डर ये है कि एक दलदल में से तुम्हारा उबरना शुरू हुआ है, और दूसरी तरफ को कदम बढ़ाना। हालांकि ये सलाह मैंने खुद दी थी तुम्हें कि मीना से असंलग्न हो सकने के लिए जरूरी है कि तुम कहीं दूसरी जगह अपनी संलग्नता शुरू करो।...मगर मैं चाहता यही था कि तुम्हारा नया 'इन्वाल्वमेंट' अब राइटिंग की तरफ ज्यादा हो—औरतों की तरफ कम।"

उसने एकाएक रुककर कामरेड की ओर देखा। कामरेड के कथन ने उसे कुछ आहत किया है, यह उसके धीमे से खिंच गए चेहरे से साफ झलक रहा था।

कामरेड ने अब अपना हाथ उसके कंधे पर रखा। सामने से आती लड़कियों को गुजर जाने दिया। बहुत ही सहज भाव से कहते गए—"गीता सचमुच बहुत अच्छी औरत है। तप चुकी है।....मगर मुझे ये अंदेशा है कि इस दोस्ती का अन्त अगर शादी में न हुआ तो गीता के लिए पछतावे में होगा और तुम्हारे लिए भयंकर खिसियाहट में। इश्क एक ऐसी चीज है शेखर, कि इसमें 'इन्वाल्व' आदमी को अलग से सोचने की जरूरत तब तक महसूस नहीं होती, जब तक इसमें दरार न पड़ जाय और दरार पड़ जाने के बाद का सोचना तकलीफ जितनी दे, जोड़ता नहीं।"

लगभग कुंवर साहब की कोठी वाली सड़क पर पहुँचने तक, वह कामरेड को इस सारे मसले पर गीता पाल के रुख को लेकर बताता रहा। उसने सच्चाई के साथ यह भी बतला दिया कि उसे अब कोई एतराज न होगा, मगर खुद गीता का रुख सकारात्मक नहीं दिख रहा।

"वो कहती है कि 'आपके इस साथ को मैं जिंदगी-भर महसूस करती

रहूँगी, मगर मैं अब किसी का भी लम्बा साथ दे सकने-लायक रह नहीं गई।' मैं कुछ नहीं समझ पा रहा कि रुकावटें क्या है और क्यों हैं। मम्मी तक चाहती हैं। आपसे शायद, मैंने जिक्र नहीं किया—मम्मी ओकवुड कॉटेज खरीद लेने का फैसला कर चुकी है। एडवांस भी दे दिया गया है और आपको, शायद, ये सुनकर ताज्जुब होगा कि एडवांस के ढाई हजार रुपये मकान मालिक साहू को मुझसे बतौर-कर्ज लेकर दिये हैं मम्मी ने!"

"इसका सीधा मतलब यही होता है कि वह बुढ़िया अपनी गृहस्थी बसाना चाहती है!....मगर गीता वाली प्राब्लेम मेरी समझ में नहीं आ रही। इतना तो साफ है, शेखर, कि वह तुम्हारे इतने नजदीक सिर्फ सिम्पैथी नहीं, बल्कि प्रेम महसूस करने में से आई है।....और अगर एक हद से आगे वह बढ़ना नहीं चाहती है, तो जरूर इसमें कहीं कोई उसकी निजी 'प्राब्लेम' है जरूर।....और इतना मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि यह 'प्राब्लेम' किसी दूसरे के साथ प्रेम में 'इंडल्ज' होने की नहीं।....शादी न करने के गीता के इस इरादे के पीछे जरूर कोई 'साइकोलॉजिकल प्राब्लेम' है। 'फिजीकली' तो उसमें एक भरपूर औरत होने की सारी नियामतें मौजूद है।....शेखर, तुम अब खुद उसके और करीब होने की कोशिश करो। उसके विश्वास को जीतो। औरतें हम पुरुषों की तुलना मे ज्यादा संशयात्मा होती हैं।....और फिर उसके जीवन में जिस तरह की 'ट्रेजेडी' घटित हुई है, इसने जहाँ एक अनुभवी और संवेदनाओं से भरपूर औरत बनाया है—हो सकता है, अंदर से कहीं उसे इस तरह का कोई 'शॉक' भी दिया हो; जिसे वह दूसरों से कह नहीं पाती है। तुम उसके विश्वास को उस 'प्वाइंट' पर ले आओ, जहाँ वह खुद फूट पड़े कि उसकी मजबूरी ये है।"

"आपको तो, कामरेड दद्दा, अखबारनवीस की जगह किसी 'मैरियेजिंग सोसाइटी' का मैनेजर होना चाहिए था। आप अद्भुत व्यक्ति हैं, साहब! आप जिस तेजी और तत्परता से 'हिंदुस्तान में पूँजीवादी निजाम और जनवादी चेतना' पर किताब लिख सकते हैं—वैसी ही तत्परता से स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलताओं पर भी!"

कामरेड का हँसना झील-पार की अरण्यता में जैसे किसी वनपाखी की तरह उड़ता, अंततः ओझल हो गया।

● ●

'कला और लिट्रेचर या विचार की दुनिया के लोगों के साथ वक्त बिताने पर परिष्कार सिर्फ उन्हीं लोगों का होता है, जो उन्हें अपने से कुछ बेहतर करके मानते हैं। आज का पैसे वाला वर्ग इस तरह के लोगों को अपने टुकड़खोर की शक्ल में देखता है।....और ऐसे लोग जब बोलते हैं, तो भाषा उनके मुंह से बदबू की तरह फूटती है। आप, कुंवर साहब, मेरे बारे में सुनते-जानते आये हैं। मैं दिमागी तौर पर तो यहाँ तक सोचने लगा कि मुझे उन लोगों में शरीक नहीं होना चाहिए, जिन्हें कि मैं समझता हूँ, ये हिन्दुस्तान की समाजी जिन्दगी की दुर्गति के जिम्मेदार है। माफ कीजिएगा, आप नेक और दोस्त किस्म के आदमी हैं, इसीलिए मैं यह बात कहने की हिमाकत कर भी पा रहा हूँ कि सिर्फ आपकी इंसानियत है, जो मुझे यहाँ तक खींच लाई है और न सिर्फ आपके सामने बिठलाए हुए है—बल्कि मैं दिली तौर पर महसूस कर रहा हूँ कि मै एक नेक इंसान के सामने बैठा हूँ।''

कामरेड के कहने मे तल्खी तो नहीं, मगर साफगोई थी—''अन्यथा, माफ करें, मेरा मानना यह है कि वह कोई भी आदमी इज्जत बख्शे जाने के काबिल नहीं, जो इस मुल्क के लाखों-करोड़ों बदहाल इंसानों की तकलीफों और उत्पीडन से भरी जिन्दगी की तरफ से आँखे मूंदे बैठा है। मेरी नजर में बाप का भी बाप होना अपनी जगह है, मगर इससे भी बडी चीज है, उसका इसान होना। माफ करे, मै खुद जानता हूँ कि मै संगत के लायक आदमी नहीं।....मगर हकीकत ये है कि जिस आदमी से मै अपनी बात दोटूक नहीं कह सकता, उसके साथ ज्यादा बैठने में मुझे तकलीफ और बेचैनी महसूस होने लगती है।''

''मुझ में और कुछ तमीज न हो, श्यामलाल जी, मगर 'टॉलरेंस' है, इतना कह सकता हूँ।....बल्कि आप-जैसे साफगो और ईमानदार आदमी के सामने मैं 'टॉलरेंस' की जगह, 'समझ' लफ्ज इस्तेमाल कर लेने की इजाजत चाहूँगा।''

कामरेड गिलास हाथ में लिये ही कुँवर की बातें सुनते रहे। थोड़ी रूखी, किंचित् भीतर को धँसी हुई-सी उनके चेहरे पर की त्वचा अब काफी कोमल और ताजगी से भरी लग रही थी।

"जो आपकी 'आयडियालाजी' है, वह न मेरे खून का हिस्सा है, न दिमाग का। अपनी लिमिट्स और अपनी खुदगर्जियों को मैं बखूबी जानता हूँ, मगर ये कुछ बुजुर्गों की सोहबत का ही दिया हुआ है कि अच्छाई और भलमनसाहत अगर बरत पाता हूँ, तो खुद खुशी महसूस करता हूँ और ये सकून कि हरिकृपा है, जो सिर्फ नफरत के लायक रह जाने से बचा हुआ हूँ। तमाम लोग आपसे नफरत करते हों और सिर्फ नफरत करते हों—किसी भी इंसान के लिए इससे ज्यादा भयानक और तकलीफदेह चीज, शायद, और कुछ नहीं, वर्मा साहब !.... मगर हमारे ये आज के वक्त के पॉलिटिशियन—गाँधी जी जाने इन्हें कौन-सी चमड़ी बख्श गए, साहब, जवाब नहीं इनका ! ये बहुत अच्छी तरह जानते और महसूस करते हैं कि लोग इनसे नफरत, और सिर्फ नफरत करते हैं। लोगों के पास इन लोगों के लिये हिकारत के सिवा कुछ नहीं, मगर इनके सामने आप हों, तो देखेंगे कि इनके चेहरे इस कदर ताजगी और चमक से भरे है कि जैसे सारे हिन्दुस्तान की जनता की मुहब्बत सिर्फ इन्हें ही नसीब हो और मुल्क के बच्चे-बच्चे की फिक्र किसी को है, तो सिर्फ इन्हें। बेहयाई आदमी की खाल को इस कदर कोमल, चिकनी और करुणामय बना सकती है—इस बात का हमें इल्म न था !"—अहिपाल सिंह ने जिस तरह खुलकर ठहाका लगाया, रही-सही औपचारिकता भी एकबारगी नष्ट हो गई।

"वाह, कुँवर साहब ! इन सफेदपोशों के लिये 'करुणामय' शब्द का क्या बढ़िया इस्तेमाल कर डाला आपने !"—अब कामरेड सिर्फ सहज ही नहीं, बल्कि मुखर होने लगे थे। बोले—"गौर कीजियेगा, यहाँ मैं खुद भी सफेदपोश लफ्ज का इस्तेमाल नकाबपोश की तर्ज पर करने की कोशिश कर रहा हूँ !"

बड़ी देर यों ही विनोद-वार्ता होती रही।, थमी, तो अहिपाल बोले—

"मेरा इरादा इस बार उतने दिन ठहरने का था नहीं ।....मगर खुशकिस्मती भी तो कभी-कभी बिना बताये चली आती है ।"

लगभग नौ बजे कुंवर साहब ने प्रेमकिशन को कहा कि खाना लगा दे, लौटते बहुत ज्यादा रात न हो जाए ।

भोजन की शुरुआत हुई ही थी कि कुंवर साहब ने अपना रुख फिर कामरेड की तरफ किया । अब उनके चेहरे पर मंजीदगी थी । बोले—"दरअसल मैंने आपको एक खास वजह से बुलाया था ।"

"कामरेड ने जिज्ञासु-भाव से उनकी ओर देखा, तो बोले—"यह बात मैं इस इतमीनान में कह रहा हूँ कि आप मुझे अपना 'वेलविशर' ही समझेंगे । शारदा पंडित और राय साहब, दोनों आपके खिलाफ लगातार षड्यंत्र में लगे हैं । आपकी सी० आई० डी० इन्क्वायरी भी...."

"मुझे पता है । एस० ओ० मियाँ सिद्दीकी ने 'इंटीमेट' कर दिया था ।....मगर आप भी जानते होंगे कि कामरेड-कामरेड करके मेरी इमेज माओवादी कम्यूनिस्ट की बनाने की पुरजोर कोशिश इन लोगों ने सबसे ज्यादा इस चाइनीज-एग्रेशन के शुरू होने के बाद ही की है ।....हालांकि ये तय है कि कामरेड लफ्ज खुद मुझे बहुत पसंद है और मैं इस लफ्ज को इंसानी सहकार का प्रतीक मानता हूँ । और ये भी सच है कि मैं सामंती-पूंजीवादी निजाम के खात्मे का सिर्फ ख्वाहिशमंद ही नही, बल्कि कर सका तो यह कोशिश भी करना चाहूँगा कि इस जाहिल और अमानवीय व्यवस्था के खिलाफ तिल-भर ही सही, मगर अपनी नैतिक जिम्मेदारी पूरी कर सकूं ।"

"बात मैं आपसे एक और कहना चाहता था । मुझे खबर लगी है कि इस बीच एम० पी० महोदय भी शहर में आए थे और शारदा पंडित व रायसाहब ने उनसे भी ये सिफारिश की है कि आपको डी० आई० आर० में बन्द करवा दें । मैंने यह सुनकर बहुत तकलीफ महसूस की है ।

एक लम्बा अरसा अकेलेपन का गुजारकर, आपने गृहस्थी शुरू की है।.... मैं ये भी वहुत वेहतर जानता हूँ कि आप उन लोगों में से हैं, जिनके खून में ही इंसानियत होती है। आप ईमानदार और सच्चे आदमी हैं और इसीलिए जोखिमों में भी हैं।....मैं आपसे सिर्फ ये कहना चाहता था कि फिलहाल आप जरा एहतियात से चलें और इस नाजुक वक्त को गुजर जाने दें। नेशनल फण्ड में चंदे की उगाही को लेकर, आपने राय की जो भद की, इससे वह वुरी तरह वौखलाहट में है। इसी वीच किसी ने यह वात और फैला दी कि इन लोगों ने सन् वयालीस के मूवमेन्ट में उगाहा पैसा भी काफी हड़प लिया था।....कह नही सकता किसने...."

"जी, नहीं। यक़ीन कीजिए, यह वात मैंने नहीं उड़ाई है। मैं जिस वात को कलम की नोक से लिख नही सकता, उसे जवान से भी नहीं कहता।....और एहतियात वरतने का जहाँ तक सवाल है, मैं अगाऊ तौर पर तो सिर्फ ये वात कह सकता हूँ कि खुराफात वरतना मेरे मिजाज में नही।....मगर मैं आपके प्रति सचमुच और तहेदिल से अपनी कृतज्ञता जाहिर करना चाहता हूँ। मैं आपका वहुत शुक्रगुजार हूँ। पैसे वाले तवके में आप-जैसे और गरीव तवके में हरिवल्लभ-जैसे लोगों को देखकर आस्था को वल मिलता है।"

भोजन से निवट कर, पान खाने के वाद, दोनों विदा होने को हुए, तो कुँवर ने प्रेमकिशन से कहा—"खुशहाल सिंह से कहो, कार गेट-वाहर लगा ले। मैं तो, साहव, इस वक्त आप लोगों को सिर्फ गाड़ी तक छोड़ने आऊँगा। माफ करेंगे।....दरअसल आप लोगों के साथ, वस, खाता ही चला गया। अव भारीपन महसूस होने लगा। जव तक में खुशहाल गाड़ी वाहर लाता है, मैं एक वात आप से और कहना चाहता था, यदि इजाजत दें?"

"मैं ये वादा तो नही कर सकता, कुँवर साहव, कि अगर आप कोई सलाह देंगे, तो मैं उसे मान ही लूंगा—मगर ये वादा मैं करता हूँ कि आप निहायत सख्त वात भी कहेंगे, तो वुरा न मानूंगा।"

"देखें, श्यामलाल जी, पहले परिस्थिति भिन्न थी। अब आप अकेले नहीं। परिवार से अपने सम्बन्धों को फिर से जोड़ने की तरफ बेरुखी आप अब न बरतें। मैं कह नहीं सकता, भगवत बाबू ने क्या रुख बनाया है अपना, मगर जहाँ तक मैंने देखा है उन्हे, वो निहायत मौजी, ईमानदार और धार्मिक वृत्ति के आदमी...."

"आदमी का धार्मिक वृत्ति का होना सरासर फिजूल होना है, कुँवर साहब, अगर उसमें सामाजिक वृत्ति न हो। मैं अपने माता-पिता की इज्जत ही कर सकता हूँ और करता रहा हूँ, तौहीन नहीं—मगर उनके-मेरे सोचने और जीने के तरीकों में इतना ज्यादा फासला है कि फिलहाल ये सब मुमकिन नही लगता।"

कुँवर साहब चुप लगा गये, तो कामरेड ने मुस्कुराते हुए कहा—"मुझे आपसे शिकायत होगी, अगर कल किसी वक्त एक प्याली चाय आप इस गरीब के यहाँ नही पिएँगे। अभी कल तो आप हैं ना ?"

"हूँ, और मैं जरूर आऊँगा।....ये मेरा फर्ज है कि आप लोगों ने जो इज्जत मुझे दी है, उसे अपने लिए कीमती समझूँ।"

शाल ओढ़े-ओढ़े ही अहिपाल कार तक आये और कार के ओझल हो जाने तक हाथों को पीठ की ओर किये, कार के ढलान की ओर ओझल हो चुकने तक वही खड़े रहे।

सँकरी सड़क पर से गहरी ढलान की ओर जाती कार मे किसी बहुत लम्बी यात्रा में से वापस लौटने की सी रोमांचकता अनुभव होती रही। कार झीलवाली चौड़ी सड़क पर पहुँच गई, तब पूरी सुविधा से बैठ पाए। ड्राइवर कामरेड को पहले छोड़ता, ओकवुड कॉटेज की दिशा में जाने के लिए, गाड़ी को पीछे मोड़ने ही जा रहा था कि कामरेड ने भीतर की ओर झुककर, कहा—"कल शाम जरूर आना, शेखर ! हो सके, तो गीता बहन को भी साथ लेते आना। कुँवर साहब चाय पीने आएँगे जरूर। और शायद, परसो-नरसों मे ही मैं बाहर निकलूँ दो-चार दिन को। कुछ और

जुगाड़ करना जरूरी हो गया है। कासगंज-काशीपुर में कुछ लोग पुराने परिचित हैं। देखता हूँ, क्या होता है। तुम कल आना जरूर।"

हामी में सिर हिलाते हुए, शेखर ने अपने को पूरी तरह सीट के पिछले हिस्से से टिका लिया और आँखें मूंद ली। वह जाने क्यों एकाएक यह सोचने लगा कि गीता पाल को तो आज शाम के वक्त भी कुंवर साहब के यहाँ मौजूद होना चाहिए था।

● ●

२५

कामरेड अपने कासगंज, अलीगढ़ और काशीपुर के टूर पर से लौटे, तब इतनी व्यवस्था हो गई थी कि 'चेतना' का प्रवेशांक निकाला जा सके। हरिवल्लभ ने जो टाइप लिखवा दिये थे, और दस रिम डबलडिमाई ह्वाइट प्रिंटिंग कागज कामरेड बरेली से अपने साथ ट्रक पर लदवा लाये थे।

रिक्शे में सारा सामान लदवाकर जब वो घर की तरफ चले तो वो सबसे पहले शेखर के सामने पड़ना चाहते थे, इसीलिये जब ध्यानी पनवाड़ी ने 'जयहिंद, कामरेड साहब !' की आवाज दी, तो उनको लगा, जैसे कंधे पर कौवे ने बीट दिया हो।

रिक्शावाला धीमा पड़ने लगा था कि शायद वो बतियाना चाहे ध्यानी पनवाडी से, मगर कामरेड ने सख्त आवाज में कहा—'तुम काहे ढीले पड़ने लगे, बसंत ?' और दायाँ हाथ ऊपर उठाकर, सिर्फ हवा में हिला दिया।

शाम के लगभग पाँच बजे शेखर पहुँचा, तब कामरेड सोये पड़े थे और हरिवल्लभ टाइप सहेजने मे लगा था। शेखर ने 'जैहिन्द, पण्डित जी !' कहा, तो हरिवल्लभ ने हाथ जोड़कर 'जैहिन्द, शेखर साहब !' के साथ-साथ 'वर्मा साहब लौट आये है।' कहा। उसका चेहरा उत्साह और प्रसन्नता से भरा था।

सरस्वती लपककर 'बहुत थके-उनीदे आये थे। खाते ही सो गये। जगाती हूँ।' कहती भीतर वाली कोठरी की ओर लपकने को हुई थी कि शेखर ने रोक लिया।

बोला—'रहने दीजिये, भाभी जी ! पहले आप चाय बनाइये, तब जगाइयेगा—साथ-साथ पियेंगे।'

चाय का जुगाड़ करती, वह बोली—"भैया जी, अब आप भी शादी कर ही लीजिये। पहले तो मैं इनसे सिर्फ सुनती आई थी, मगर कुँवर साहब वाले दिन वो आई थीं, तो मैं देखती रह गई। क्या रूप है, भैया जी ! पढ़े-लिखे की छवी ही और होती है। वो तो सचमुच राजघराने की बहू-बेटी लगी हमें।"

"अरे, राजा के साथ आई थीं तो रानी साहिबा क्यों न लगेंगी ?"

वह अभी कुछ और मजाक करना चाहता था कि 'कहो, कुँवर राजशेखर, क्या हाल हैं ?' कहते, कामरेड बाहर आते दिख गये।

'बड़ा निःस्वास लग गया, यार, तुम्हारा !' कहते हुए, उन्होंने उसे बाँहों में भींच लिया। इस समय कामरेड बंद गले का रेडीमेड गरम पुलोवर पहने थे और पहले से स्वस्थ दिख रहे थे।

कामरेड अपने सफर की दास्तान बता चुके, तो उसने कुछ गम्भीर होते हुए कहा—"आपने, कामरेड दद्दा, इधर 'स्वदेश' का नया इश्यू तो देखा न होगा ?"

"क्यों, क्या बात है उसमें ?"

"यों तो वह एक तरह से पार्वती बहन-विशेषांक है, मगर आपके खिलाफ उसमें बहुत जहर उगला गया है। एक तो उसमें आपके खिलाफ उस नेशनल फण्ड वाले मसले तथा पंचमांगी गतिविधियों को लेकर 'राइट-अप' है। साथ-साथ, एसेम्बली मे एम० एल० ए० भइया जी ने इस बात के लिये स्थानीय प्रशासन की भर्त्सना की है कि वह राष्ट्रीय संकट की इस घड़ी में राष्ट्रद्रोही तत्वों के प्रति लापरवाही ही नही बरत रहा, बल्कि संरक्षण दे रहा है। सिद्दीकी साहब के तबादले का ऑर्डर, सुना है, होने ही वाला है।"

"ये सब बुरी या तकलीफदेह बातें हो सकती है, शेखर ! ....मगर अनहोनी नहीं है। मुझे तो इस टुअर से और बल मिला है, भाई !

आर्थिक जुगाड़ की बात तो छोड़ो। ये सब तो फलासफेलो दोस्तों की बदौलत हो गया, मगर इन सारे खट्टे-मीठे अनुभवों के साथ, मुझे सामान्य आदमी में ये चीज दिखाई पड़ी कि सही ढंग से सोचने वालों की कमी नहीं है। कमी है, तो सिर्फ इस बात की कि गांधी जी की हत्या के साथ इस देश के सामाजिक नेतृत्व की भी हत्या हो गई। नेहरू ने विश्वनेता बनने की 'एम्बीशन' में हिन्दुस्तान में सामाजिक नेतृत्व की जड़ों में मठा डाल दिया। गांधी जी के विरासतदार के नाम पर अब एक वो धार्मिक-वैचारिक ठग विनोबा बाकी बच गया है, जो सामाजिक चेतना का सबसे बड़ा शत्रु है। इस तरह के वैचारिक धूर्त इजारेदारों से कम खतरनाक नहीं होते। ये समाज की चेतना को 'डेविएट' करते हैं। खैर, छोड़ो ये सब चर्चा फिलहाल। चाय पीते हुए हम लोग 'चेतना' के प्रवेशांक की 'डमी' तैयार कर डालें। ...ये बताओ, तुम क्या लिख रहे हो इस इश्यू के लिये ?"

"आप उस दिन कह रहे थे कि 'उसकी वापसी' का कोई अंश—"

"प्यारे भाई!"—कामरेड ने फर्श की ओर देखते, काफी धीमी आवाज में कहा—"मैं चाहता हूँ कि 'चेतना' का यह प्रवेशांक इस बात का नमूना बन सके कि आज के हालात में किसी अखबार की रूप-रेखा और भूमिका क्या होनी चाहिये। इसके प्रवेशांक में कविता या फिक्शन देने के इरादे को छोड़ना पड़ रहा है।"

न देखते भी उन्होंने महसूस किया कि उसके चेहरे पर हलका ही सही, मगर खिन्नता का भाव आया जरूर होगा, मगर यह सुनकर उन्होंने तुरन्त अपना मुँह उसकी ओर उठा लिया—"मैं 'समाज में बुद्धिजीवियों की भूमिका' को लेकर कुछ लिखूं, कामरेड दद्दा ?"

"जरूर-जरूर !" उन्होंने उत्साहपूर्ण स्वर में कहा और बताने लगे कि मुखपृष्ठ से लेकर, आखिरी पेज तक में क्या-क्या और कैसे देना चाहते हैं।

अन्त में बोले—"रेग्यूलर तो इसे भी निकलना नहीं है, शेखर ! इस तरह से साधन जुटाना बहुत वक्तखाऊ होता है, और 'स्कोप' भी बहुत सीमित है। कोई भी अखबार चन्द मित्रों-शुभचिंतकों की सदाशयता के

भरोसे अपने को 'रेग्यूलर' नहीं कर सकता। इसलिये मैंने तय किया है कि जो भी 'इश्यू' निकले, उसमें अधिकतम जो सामग्री हम दे सकते हैं, वो रहे। मैं चाहता हूँ, डिमाई अठपेजी साइज में कम से कम चालीस पेज का तो हो ही यह इश्यू। कवर-ब्लॉक बनवा लिया है और कुछ कालमों के लिये हेडिंग ब्लाक भी।"

काफी देर तक कामरेड बच्चों के से उत्साह से उसे ब्लाक-कागज दिखाते रहे और इस बीच यात्रा मे रहते लिखी टिप्पणियाँ भी। आखिर हरिवल्लभ से यों कहते हुए कि 'हरि भाई, कल से एक-दो को पार्ट-टाइम और भी बुला लेना। मजदूरी हाथों-हाथ दे दी जायेगी।' कामरेड शेखर को साथ लिये बाजार की तरफ निकलने को हुए ही थे कि हरिवल्लभ ने बताया कि माँगीलाल के साले और बेटे से वह बात तय भी कर चुका है।

-

झील के चारों ओर भीड़ देखते ही कामरेड बोले—"लगता है, यातो किसी ने झील में जल-समाधि लेली है—और या किसी फिलम की शूटिंग होने वाली है!"

जल्दी ही पता चल गया कि राजेश खन्ना और मुमताज के नौका-विहार की शूटिंग देखने के लिये लोग टूटे पड़े हैं। छोटे-छोटे बच्चे-बच्चियों से लेकर, लड़कियों-महिलाओं, जवान-बूढ़ों के हुजूम को ठेलमठेल में देखते ही कामरेड ने बीड़ी सुलगा ली और बोले—"समाज के लिये वेश्याओं से कही ज्यादा खतरनाक ये हिन्दुस्तानो फिल्मी हिरोइनें और चोर-जेबकतरों-रहजनों से भी नुकसानदेह ये फिल्मी हीरो हैं। लोगों में अगर सामाजिक चेतना नाम की चीज जागृत कर दी गई होती, तो दो तबके के लोगों को देखते ही एक झलक पा लेने को दीवाना हो जाने की जगह, देखते ही जूता हाथ में लिये खड़े हो जाते लोग।"

कामरेड ने इतनी जोर से कश खींचा कि बीड़ी चरमरा गई।

"कौन-से दो तबकों को देखकर, कामरेड दद्दा?"

"अपने निर्माण में, अपने दुःख-सुख और संघर्षों में दूसरों के सहकार को देखना ही सामाजिक होना है, शेखर !....और सामाजिक होने की चेतना के बाद ही हममें यह तमीज आती है कि अखबार-नवीसी, कला या लेखन—ये सिर्फ पर्सनल 'एचीवमेन्ट' नहीं हैं—इस सब मे समाज की अपनी भूमिका है। इस 'विजन' के बाद ही किसी का क्रिएशन 'सोशल एचीवमेन्ट' बनता है।....और इतिहास में ही नहीं, बल्कि अपने वक्त में भी सिर्फ वही लेखक जिंदा रहता है, जो अपने क्रिएशन को निजी थाती नहीं, बल्कि सामाजिक ऋण-मुक्ति समझता है।"

थोड़ा रुककर बोले—"प्रकृति का यह नियम है, प्यारे, कि वह जो-कुछ देती है, धरोहर की तरह देती है और जिस सहज भाव से देती है, उतनी ही निर्मम होकर, वापस ले लेती है—क्योंकि वह सिर्फ हमारे लिये नहीं, सबके लिए है और उसे सबको देना है। समाज भी देता है, मगर सिर्फ उन्हे, जो उसे लौटा सकते हों। जो प्रेम, और करुणा और चेतना उनको मिले, उसे दूसरों तक पहुँचा सकते हों।"

"माफ कीजियेगा, कामरेड दद्दा ! आपके इस तर्क से तो ये साबित हुआ कि टाटा बिड़ला-जैसे कैपिटलिस्टों या कालाबाजारियों या सियासी नेताओं को भी समाज ने सिर्फ इसीलिये दिया है, ताकि वो उसे दूसरों तक पहुँचा सकें ? मुझे तो आपकी इस 'थीसिस' में गाँधी जी की 'ट्रस्टीशिप' वाली 'थ्योरी' की छाया दिखाई दे रही है।"—शेखर के कहने में शरारत का भाव था, मगर तर्क करने की सावधानी भी।

"तर्क तो तुमने किया है, शेखर !....मगर यहाँ 'ट्रस्टी' लफ्ज पर जरा गौर करोगे ? अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने या किताबी तौर पर होने की बात करो, तो फिर हरेक सियासी नेता भी अपने को नेशनल ट्रस्टी कह सकता है। खास तौर से हर एम० पी०, एम० एल० ए०—क्योकि जनता ने उन्हे चुना है। उन्हें अपना विश्वास सौंपा है।....मगर शब्द की कसौटी लिखावट या उच्चारण नहीं, प्यारे भाई, आचरण है!...लोग आपको स्वयं विश्वास दें, यह एक बात है—आप उसे धोखाधड़ी, चालाकी या

आतंकवादी तरीके से हथिया लें, यह बिल्कुल दीगर बात।....रह गई, कैपीटलिस्टों और सियासी नेताओं वाली बात, मैं सिर्फ ये कह सकता हूँ कि उन्होंने समाज से चीजों को अमानत के तौर पर पाया नहीं है, हथियाया है—धोखाधड़ी और धूर्तता से—और दे हैव टु रिटर्न इट !...."

'दे हैव टु रिटर्न इट !' कामरेड ने इतनी जोर से कहा कि वह एकाएक चौंक उठा।

"अच्छा मैं चलूं, गुड-नाइट !' कहते हुए, कामरेड ने कुछ देर तक स्नेह से उसका कंधा थपथपाया और 'अच्छा, अब कल फिर मुलाकात होगी। गीता बहन को मेरा सलाम कहना !' कहते हुए—बिना उसे किसी सफाई का मौका दिये—तेजी से अपनी दिशा में मुड़ गये।

● ●

२६

वह हिलेरियन होटल वाली सड़क की ओर से नीचे, शहर की ओर चला आ रहा था कि प्रभा जायसवाल सामने पड़ गई।

वह चुपके से आगे निकल जाना चाहता था, मगर प्रभा का 'नमस्कार' जैसे रास्ता रोककर खड़ा हो गया। शिष्टाचार निवाहने की मजबूरी में जुड़े उसके हाथों को गौर से देखते हुए, प्रभा जायसवाल ने ही पूछ लिया—"आप हम लोगों से नाराज है क्या ?"

"जी नही तो...."

"मगर हम लोग आपसे नाराज है।"

वह चकित भाव से प्रभा के शरारत की ऊष्मा में तारुण्यमय हो आये चेहरे को देखता रह गया।

"नाराज इसलिये है कि आपने हमारी सखी छीन ली है। मैं अभी वही से आ रही हूँ। मिसेज शर्मा ने उन्हें बुलवाया था। सनोवर इस्टेट की तरफ शूटिंग होनी है ना आज ? मगर गीता दीदी ने बहाना कर दिया कि जी ठीक नहीं। घर में ही आराम करना चाहती है।....आप, शायद वहीं जा रहे होंगे ?"

वह कहना चाहता था—और कह सकता था—कि इस वक्त वह कामरेड सूरज के यहाँ जा रहा है, मगर वह चुप रहा। कुछ क्षण बीतते, न बीतते उसके चेहरे पर असुविधा अनुभव करने का तनाव उभर आया।

"मेरा वेवक्त और बिना वजह का रोकना आपको बुरा लगा है, शायद ?" कहते-कहते, प्रभा जायसवाल के चेहरे पर ग्लानि का भाव उभर

आया। साफ था कि शेखर के उपेक्षापूर्ण व्यवहार से उसने तकलीफ महसूस की थी।

वह उसे अवज्ञा महसूस न कराने की औपचारिकता में कुछ कहने ही जा रहा था कि संजीदा आवाज में उसका यह कहना उसे सचमुच खिसियाहट में डाल गया—"राजशेखर जी, आप कुछ गलत न समझ लीजिएगा। गीता दीदी आपको बता सकती है कि मेरा रुख कभी भी आपके प्रति खराब नहीं रहा। मैंने हमेशा यह महसूस किया कि आप एक सच्चे और भावुक आदमी हैं। इसीलिये फजीहत और तकलीफ भी भुगत रहे हैं।....अब मैं खुद महसूस कर रही हूँ कि आपसे बिना परिचय के ही रास्ते में टोकना, बातें करने लगना—यह बदतमीजी मुझे नहीं करनी चाहिये थी, मगर विश्वास कीजिये, खुद गीता दीदी ने पिछले कुछ दिनों में जिस तरह सारी बातें बताई, मैं खुद भी बहुत प्रसन्नता अनुभव करने लगी थी कि उनके वीरान जीवन में बदलाव आया है। मैं बरसों से उनकी बहुत करीबी सहेली हूँ और मैंने देखा है कि वो कितनी बेहतरीन औरत हैं।....मैं....मुझे माफ कीजियेगा।"

आँखें भर आने और आवाज भर्राने से वह बोलने में रुकावट अनुभव करती जा रही थी और वह अब एकाएक तेजी से आगे बढ़ने को हुई ही थी कि उसने कंधे पर हाथ रखकर रोक लिया—"नहीं, आप मुझे माफ करने से पहले, इस तरह वापस नहीं जायेंगी। मैं आपको यों कंधा पकड़कर रोक लेने की अपनी बेअदबी के लिये बहुत शर्मिंदा हूँ।....मगर मुझे और कुछ सूझा नहीं। यह जरूरी लगा कि आपको रोकूँ। आपका मुझे रोक लेना नहीं, मेरी ओर से बेरुखी बरता जाना गलत बात है। अभी आपने मुझे बेवजह रोक लेने की बात की थी। मम्मी कहती है कि इस बेवजह की आत्मीयता से बड़ी चीज कुछ नही। मुझे आपकी अच्छाई का ठीक-ठीक अहसास न हो पाया था। मैं सचमुच बहुत शर्मिंदा हूँ।"

प्रभा के कंधे पर से अपना हाथ उसने तो बोलना शुरू करते ही हटा

लिया था, मगर वह खुद उसके बात खत्म कर लेने तक अपने कंधे पर महसूस करती रही।

शेखर चुप हो गया, तब पहली उसे लगा कि वह 'स्टेच्यू' की तरह ज्यों-की-त्यों, जहाँ-की-तहाँ है। उसके चेहरे पर अपनी ओर से बरती गई जल्दबाजी और उसकी ओर से मिली अवज्ञा की प्रतिक्रिया में तुषार की तरह इकट्ठा हो गया सारा अवसाद तुरत निःशेष हो गया। वह अप्रतिम रूप से आत्मीय हो आयी। उसे कुछ कहना नहीं पड़ा। उसके चेहरे और रुख मे आ गये बदलाव ने शेखर को पूरी तरह तनाव-मुक्त कर दिया।

बोला—''गर्दिश के जिन दिनों को लेकर मै हाय-तोबा मचाये हुए था, मुझे मालूम न था कि इनकी बदौलत मुझे सिर्फ नफरत ही नहीं मिलेगी—बहुत-से लोगों का स्नेह भी मिलेगा। शुरू-शुरू में इतना बद-हवास, बौखलाया और खूँखार-सा हो गया था—अब मैं महसूस करता जाता हूँ कि शायद, वजह यह भी जरूर होगी कि मैं खुद ही ये सोचने लगा था कि मै लोगों की नजर में पूरी तरह गिर चुका। प्रोफेसर तिवारी के साथ सरे-बाजार जो वहशियाना हरकत मैंने की है—इसके बाद अब कोई मुझे एक अच्छे इंसान के रूप मे नही देखेगा।''

''गीता दीदी ने मुझे जो-कुछ आपके बारे मे बताया था, वह सब सच है। आप सचमुच ऐसे इंसान हैं, जिसके साथ बातें करके खुद के भी अच्छे होने की 'फीलिंग' होती है। मैं बहुत खुश होऊँगी, अगर कल शाम गीता दीदी के साथ मेरे यहाँ आ सकें। मैं भी अकेली हूँ। आप कहेंगे, तो गीता दीदी जरूर चली आएँगी। आइयेगा ना?''

''जी हाँ....जी हाँ—''

प्रभा के हाथो का नमस्कार मे होना, धीमे से मुस्कुराना और अपने घर की दिशा में बढ़ जाना—सब प्रीतिकर लगता रहा।

वह सदर अस्पताल की तरफ से होता बस-अड्डे तक पहुँचा ही था

कि 'आपका ध्यान किधर है, ध्यानी जी की पान की दुकान इधर है' साइनबोर्ड और वहाँ कुछ छात्र किस्म के लोगों के साथ खड़े शारदा पंडित पर उसकी नजर पड़ गई। कुछ अप्रिय दिख जाने की सी अनुभूति मे वह तुरत कोहली बेकरी वाली सड़क पर आगे बढ़ गया। तय किया, कुछ चक्कर जरूर लगाना पड़ेगा, मगर अब झील के इस पार होकर ही कामरेड के यहाँ पहुँचेगा। उन लोगों को वहाँ खड़ा देखते ही जाने एक क्षण मे उसे यह क्यों लगा कि ये कुछ उसी तरह के लड़के है, जिन्होंने उसका रमण होस्टल के पास घेराव किया था।....मगर अभी वह कोहली बेकरी के सामने से आगे बढ़ने को ही था कि ऊपर से आती आवाज ने उसके पाँवों को थाम लिया—"शेखर बेटे!"

वह आवाज देने वाले को पहचानने के लिये अपनी स्मृति पर जोर देने लगा था कि एकाएक उसे याद आ गया—डॉ० दुबे का घर!

सिर घुमाकर देखने से पहले ही उसने अनुमान लगा लिया कि भुवन-मोहिनी देवी होंगी।

वो ही थीं।

ऊपर वाली मंजिल की खिड़की से झाँक रही थीं। वह द्विविधा में ही था कि उन्होंने दुबारा पुकार लिया—'राजशेखर!'

जाने कैसा सम्मोहन था उनके पुकारने में कि उसने अपने-आपको मंत्रविद्ध होता-सा महसूस किया। मीना को लेकर व्यतीत हुआ सब-कुछ इस एक क्षण में उसकी स्मृति में इकट्ठा हो आया, मगर अपने भीतर की सारी खिन्नता के बावजूद, वह आदरपूर्वक हाथ जोड़ने और अपने-आपको भुवनमोहनी देवी की ओर बढ़ने से रोक नहीं पाया।

काठ की सीढ़ियों पर होकर, ऊपर की मंजिल में जाते हुए, उसे अपने अतीत में उतरते जाने की सी अनुभूति हुई।

उसे अपनी ओर आता देख, वो सीढ़ियों के मुहाने तक आ गई थीं। अभी उसका सिर ऊपर दिखा ही होगा, कि भुवनमोहिनी देवी ने सिर पर अपनी ऊँगलियाँ फेर दीं—"तुम्हारे तो बड़े घुंघराले बाल हैं, बेटे!"

जरूर हूँ, गुस्सा जाने क्यों नहीं आ सका। गुस्सा मुझे 'दुर्गुणन' पर आता है और जिस पर आता है, कोशिश भी करूँ तो माफ नहीं कर सकती। गुस्सा मुझे अभी कुछ दिन पहले आया था शारदा पंडित पर। रंगे सियार की तरह मुझे भड़काने आया था। ये लोग 'हम तुम्हारे घर में आग लगायेंगे, मेहनताना क्या मिलेगा ?' वाले हैं। बदतमीजी से पेश आने में तो खुद तुनक पड़ जाने की 'फीलिंग होती है मुझे, मगर शान्त शब्दों में ही मैंने उसे टरका दिया था। उस हुज पर निकली बिल्ली पार्वती बहन को भी साथ लाया था। जहाँ तक मैं समझती हूँ, अब दुबारा नहीं आयेंगे ये लोग मेरे घर। मैंने प्रोफेसर को समझा दिया था कि 'बेटे, गलती मीना की भी है।.... और तुम उसे माफ कर चुके, तो राजशेखर को भी माफ कर देना चाहिए तुम्हें।' तुमने गलती सिर्फ एक की, राजशेखर ! तुम्हें प्रोफेसर तिवारी से बदसलूकी नहीं करनी चाहिए थी। वो निहायत नेक, शरीफ और ऊँचे विचारों वाला आदमी है। तुम्हें मीना को झापड़ लगाने चाहिये थे। इससे उन चटोर लड़कियों को सबक भी मिलता, जो बिल्ली बनकर खेलना चाहती हैं। मैं खुद औरत हूँ और बहुत बेहतर जानती हूँ कि ऐसी नौबत सिर्फ तभी आती है, जब औरत ने खिलवाड़ किया होता है।"

भुवनमोहिनी देवी का चेहरा अब कुछ तनाव-भरा हो आया था, मगर जल्दी ही उन्होंने अपने-आपको संयत कर लिया। उसके सिर पर हाथ फेरती बोली—"जब कोई माँ किसी दूसरे के भी जवान लड़के को देखती है, और मुसीबत मे देखती है, तो उसे कल्पना हो आती है। नौजवान लड़के बुढ़िया औरत को देखकर, शायद, इस तरह की कल्पना न करते हों, मगर बूढ़ी औरत यह कल्पना करती है कि इसके जवान होने में इसके माँ-बाप का कितना वक्त, कितना प्यार, कितना परिश्रम लगा होगा। जब मुझ तक खबर पहुँची कि कुछ लड़कों ने तुम्हारा घेराव किया था, तो मुझे बहुत तकलीफ हुई। समाज मे कुछ ऐसे खल हर जगह होते है, जिन्हें दूसरों की फजीहत कर डालने में ही सुख मिलता है। ऐसे दुष्टों से बचना चाहिये। उन्हें खुद मौका कभी न देना चाहिये। वो तो खुद ही गीधों की तरह तलाश मे रहते हैं।....मुझे

तुमसे और कोई शिकायत नहीं, बेटे, मगर माँ की विनती मान सको, तो इतना करना—अब गीता या प्रोफेसर तिवारी के साथ इस तरह की नादानी भविष्य मे न करना। इसमें न उन लोगों का हित है, न तुम्हारा।"

उनकी आवाज में भारीपन था और आँखें भर आई थीं।

उसने अपने-आपको संतुलित किया और बोला—"माता जी, आज मै आपसे ये वादा करता हूँ कि उन लोगों के साथ भविष्य में बदसलूकी हर्गिज न करूँगा। आप मेरा विश्वास करें—"

अभी वह ठीक से अपनी बात पूरी कर भी नहीं पाया था कि काठ की सीढियों पर कई-एक लोगों के धमाधम चढ़ने की आवाजें ऊपर तक पहुँचीं और जब तक में वो कुछ समझता दो-तीन लड़के ऊपर पहुँच गये। उन्होंने उसे जरा भी वक्त नहीं दिया और एक झटके मे दबोचकर, सीढ़ियों के मुहाने पर ले आये और नीचे खड़े दूसरे लड़कों ने उसे सामान के बोरे की तरह नीचे खींच लिया।

नीचे गिरा लिये जाने पर उसने पाया कि तीन-चार के हाथ मे हाकी स्टिकें हैं। दो-चार पीठ और पाँवों पर पड़ चुकी, तब भी वह किसी तरह उठा। चीते की तरह झपटकर, एक स्टिक छीनी और बिना ये देखे चला दी कि किसके लगती है, किसके नहीं, मगर उनमे कुछ लोग पेशेवर मार-पीट करने वालों की तरह सधे थे। एक भरपूर वार सिर पर पड़ते ही, उसकी आँखों के आगे अँधेरा गहरा होते चला गया। उस अँधेरे में ही उसे भुवनमोहिनी देवी का करुण स्वर में चीखना सुनाई दिया—'मत मारो इसे, हरामजादो!'

• •

२७

शारदा पण्डित इस वक्त अपनी बैठक में थे। रामदुलारी चाय-नाश्ता रख गई थी।

"नीचे सीढ़ियों वाला दरवाजा बंद ही रखना। कांता बाबू या राय साहब के अलावा कोई भी दूसरा आये, मना कर देना कि पंडित जी इस वक्त यहां नही—शहर से बाहर गये हैं।"

"क्या बतायें, बाबूजी, वह हरामजादी बुढ़िया उसके ऊपर लेट गई। तमंचे-छूरे के इस्तेमाल को आपने मना कर दिया था, हालांकि हमें यकीन है कि हाकी स्टिकें भी इतनी करारी पड़ी हैं कि जिन्दा बचेगा नही। बच भी गया, तो किसी काबिल न रहेगा।"—तीनों में से एक ने कहा।

दूसरा बोला—"बहुत सख्त जान निकला साला। मिलिट्री का खाया कहाँ जायेगा। साले के कनपटी पर हाकी मारी, तब जाके गिरा है। चोट आपके उस लोकल लड़के को भी ज्यादा आ गई है। इक्सपीरियेंस न होने में यही खतरा रहता है। उसके ही हाथ से हाकी छीन के हमला किया उसने। किसका लड़का था? बेवकूफ जोश में खुद आगे हो गया और इसी में बुढ़िया को उसके ऊपर लेटने का मौका मिला।"

"अरे, उसकी फिक्र न करो। यहीं की एक विधवा लावारिस औरत है, उसी का आवारागर्द छोकरा है। तीन साल इंटर में फेल हो चुका। खैर, नगरपालिका मे उसकी नौकरी लगवा दी है मैंने। ठीक होते ही 'ज्वाइन' कर लेगा।"

"कही उगले नही?"

"पैसा और नौकरा उगलने की चीजें नहीं।....और हाँ, तुम लोग यहाँ के हाल-समाचार गिरिजा बाबू को दे देना, मगर दो-चार दिनों को कहीं घुमक्कड़ी को निकल जाना। मैं यहाँ से ट्रंक कर दूँगा। पैसे तुम लोगों को वहाँ से मिल जायेंगे। अच्छा, ये बताओ, उस खूसट बुढ़िया को तो ज्यादा चोट नहीं आई? बयालिस के मूवमेन्ट में रह चुकी है। अखबारों में हो-हल्ला न मचे।"

शारदा पंडित अब थोड़ा चिंतित दिखे।

"नहीं, बाबू जी! एकाध हाकी भले ही पड़ गई हो पीठ पर।.... पब्लिक प्लेसेज में यही दिक्कत रहती है। हम लोगों की 'प्लानिंग' ये थी कि कहीं ऐसी जगह घेरा जाय, जहाँ बीच-बचाव की गुंजाइश न हो। साँप को अधमरा छोड़ देने में हर्ज नहीं, आदमी न बचना चाहिए।"—माथे पर घाव वाला, अपने लम्बे बालों से कॉलेज-विद्यार्थी से ज्यादा हिप्पी लगता युवक बोला—"तमंचा अभी भी हमारे पास पड़ा है। पेट से लगा के दाग देते, किस्सा खत्म होता।"

अब शारदा पंडित ठीक से पलथी मारकर बैठ गये। बोले—"तुम लोगों में जवानी का जोश है। अभी बच्चे हो। आदमी जिस जगह जाय, वहाँ के रिवाज से चले। तमंचे-छुरे 'प्लेन्स' की तरफ ही माफिक बैठते हैं। हम लोग पहाड़ी हैं। तमंचे-छुरे की जगह दिमाग से चोट करने पर यकीन रखते हैं। आजादी की इतनी लम्बी लड़ाई अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ हमने लड़ी, मजाल है, कभी कही कोई चूक हो गई हो। अंग्रेज लोग भी लोहा मान गये। चंद्रशेखर-भगतसिंह के बम-पिस्तौलों की जगह गाँधी जी के 'वैष्णव जन तो तेने कहिये' ने ज्यादा कमर तोड़ी गोरे साहबों को! मैं तो यहीं लोकलो ऐसी नाकेबदी कर चुका था कि वह खुद 'सुसाइड' कर लेता।....मगर गिरिजा बाबू ने तुम लोगों को वहाँ से इतनी दूर तक भेज दिया, तो खाली हाथ लौटाना ठीक न समझा।"

शारदा पंडित ऐसे बोले जा रहे थे, जैसे अखबार पढ़कर सुना रहे

हों—"अच्छा अब तुम लोग चलो और सीधे बस पकड़ कर, निकल जाओ। ट्रेन छूटने वाली ही रही रहो।"

"वो लोग चले गये, तो बगल में रखी छड़ी को दबाते हुए, मसनद के सहारे पसर गये शारदा पंडित। वह आईं, तो बोले—"भई, जरा पिण्डलियों पर हाथ फेर देना। दिमागी काम में यही खराबी है। मजदूरी करने से ज्यादा थकान आ जाती है।"

रामदुलारी घुटने तिरछे किये बैठ गईं। धोती घुटनों से ऊपर करके पिण्डलियों में अँगुलियाँ गड़ाती बोली—"आपकी तो इस उम्र में भी बहुत ठोस है। लोगों की या तो हड्डी छोड़ देती है और नीचे लटक जाती है, या हड्डी से खाल की तरह चिपक जाती है।"

"जीवन को संयम से, नियम से जियो, तो वह बना रहता है। आदमी संसार मे सब काम करे, मगर आगा-पीछा देखकर, और नियम से। मैं गलत तो नहीं कह रहा, रामदुलारी ?"

रामदुलारी ने सहमति में सिर हिलाया, तो शारदा पंडित बोले—"तुम्हारा नाम तो कामदुलारी होना चाहिये था।"

"पार्वती बहन जी अक्सर हमे इसी नाम से पुकारने लगी है। कहती है, तुम बहुत मेहनती औरत हो।"

शारदा पंडित के माथे पर हलकी-सी त्योरियाँ उभर आईं। बोले—"अच्छा, अब हम थोड़ा सोयेंगे। घंटा-आध घंटे में ही कांता बाबू आते होंगे।"

रामदुलारी ने अपनी अँगुलियाँ अभी पिण्डलियों पर से हटाई भी नहीं थीं कि शारदा पंडित ने धोती को ठीक कर लिया और आँखे मूंद ली।

कांता बाबू आये, तो उनके चेहरे पर परेशानी के चिह्न थे।

"अरे, भई, तुम क्यों उदास हो गये। देखो, ये सारा-का-सारा 'पब्लिक इक्साइटमेंट' का मामला है। प्रोफेसर तिवारी की इज्जतहतकी से उनके छात्रों में बौखलाहट थी। अपने गुरु के ऊपर प्रहार किये जाने से लड़के बुरी तरह क्षुब्ध थे। जब उन्होंने देखा कि वह वदमाग आवारागर्द श्रीमती मीना तिवारी के साथ सरे-बाजार बदसलूकी करने के बाद, मीना की माँ, स्वतंत्रता-संग्राम की प्रतिष्ठित महिला भुवनमोहिनी देवी के घर में घुसकर, उनसे भी बदला लेने की भावना से....यों इसके पीछे वास्तविकता यह भी हो सकती है कि भुवनमोहिनी देवी का चीखना-चिल्लाना सुनकर उधर से गुजरते लड़के अपने को संयम में न रख सके हों? वो सारे-के-सारे लड़के उसी कालेज के विद्यार्थी थे, जिसमें प्रोफेसर तिवारी पढ़ाते हैं। हो सकता है, एकाध कोई उनका किसी दूसरे कालेज का साथी हो?"

शारदा पंडित का चेहरा अब भी प्रशांत था—"देखो, कांता! यह जो पत्रकारिता है, एक कला है। इसे सीखना होता है। बरतना होता है। मैंने गिरिजा को बिजनिस में लगा दिया, जब कि वह छोटा है और तुम बड़े, तो इसकी वजह है। पुत्र वही खरा है, जो अपनी पितृ-परम्परा का संवहन करे। अपने बाबा को तुमने बहुत बचपन में देखा होगा। शायद याद हो कि कैसे चंदन—जैसे शीतल स्वभाव वाले थे? मगर उनसे आधा शहर डरता था, जाने किसे शाप दे दें! तुम मेरी तरह संयमी और शीतल दिमाग वाले हो। ये पत्रकारिता की बुनियादी शर्त है। पत्रकारिता कोई खेल नही, मामूली शक्ति नहीं, बेटे! टाटा-बिड़ला अपने अखबारों की बदौलत पार्लियामेन्ट और सेन्ट्रल-मिनिस्ट्री में 'पावर-बैलेंस' की हैसियत बनाये हुए हैं, और सेन्ट्रल गवर्नमेन्ट के दफ्तरों को उन लोगों ने अपने लिये हाथी-दाँत की बनाकर छोड़ दिया है।....और तुम एक छोटे-से लोकल इन्सीडेन्ट से परेशानी अनुभव कर रहे हो? वह पत्रकार क्या, जो समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी महसूस न करे? ये ठीक है कि उस गुण्डे ने असामाजिक हरकतें ही की है, मगर विद्यार्थियों को भी संयम से काम लेना चाहिये था। उन्हे कानून को अपने हाथ में नहीं लेना चाहिये था।

उन लोगों को चाहिये था कि नजदीक ही थाने में जाकर खबर देते । वैसे लड़कों में नया खून जोर मारता ही है । विवेक और संयम की शीतलता उनमें कहां होती है । बस, ये ही सब चीजें हैं और इन्हीं की बुनियाद पर तुम्हें अपना 'एडीटोरियल' लिख लेना है । कम्पोजिंग में देने से पहले एक बार मुझे दिखा लेना । चार ही पेज का सही, मगर इस 'इश्यू' को कल सुबह ही रिलीज कर दो । कम-से-कम नौकरी तो बँट हो जाय ।"

"मैं दूसरी बात से परेशान था, बाबू जी !"

"बोलो ।"

"अभी-अभी ख्यालीराम खबर लाया है कि वो दोनों होश में आ चुके हैं । वह तो अभी भी कुछ ज्यादा तकलीफ में है । कुछ फ्रैक्चर हुए हैं, शायद !....मगर भुवनमोहिनी देवी को बहुत मामूली चोट आई । डाक्टरों का कहना है कि वो चोट से नहीं, मेन्टल शॉक से बेहोश हुई थी ।"

"इससे क्या फर्क पड़ता है ? दीनू को भेजकर डाक्टरी रिपोर्टों और पुलिस इन्क्वायरी को लेकर भी एक छोटा-सा राइट-अप बना लेना ।"

छोटा-सा कहते हुए, उन्होंने उँगलियों से आकार-सा बनाया और गांधी-नेहरू वाले संयुक्त चित्र की तरफ देखते हुए, फिर आँखें मूंद ली ।

"बात ये है, बाबू जी ! मैंने सुना है कि भुवनमोहिनी देवी पुलिस को अपना बयान देने वाली हैं और उनका कहना है कि यह सारी घटना 'मैन्यूपुलेटेड' है ?"

"ठीक कह रहे हो । मैन्यूपुलेशन की इसमें पूरी संभावनायें हैं । प्रोफेसर तिवारी आजकल शहर में नहीं, छुट्टी लेकर, बाहर चले गये हैं ।....हो सकता है, लोगों के शक-सुबहे से बचने के लिये ही ये बेवक्त की छुट्टियाँ ले ली हों उन्होंने ? और हो ये भी सकता है कि अपनी बेटी की इज्जत-हतकी का बदला लेने के इरादे से खुद भुवनमोहिनी देवी ने ही ये सब रचना की हो ? आखिर इसके तो प्रत्यक्षदर्शी गवाह हैं कि वह भुवनमोहिनी देवी के घर बैठा चाय-हलवे का सेवन कर रहा था ! कौन औरत होगी, जो अपनी बेटी-दामाद के दुश्मन को नेक इरादे से घर में बिठायेगी ? अपने

'एडीटोरियल' में इस 'प्वाइंट' पर भी रोशनी डालना।....और क्या कहना है अब। रोशनी डालने का अखबारी तरीका क्या होता है, यह सब मैं तुम्हें तुम्हारा नाम एडीटर के रूप में देने से पहले भी समझा चुका हूँ।"

शारदा पंडित ने लेटे-लेटे और आँखें मूंदे ही यह सब कहा। उनके चेहरे पर एक पल को सांप के करवट लेने की सी चमक आई, मगर दूसरे ही क्षण वो फिर यथावत् अपनी सनातन स्थिरता में हो गये।

"श्यामलाल कोई नया पेपर निकाल रहा है और शायद छपाई शुरू होने ही वाली है। हरिवल्लभ के अलावा माँगीलाल का बेटा रामधारी और साला भी वहाँ काम पर लगे है।"

"हाँ, ब्यानी पनवाड़ी ने मुझे उसी दिन बता दिया था कि सामग्री लाद लाया है कहीं शहर-बाहर से। उस राजा के बच्चे ने भी, सुना है, एक फुलपेज 'एडवरटिजमेन्ट' दिया है अपनी शुगरमिल का उसे। हमारे दो महीने पुराने बिलों का भुगतान बाकी पड़ा है, उसके घर एडवांस पेमेन्ट पहुँच गया! खैर, वक्त आने पर इस किंग्सलैंड को भी देख लिया जायेगा।....तुम फिक्र न करो। इस शहर में सिर्फ दो जगह प्रिंटिंग मशीनें लगी है। एक हमारे, दूसरे कोहली प्रिंटर्स मे। ओ० पी० कोहली से मैंने कह दिया है। बाहर छपवाने ले गया, तो तब तक में सारी धूल बैठ चुकी होगी। अच्छा, अब तुम जाओ और एडीटोरियल लिख लो।....और जरा माँगीलाल को ऊपर भेज देना। विश्वबंधु तो अब है नहीं, दीनू से कापी करा लेना। अब एक टाइपराइटर रख लेना जरूरी हो गया है। पालिका में दो टाइपराइटरों की नीलामी होनी है—एक रायसाहब अपने किसी रिश्तेदार को दिला रहे हैं, एक यहाँ पहुँच जायेगा। साठ-पैंसठ से बोली ऊँची जायेगी नहीं।"

"आफिस में कुछ ढंग का फर्नीचर भी आ जाता, बाबूजी, तो अच्छा रहता।"

"कांता, जो जहाँ आना-जाना है—जब तक मैं जिंदा हूँ, तुम फिक्र न करो, बेटे! अरे, भई, तुम्हें अपने यहाँ 'डबलबेड' और डाइनिंग सेट चाहिये

था ? बढ़िया-से-बढ़िया जो हो सकता था—'पंडित फर्नीचर्स' से आ गया, या नहीं ?" शारदा पंडित के चेहरे पर अब जैसे वीतरागिता आ गई।

कांता बाबू चुपचाप नीचे उतर आये।

सीढ़ियों पर किसी के ऊपर चढ़ने की आवाज आई तो जब तक में आने वाले का पाँव आखिरी सीढ़ी पर पड़ता—शारदा पंडित ने फिर चुपचाप आँखें मूंद लीं।

माँगीलाल कुछ देर दरवाजे के पास ही खड़ा रहा, फिर धीमे से खाँसा और इसके बाद 'लगता है, बाबू जी थके हैं। गहरी नींद आ गई।' कहता वापस मुड़ने लगा था कि 'हरे राम, हरे कृष्ण' कहते हुए, शारदा पंडित ने करवट बदली—'कौन ? अरे, माँगीलाल, आप हो भई ?'

मगर माँगीलाल के 'बाबू जी, नमस्ते ! कांता बाबू भेजे हैं हमें। कोई हुक्म ?' कहते हुए रुकते ही, उन्होंने फिर आँखें मूंद लीं और आत्मलीनता में अंतर्धान हो गये।

माँगीलाल कुछ पल उनके जल-समाधि में हो चुके-से चेहरे को चुपचाप देखता और फिर बोला—"हम सब समझ रहे हैं, बाबू जी, कि आप हमको क्यों बुलाये हैं। हम तो अपढ़-जाहिल ठहरे, मालिक !....आप तो ज्ञानी आदमी हैं। आप बड़े और संस्कारी लोगों के घरों की तो, बाबू जी, बात ही दूसरी है। हम फटीचरों की तो संतति भी ऐसी होती है कि बाप कहेगा, 'बेटे रामधारी, तू उधर क्यों जाता है ?' तो रामधारी बेटा पाद छोड़ता हुआ-सा आगे बढ जायेगा कि 'बाबू, तुम अपना काम देखो, हमें नसीहत ना दो।'—और साले-सालों का जहाँ तक सवाल है, बाबू जी, वो तो आप—जैसे बड़े लोगों के घरों में भी सिर्फ अपनी बैनों के ही होते हैं।"

माँगीलाल की बात पूरी होने तक में, धीरे-धीरे, शारदा पंडित का चेहरा ऐसा हो आया, जैसे किसी ने गीले तौलिये से पोंछ दिया हो। वो अपनी आत्मलीनता में से उबरकर कुछ कहते कि माँगीलाल यह कहता नीचे उतर गया—"हम चलें, बाबू जी, नमस्ते ! कांता बाबू कहे हैं कि 'इश्यू' कल ही रिलीज होना है। ओवरटाइम लगाना पड़ेगा, तब खत्म होगा।"

●●

२८

भुवनमोहिनी देवी ने अपना बयान खत्म किया ही था कि सिद्दीकी मियाँ बोले—"हम तो पहले ही अंदाजा लगा चुके थे कि खुराफात के पीछे जरूर एडीटरजादे का दिमाग होगा।"

कामरेड वहीं खड़े थे। गीता, प्रभा, श्रीमती सक्सेना, श्रीमती मैठाणी, हरिवल्लभ के अलावा और भी कई लोग वहाँ मौजूद थे।

कामरेड उदासी में डूबे थे, मगर सिद्दीकी मियाँ की बात सुनते ही उन्होंने मजाक में कहा—"आप, सिद्दीकी साहब, शारदा पंडित जी के लिये 'एडीटरजादा' लफ्ज ही क्यो इस्तेमाल करते हैं? साहबजादा, रायजादा, शहंशाहजादा या मीरजादा वगैरह तो हम सुनते आये थे—"

"सुनने को तो, खैर, आप लोग अदीब और अखबारनवीस आदमी हैं, वर्मा जी!....और तय है, इन सब जादों के साथ 'हरामजादा' लफ्ज भी जरूर सुनते आये होंगे आप?"

सिद्दीकी मियाँ का यह कहना अस्पताल के कमरे में उमस की तरह लबालब भरे उदास माहौल को जैसे एकबारगी चीर गया। यहाँ तक कि सबसे ज्यादा संजीदा गीता पाल तक को हँसी छूट पड़ी।

"यानी आपका 'एडीटरजादा' लफ्ज 'हरामजादा' के वजन पर है?"

"आप लोग आजाद-जबान अखबारनवीस हैं, साहब, आप कुछ भी कह सकते हैं। मैं एक अदना सरकारी मुलाजिम हूँ, मैं कैसे जुर्रत कर सकता हूँ।" सिद्दीकी मियाँ शरारत से छलके पड़ रहे थे—"मगर माताजी ने जरूर मेरे पूरे सर्विस कैरियर को बरकत बख्श दी है आज। इनके

बयान के बूते पर चौबीस घंटों को तो मैं हराम....माफ कीजियेगा, यह आप लोगों की सोहबत का असर है—एडीटरजादे साहब को चौबीस घंटे न सही....क्या वक्त होगा साहब ? एक बजा है ? तो ग्यारे घंटे ये और दस घंटे यो...इक्कीस घंटे तक को तो हवालात में बन्द कर ही दूँगा। खुदा का लाख-लाख शुक्र है कि आज डी० एम०, ए० डी० एम०, और एस० पी० साहब भी शहर-बाहर हैं और हमारी सचमुच सैंया भये कोतवाल वाली हैसियत है। इन एडीटरजादों के करम से हमारे तबादले का कागज तो, बस, आता ही होगा और हो सकता है, फोन भी आये। मगर जहाँ एक बार इंदराज करके सीखचों के अन्दर किया, सुबह कचहरी खुलने से पहले तो एडीटरजादे साहब को, बस, सिर्फ खुदाताला ही आजादी दिला सकता है।" कहते सिद्दीकी मियाँ उठ खड़े हुए और 'राजशेखर का बयान शाम किसी वक्त या कल ले लिया जाएगा। डॉ० माथुर से मैंने लिखवा लिया है कि अभी बयान देने की हालत में नहीं है। अब जरा मैं शेखर की हाकी से घायल पड़े उस लौंडे की खबर लेता आऊँ। कुछ पता तो चले कि हमालावर लोकल ही थे या कि कुछ इम्पोर्टेड माल भी था। ....अच्छा, आदाब ! माताजी, प्रणाम करता हूँ।" कहते, तेजी से कमरे से बाहर निकल आये।

कानिस्टेबिल और सिपाहियों के साथ-साथ कामरेड भी उन्हें बाहर तक छोड़ने गये। कमरे में वापस लौटने को थे कि सरदार दिलदार सिंह दिख गये—"कहिये, कामरेड साहब, कैसी तबीयत है शेखर साहब की ?"

"अब फिक्र की बात नहीं, दिलदार ! खतरे से बाहर बताया है डॉ० माथुर ने। 'ब्रेन हैम्रेज' नहीं हुआ है।"

"बुरा न मानें, कामरेड साहब ! ये आदत आपकी बुरी है कि इतनी बड़ी बात कहते भी आप 'खुदा की मेहरबानी से' या 'भगवान की कृपा से' कभी नहीं कहते।"

"लो, भइया, तुम्हारी तसल्ली के लिये कहे देते हैं कि—कृपा श्री सत्य गुरु गोविन्द सिंघ जी की !"

भुवनमोहिनी देवी बयान देने के बाद, फिर चुप हो गई थीं। उनकी पीठ में बहुत दर्द होने से डाक्टर ने उन्हें 'पैथाडीन' दे दिया था। धीरे-धीरे वो नींद मे हो गईं, तो गीता पाल उनके बिखरे बालों को अँगुलियों से सँवारती, माथे पर थोड़ी देर हलके से हाथ फिराती—शेखर की ओर निकल गई।

सीढ़ियों पर होती खट-खट और फिर दरवाजे पर दी गई दस्तकों की आवाज से शारदा पण्डित ने इतना अनुमान बाथरूम में बैठे-बैठे ही लगा लिया कि ये सारी आवाजें आकस्मिक और अजनबी हैं।

बाथरूम में बैठे-बैठे ही उन्होंने रामदुलारी को आवाज दी कि 'देखो, कौन लोग हैं।'

रामदुलारी ने लौटकर बताया, तो थोड़ी देर सोचते रहने के बाद बोले—"बिठाओ। कुछ नमकीन-मीठा रख देना प्लेटों में। कहो कि बाबू जी स्नान कर रहे हैं। थोड़ी देर में आते हैं।"

इतना अनुमान तो उन्होंने लगा लिया था कि कहीं-न-कहीं से बातों को उनसे भी जोड़ दिया गया है और इसीलिए ढाई साल तक स्वदेश भवन के पास से गुजरते बूटों की आवाज दबा लेने वाले सिद्दीकी मियाँ को अपने तबादले के वक्त उनकी सीढ़ियाँ चढ़ने का बहाना मिल गया है।

सिद्दीकी मियाँ ने राजशेखर वाले मामले में जैसा तटस्थ रुख अपनाया था और साफ कह दिया था कि 'जब तक प्रोफेसर साहब या उनकी वाइफ खुद आकर नामजद रिपोर्ट नहीं लिखाती हैं, तब तक मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं कानून का ताबेदार हूँ, कानून मेरा नहीं।' ....इस कुढ़न से

उनके पास बैठ गये । आवाज को धीमा कर लिया—"हमारी खुशकिस्मती और तुम्हारे बदकिस्मती से दूसरे तोहफे की शक्ल भी रस्मी की ही है, प्यारे !....और अब मैं तुम्हें ज्यादा 'ससपेन्स' में न रखूँगा । आज सुबह-सुबह गीता बहन आई थीं । ज्यादा रुकीं नहीं । थोड़े-से शब्दों में सिर्फ ये कहती गई हैं कि उन्होंने फैसला कर लिया है । बता रही थी कि जिस दिन तुम पर हमला हुआ, उसी दिन तय कर चुकी थीं कि अगर ईश्वर की दया से...."

"यह 'ईश्वर की दया' आपकी ओर से इस्तेमाल किया गया शब्द है या...."

"अब तुम भाषा की खाल ज्यादा न खींचो, यार ! मुझे कह लेने दो । उनका कहना था कि तुम्हारा बचना काफी है, चाहे लूले-लँगड़े ही बचो ! और जो जरूरी बात है, वो ये कि उन्होंने यह जिम्मा मुझे सौंपा है कि जितनी जल्दी हो सके, आर्यसमाजी तौर पर रस्म-अदायगी का बन्दोवस्त हो जाय । 'सीनियारिटी' साली सब जगह 'काउंट' की जाती है ना ?"

वह जैसे किसी खामोश जंगल में हो गया हो । उसके चेहरे पर सन्नाटा छा गया था ।

"आज सुबह मैंने ये महसूस किया कि अगर तुम्हारे साथ ये दुर्घटना न हुई होती, तो गीता सचमुच शादी के फैसले पर नहीं पहुँच पाती । यह कहते हुए वह रोने लगी थी कि 'वो जवान ही होंगे कि मैं बूढी पड़ जाऊँगी और आँखों को चुभने लगूंगी । दूसरे, आदर्श और भावावेग लम्बा साथ हो जाने पर भीतर तह में होते चले जाते हैं और बहुत कम लोग होते हैं, जो अन्तिम क्षण तक इन्हे निभा पाते हैं ।....लेकिन फिर भी मै अब फैसला ले चुकी हूँ और उनसे कहियेगा कि खूब सोच-समझ लें फिर से । मैं तो चाहे जो भी हो, पछतावा नहीं करूँगी, क्योंकि ये फैसला मैंने अपने अन्दर की आवाज पर लिया है ।....मगर उन्हें पछतावे में देखना मेरे लिये बहुत तकलीफदेह होगा ।'....और, भई, गीता बहन का ये भी कहना है कि यदि होना है इसे, तो फिर वक्त न लगे । क्या इरादा है अब तुम्हारा ?"

"ये अब भी पूछने की जरूरत है, कामरेड दद्दा—और वह भी आपको ? डॉ० माथुर ने साफ कह दिया है कि अब पहले की तरह तेज रफ्तार न चल सकूंगा मैं। अब मुझे सहारे की ज्यादा जरूरत है।"

अभी वो लोग आपस में बातें कर ही रहे थे कि श्रीमती मैठाणी और भुवनमोहिनी देवी साथ-साथ आ पहुँची। श्रीमती मैठाणी ने धीमे से उसका माथा चूम लिया, तो वह 'बेड' पर बैठे-बैठे उनके गले से झूल गया।

इसके तीसरे दिन कामरेड बिल्कुल तड़के ही पहुँचे, और यह देखकर उन्हें थोड़ा ताज्जुब ही हुआ कि पहुँचने वालों में प्रभा भी थी। वह गीता के साथ आई थी। वो लोग श्रीमती मैठाणी के साथ डाक्टर और नर्सों के साथ बातों मे उलझे थे।

कामरेड धीमे से उसकी बगल में टिककर बैठ गये और पाँवों को, झूलने से बचाने के लिए, स्टूल पर रख लिया।

"इस कड़ाके की ठंड मे आप बिस्तर से कैसे बाहर निकल आये, कामरेड दद्दा ? इस पौराणिक किस्म के ओवरकोट मे तो आप सचमुच रूसी कामरेड लग रहे हैं, जैसे क्रैमलिन की चौड़ी सड़कों की बर्फ पर चलते हुए आये हों !"

कामरेड ने हाथ में थमा **'भारत टाइम्स'** उसके आगे कर दिया—'रूसी नहीं, चीनी एजेन्ट कहो, प्यारे !' और हँस पड़े।

वह संभलकर, तकिये के सहारे बैठ गया और अखबार पढ़ने लगा।

"अब तुम्हारा कामरेड दद्दा चाहे हुआ हो, न हुआ हो, **'चेतना'** तो ऑल इण्डिया फेम की हो ही गई, प्यारे ! फ्रण्ट पेज पर, बॉक्स-न्यूज़ में आई है।"

न्यूज पढ़ते ही शेखर नफरत और गुस्से के साथ बोला—"आपके इम्पार्टेन्ट एडीटोरियल के बाकी सारे मुद्दे तो छोड़ दिये गये हैं और सिर्फ नेशनल फण्ड में चंदा-उगाही पर किये कमेन्ट को उठा लिया !....और

अस्पताल से 'रिलीज' होते कुछ दिन और लग गये।

उसे इस बात पर आश्चर्य था कि आज अस्पताल से छुट्टी मिलने के दिन बाकी सब लोग आये हैं, मगर कामरेड नहीं। न सरस्वती आई थी।

उन लोगों को खोजती उसकी आँखें हरिवल्लभ से यह सुनते ही पथरा-सी गईं कि 'उनको तो, साहब, सी० आई० डी० वाले उठा ले गये। 'चेतना' का सारा बाकी पड़ा स्टॉक जब्त हो गया। प्रेस पर सील लग गई। सब उस लोमड़ पंडित और राय की करतूत है। सरस्वती बहन जी बहुत उदास है।"

"कब ?" किसी तरह उसने कहा, तो लगा, दाँतों से वजन उठा रहा है।

"कल रात।"

उसने अब गीता और श्रीमती मैठाणी की ओर देखा।

श्रीमती मैठाणी बोलीं—'मुझे भी अभी-अभी गीता ने बताया, बेटे, कि डी० आई० आर० में बन्द किया है। कानून अंधा है, चाहे जिसके गले में डाल दो।"

"सोच रही थी, यहाँ से घर चलें, वहीं बताऊँगी। उन्होंने आपके नाम एक चिट्ठी लिख छोड़ी है।" इस बार गीता बोली—"मैंने सिद्दीकी मियाँ से मुलाकात की थी। वो तो, खैर, बहुत नेक आदमी हैं। उनके तबादले का कागज आ चुका, शायद, कल चार्ज सौंप देंगे। बतला रहे थे कि फिलहाल बरेली सेण्ट्रल जेल में रखा जायेगा और हिन्दुस्तान-चीन के

बीच में वार्डर-वार खत्म होते ही छोड़ दिया जायेगा। इससे पहले पॉलिटिकल एप्रोच होने पर ही कुछ हो सकता है। आप फिक्र न करें। धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा।"

बात खत्म करके, गीता ने वैनिटी-बैग में से चिट्ठी निकालकर, शेखर को दे दी।

सादे लिफाफे के भीतर अच्छा-खासा लम्बा पत्र था। सुन्दर और साफ लिखावट में, और इससे स्पष्ट था कि पत्र हड़बड़ाहट या त्रास में नहीं, संतुलित मन से लिखा गया है।

'प्रिय शेखर, यों तो खत लिखने की कोई जरूरत नहीं थी। सारी बातें तुम्हें पता चल ही जायेंगी। अंदेशा चूंकि पहले से था, इसलिए बिल्कुल नॉर्मली मैंने इसे लिया है, तुम भी फिक्र न करोगे। सरो को मैं इस बीच ही मानसिक रूप से तैयार कर चुका था, इसलिए ये भी इस सबको संतुलित ढंग से देखती रही हैं। मेरी गिरफ्तारी, प्रेस की सीलबंदी—और वो भी रात के लगभग दो बजे की कड़कती सर्दी और सन्नाटे में—तुम वहाँ मौजूद होते, तो ये देखकर तुम्हें खुशी होती कि सरो ने कितने धैर्य और जीवट से काम लिया है। इस तमाम अरसे में ये अपना रुख ऐसा बनाये रही है, जैसे मैं किसी सफर पर जा रहा होऊँ और गाड़ी जल्दी पकड़नी हो। यह बात मैं तुम्हें इसलिये लिख रहा हूँ कि बता सकूँ—सचाई कितना 'पे' करती है। मैं इन्हें असुविधाओं के सिवा कुछ न दे सका—न उम्मीद करता हूँ—मगर सचाई बरती है और जैसा कि एक दिन तुम्हें मैंने कहा था, हमारे दिये हुए को प्रकृति हम तक वापस पहुँचाती जरूर है। ....मगर अब तुम्हें इनका खयाल रखना है और गीता बहन को। इस गिरफ्तारी से पहले ही मैं इन्हें मानसिक तौर पर इस हद तक तैयार कर चुका हूँ कि शहर की सड़कों पर झाड़ू लगाकर गुजर करने की नौबत आने पर भी अब ये मेरा साथ छोड़ेंगी नहीं।....मगर आखिर आदमी हूँ और इसे अपनी कमजोरी कहने की जगह, स्वाभाविक करुणा कहना चाहूँगा कि मुझे इनकी फिक्र है, क्योंकि ये माँ बनने जा रही हैं।

गिरफ्तारी से बचाने के लिए किया। उस दिन शायद उन्हें पूरा यकीन हो गया था 'चेतना' जब्त होगी।"

दोपहर जब उसे अस्पताल से मुक्त किया गया, डा० माथुर के साथ अस्पताल की एक-दो नर्सें और वार्ड-ब्वाय, उसे छोड़ने सड़क तक साथ-साथ आये।

लाल बजरी बिछी सड़क पर उन लोगों का साथ आना अत्यन्त आत्मीय लगता रहा। यह ठीक दोपहर का वक्त था, मगर ठंड इसके बावजूद काफी थी।

डॉ० माथुर ने यह कहते हुए विदा ली—"अच्छा, शेखर साहब! अब मुझे इजाजत दें। अभी कम-से-कम एक महीना कुछ एहतियात बरतेंगे। एक तो सर्दी में खुले बदन न रहें और दूसरे, शहर की ओर न उतरें।.... नही, नहीं, ये बात मैं किसी वारदात के अंदेशे में नही, बल्कि इसलिए कह रहा हूं कि अभी ज्यादा ऊँचे-नीचे चलने से आपको बचना होगा। खैर, मांजी हैं, ये ध्यान रखेंगी।"

डॉ० माथुर श्रीमती मैठाणी को प्रणाम करके मुड़ने को हुए ही थे कि वो बोल पड़ीं—"मैं तो बूढी हो चली, डा० माथुर! पहली जनवरी को इसे नयी मां मिल रही है।....और उस मौके पर आपको भी जरूर आना है।"

डॉ० माथुर चकित भाव से देखते रह गए, तो श्रीमती मैठाणी ने पहले धीमे से मुस्कुराते हुए कहा—'हिन्दू शास्त्रों में पत्नी को भी मातृ-तुल्य ही कहा गया है।'—और इसके बाद उन्होंने सचमुच इतने जोर का ठहाका लगाया कि यह अंदाजा लगाना मुश्किल हो जाय कि ये जो पक्षी आकाश में उड़ते जा रहे हैं, पहले से ही उड़ रहे थे या कि श्रीमती मैठाणी का ठहाका सुनने के बाद।

कचहरी मे पहली पेशी के हफ्ता-भर पहले ही शारदा पंडित भुवन-

मोहिनी देवी के यहाँ चले आये। इस बार उन्होंने पार्वती वहन को साथ नहीं लिया।

उन्होंने नीचे सड़क पर खड़े-खड़े ही झाँका और कान्ता से दरवाजे पर दस्तक दिलवाई।

भुवनमोहिनी देवी दरवाजा खोलने की जगह, जैसा कि वो अक्सर करती हैं, पहले खिड़की पर आईं और शारदा पंडित को देखते ही उनकी त्यौरियाँ चढ़ गईं।

'वहन जी, नमस्कार।' के जवाव में उन्होंने सिर्फ घृणा और गुस्से को अपने चेहरे पर इकट्ठा कर लिया।

शारदा पंडित का चेहरा उतर गया। वो समझ गये कि भुवनमोहिनी देवी दरवाजा न खोलेंगी। वो खिन्नमन लौटने को थे कि एकाएक भुवन-मोहिनी देवी ने आवाज दी—"आ जाइये, दरवाजा खोल रही हूँ।"

कांता को तो शारदा पंडित ने नीचे से ही विदा कर दिया और खुद सीढ़ियों पर छड़ी टेकते, ऊपर पहुँच गये।

"वैठिये। कैसे आना हुआ?" भुवनमोहिनी देवी की आवाज पूर्ववत निहायत अनात्मीय और सख्त थी।

"वहन जी, आपने-हमने साथ-साथ आजादी के संघर्ष में...."

"शारदा पंडित, वेकार के विस्तार में जाने से कोई फायदा न होगा। मेरी तवीयत ठीक नहीं। मैं ज्यादा देर वातें कर नहीं पाऊँगी।"

"वहन जी, आपके सच वोलने की कीर्त्ति है, मगर आपने मेरे खिलाफ इतना झूठ वोल दिया कि मैं एक दिन आपके घर आया था और मैंने आपसे कहा था कि आप चाहे कुछ न करें, मगर मैं वरेली से गुण्डे वुलवा-कर, उसका 'मर्डर' करवा दूँगा? पार्वती वहन उस दिन साथ थीं, मगर मैं आपको जानता हूँ। मुझे गवाही की जरूरत नहीं। आप खुद कह दें कि क्या सचमुच उस दिन मैंने इस तरह की कोई वात आप से कही थी?

"बात ये है, शारदा पंडित! आप मुझसे यहाँ घर में पूछ रहे हैं, तो मैं कहूँगी—नहीं, यह बात आपने नहीं कही थी।....मगर जव कचहरी के

कठघरे में खड़ी होऊँगी, मेरे सामने गीता या रामायण दी जायेगी, मुझे ईश्वर की सौगंध दिलाई जायेगी—मैं विधवा औरत हूँ और मेरे झूठ से मेरे पति की आत्मा को वेदना पहुँचेगी! मगर आप यकीन मानिये, मैं एक पल नहीं हिचकूँगी और पूरा जोर देकर कहूँगी कि राजशेखर का 'मर्डर' करवाने की धमकी आपने मेरे सामने दी थी।...और यह आपका अपना काम है कि आप ये साबित करें, कि मेरा बयान झूठा है।...अब आप सिर्फ ये बतायें कि यहाँ क्या इरादा लेकर आप आये है, क्योंकि इतना तय है कि सिर्फ मुझे सत्यवादिनी कहने तो आप यहाँ पधारें न होंगे?"

भुवनमोहिनी देवी की भवें तनी हुई थी और वो अप्रत्याशित रूप से आक्रामक दिख रही थीं।

शारदा पंडित अच्छी तरह समझ गये कि तर्क करने के बदले सद्-व्यवहार की तिल-भर भी गुंजाइश नही। अभी भुवनमोहिनी देवी अपने-आप में कुपित देवी की तरह तनी बैठी ही थी कि शारदा पंडित आगे बढ़े और टोपी हाथों मे लिये-लिये, उनके दोनों पैर पकड़ लिये और सचमुच रोते-रोते बोले—"बहन जी, बस, इसके आगे अब मुझे कुछ नहीं कहना है। आप मुझे यहाँ से निकल आने का हुक्म दीजियेगा, तो मै बिना एक लफ्ज कहे निकल जाऊँगा।"

कुछ क्षण तो भुवनमोहिनी देवी हक्की-बक्की ही रह गई, मगर जल्दी ही उन्होने अपने को संयत कर लिया और बिना झिझके, शारदा पंडित के सिर को पाँवों पर से अलग करते बोली—"नाटक न करो, शारदा पंडित! मै काफी पहले से भी जानती आई कि आप क्या चीज हैं, मगर हमेशा बरताव सिर्फ इज्जत देते हुए ही किया। इस नाशवान जिंदगी में भला न कर पाऊँ, तो बुरे से बचूँ, यही मेरी कोशिश रही।...मगर मुझे जब किसी पर गुस्सा आ जाता है, तो फिर माफ मैं कर नहीं पाती।....और माफ मैं आपको पाँव पकड़ने के बाद भी नहीं करूँगी और न उपदेश दूँगी कि आगे से नेकनामी बरतें।...मगर आप समझौता करवा लेने की चालाकी इस्तेमाल करते आये हो, तो मैं भी 'बारगेन' करूँगी। इतना

कहकर कुछ रुकीं भुवनमोहिनी देवी, और फिर अगले ही क्षण निहायत नपे-तुले ढंग से बोलीं—"मैंने आपको वापस चले जाने से रोकने का इरादा यों ही नहीं कर लिया। मैं मामले को रफा-दफा करवाने को तैयार हूँ, मगर मेरी भी एक शर्त है।"

'शर्त है' कहते हुए आँखों को जिस तरह नुकीला कर लिया भुवनमोहिनी देवी ने, एक पल को शारदा पंडित को कँपकपी-सी महसूस हुई।

"श्यामू को रिहा करवाना होगा। बोलो, मंजूर है? और ये वादा भी, कि राजशेखर के खिलाफ आइन्दा ऐसी कोई नीच हरकत न करोगे!"

शारदा पंडित कुछ देर काठ हुए-से चुप रहे, और फिर थोड़ा विश्राम कर चुकने की सी मुद्रा में धीमी, बुझी हुई-सी आवाज में बोले—"मुझे मंजूर है, बहन जी!....मगर एक फार्मेलिटी श्यामलाल को पूरी करनी पड़ेगी। उसमें मैं कुछ दखल दे नहीं सकता। माफीनामा भरना पड़ेगा। वो सबको करना पड़ता है। रिहाई का जिम्मा मैं लेता हूँ।"

"तब ठीक है। इस पेशी में बयान देने न जाऊँगी मैं, वकील से तारीख लिवा लूंगी। आप इस बीच श्यामलाल की रिहाई का प्रबंध कर लीजिये।"

कुछ पल शारदा पंडित जमीन की ओर देखते रहे। फिर टोपी की तह ठीक करते हुए, 'अच्छा, बहन जी, चलूं इस वक्त।' कहते, टोपी सिर पर डालते, सीढ़ियों की ओर बढ़ गये।

• •

३०

ओकवुड कॉटेज आ जाने के करीब दस दिन-बाद, गीता को साथ लिये, धीरे-धीरे चलते शेखर कामरेड के घर पहुँचा, तो उसे यह देखकर ताज्जुब हुआ कि सरस्वती बाहर की चबूतरानुमा जगह पर बैठी है और एक बूढी-सी औरत उसके सिर पर तेल मल रही है। प्रेस वाले कमरे में लगी सील भी उसे दूर से दिख गई।

दोनों ने ही लक्ष किया कि बूढ़ी महिला की ओर धीमे से गरदन मोड़कर, वह कुछ फुसफसाई है।

शेखर ने धीमे से गीता से कहा—"कोई बुढ़िया भगतन न हो। पहले तो धरना देने आया करती थीं। अब जूड़ा सँवारने...."

"आप भी, बस, एक ही हैं। भगतनों और सुहागनों में आपको कोई फर्क ही नहीं दिखता? देखते नहीं, बुढ़िया के माथे पर एक अंगुल चौड़ी रेखा है सिंदूर की!"

"अरे भई! मुश्किल ये हो गई कि जबसे आप सिंदूरमयी हो गई हैं, दूसरों का सिंदूर दिखाई ही नहीं पड़ता हमें।"—शेखर ने ठहाका लगाया, तो उसने हाथ दबाकर रोक दिया—"जाने कौन बैठी हो। और, सुनिये, सरो दीदी के सामने मुझे आप-आप न करने लगियेगा।"

"सच, गीता, जब आप ऐसे बच्चों के से लहजे में बोलती हैं, तो मैं अपने-आप को बूढ़ा महसूस करने लगता हूँ।"

...."ठीक कह रहे थे, उस दिन कामरेड दद्दा! आपको भाषा की तमीज सचमुच नहीं रह गई। बच्ची की जगह बच्चा कह डालते हैं।"—

इस बार वह खुद अपने को हँसने से रोक नहीं पाई, मगर पास पहुँचते ही ज्यों ही सरस्वती ने वुढ़िया की ओर संकेत करते हुए 'माँजी हैं', कहा वह संकोच में डूब गई। पाँव छूने को आगे वढ़ी, तो कामरेड की माँ ने वाँहों मे भर लिया—"जीती रहो, वेटी ! सदा सुहागन रहो।"

"माँ जी, मुझे भी तो आशीर्वाद दीजिये कि मैं भी सदा सुहागी रहूँ !" कहते हुए, अव शेखर ने पाँव छुए, हो राधादेवी भी हँस पड़ीं।

चाय पीते वक्त बोलीं—"वेटे के रहते नहीं आ पाई।"

गीता ने धीमे से मजाक किया—"इसमें कौन-सी वात है—माँ जी ! मूल से व्याज, वेटे से पोता सभी को प्यारा होता है।"

सरस्वती शर्म से लाल पडती, उसे हाथ पकड़कर भीतर खींच ले गई —"वहुत मजाक करती हैं आप। हाय, मंगलसूत्र और सिंदूर-काजल में आप सचमुच कितनी खूबसूरत हो चली है।"

उन दोनों के वाहर वापस लौटने तक वह कामरेड की माँ, राधादेवी से वातें करता और दिलासा देता रहा।

"सरो को साथ ले जाना हो, वेटा, तो मुझे भी जरूर ले जाना। वोझ तो जरूर वन जाऊँगी, हाथ-पाँव अव ठीक से लगते नही।....मगर आजाद वेटे से न मिल सकी, जेल में कैद वेटे से तो गले मिल जाऊँ।"

"आप रोयें नहीं, माँ जी ! कामरेड दद्दा बहुत जल्दी ही घर लौटेंगे। ....फिलहाल सिर्फ मै, गीता, दिलदार सिंह सरदार और हरिवल्लभ जायेंगे। मै तो इन्हें भी न ले जाता, मगर इन्हें वरेली में कालेज-संवंधी कुछ काम भी हैं।"

"तव, वेटे, श्यामू के लिये कुछ सामान जरूर ले जा देना। चावल के मीठे पुए और खजूर वहुत पसद है उसे।" कहते-कहते राधा देवी की आँखें फिर भर आईं—"और उससे ये भी जरूर कहेंगे कि माँ बहुत खुश हैं। वहू सचमुच वहुत सुशील लाया है खब्ती।"

अब मुझे सिर्फ जिन्दा रहने दिया होता है।'...लेकिन यदि यों बात ही छोड़ दीजिये, जो जबानी तौर पर भी माफी मांगने को तैयार नहीं।"

चारों को ही सन्नाटे में देखकर, जेलर साहब फिर बोले—"आप लोग उनके बड़ा नजदीकी जान पड़ते हैं, जनाब! खास तौर पर ये बहन जी आई हुई हैं....अच्छा, ये आपकी बहन हैं? माफ कीजियेगा, मैं इन्हें श्रीमती वर्मा समझने की गलती कर बैठा, हालांकि यह भूल मुझसे होनी न चाहिये थी।...खैर, मुझे तो कोई उम्मीद नहीं, साहब, कि आप लोगों के कहने का भी उनके फैसले पर कोई असर पड़ेगा। ही इज ए फुल्ली लिटरेट पर्सन!"

शेखर कुछ कहने के लिये मुँह खोलना ही चाहता था कि सामने की तरफ से कामरेड आते दिखाई दे गये।

दो लोग तो प्रेम और अवसाद में अभिभूत-से उठकर खड़े हुए ही, खुद जेलर भी उठकर खड़े हो गये—"आइये, वर्मा साहब, देखिये यहाँ कितने लोग आपका इंतजार कर रहे हैं।"

● ●